

## अंतरंग गुणों की प्रधानता

मोक्ष मार्ग की साधना में अंतरंग गुणों की साधना, प्रधान है। यद्यपि बाह्य क्रिया अनुष्ठानों का भी कम महत्व नहीं है, क्योंकि इन बाह्य अनुष्ठानों के आचरण से अंतरंग गुण पुष्ट होते हैं। परंतु हाँ ! अंतरंग गुणों के अभाव में इन बाह्य अनुष्ठानों का कोई महत्व नहीं है।

जिस प्रकार अभ्यंतर तप के अभाव में बाह्य तप का कोई विशेष महत्व नहीं है, उसी प्रकार अंतरंग गुणों की साधना के अभाव में साधु या श्रावक जीवन के बाह्य-आचारों, बाह्य-अनुष्ठानों का कोई महत्व नहीं है।

भूतकाल में अपनी आत्मा ने अनंत बार द्रव्य चारित्र स्वीकार किया, किंतु वह सब निष्फल गया। क्यों ? क्योंकि अंतरंग साधना का अभाव था। इससे स्पष्ट है कि अंतरंग गुणों के अभाव में पूर्व करोड़ वर्ष का द्रव्य चारित्र भी मुक्ति प्रदान करने में समर्थ नहीं है...अंतरंग गुणों के अभाव में मास क्षमण जैसी उग्र कोटि की तपश्चर्याएं भी सिर्फ कायकष्ट ही कहलाती हैं।

जिस प्रकार मूल के अभाव में वृक्ष टिक नहीं सकता है। नींव के अभाव में बिल्डिंग टिक नहीं सकती है, उसी प्रकार अंतरंग गुणों के अभाव श्रावक जीवन की इमारत भी टिक नहीं सकती है।

श्रावक जीवन में जन्म लेने से व्यक्ति, नाम-श्रावक कहला सकता है, किंतु भाव-श्रावक नहीं। श्रावक के बाह्य व्रतों का स्वीकार करने से व्यक्ति द्रव्य श्रावक कहला सकता है किंतु भावश्रावक नहीं !

श्रावक जीवन के सम्यक्त्व मूलक बारह व्रतों का स्वीकार करने से व्यक्ति द्रव्य श्रावक कहलाता है, किंतु भाव श्रावक बनने के लिए तो भाव श्रावक के भावगत 17 गुणों को जीवन में आत्मसात् करना चाहिए।

ये भावगत गुण, अंतरंग गुण हैं। बाह्य चर्म चक्षुओं से ये गुण दिखाई नहीं देते हैं।

बाहर से व्यक्ति का बाह्य आचरण दिखाई पड़ता है, किंतु अंतरंग गुण नहीं।

दाता के दान की बाह्य क्रिया बाहर से दिखाई देती है, किंतु दाता के हृदय में सचमुच उदारता है या नहीं ? दाता के हृदय में धन की मूर्च्छा दूर करने का भाव है या नहीं ? यह बात बाहर से ख्याल में नहीं आती है।

इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर धर्मरत्न प्रकरणकार श्रीमद् शांति सूरिजी म. ने भाव श्रावक के 17 गुणों का वर्णन किया है। इन गुणों को अपने जीवन में आत्मसात् करने से भाव श्रावकपने की प्राप्ति हो सकती है।

भाव-श्रावक का सबसे पहला गुण है स्त्री-विराग ! अनादिकाल से आत्मा में चार संज्ञाएँ रही हुई हैं - आहार संज्ञा, भय संज्ञा, परिग्रह संज्ञा और मैथुन संज्ञा ।

**तिर्यच गति में आहार संज्ञा की प्रधानता है, नरकगति में भय संज्ञा की प्रधानता है, देवगति में परिग्रहसंज्ञा की प्रधानता है और मनुष्य गति में मैथुन संज्ञा की प्रधानता है ।**

इस मैथुन संज्ञा के कारण पुरुष को स्त्री के भोग की और स्त्री को पुरुष के भोग की इच्छा होती है ।

अनादिकाल से आत्मा में घर कर गई इन संज्ञाओं को तोड़ना अत्यंत ही कठिन कार्य है । निमित्त प्राप्त होते ही ये संज्ञाएँ जागृत हो जाती हैं । जिस प्रकार अग्नि के संपर्क से मोम पिघलने लगता है, उसी प्रकार स्त्री के निमित्त को पाते ही पुरुष के भीतर काम-वासनाएँ जागृत हो जाती हैं ।

आत्मा में घर कर गई इस काम वासना की आसक्ति को तोड़ने के लिए ही 'स्त्री-विराग' गुण को जीवन में आत्मसात् करना अति आवश्यक है ।

आत्मा के मुख्य जो छ अंतरंग शत्रु हैं, उनमें सबसे पहला अंतरंग शत्रु 'काम' ही है ।

\*सीता के रूप में आसक्त बना तीन खंड का अधिपति रावण सदगुणी था, किंतु एक परस्त्री लंपटता के पाप के कारण उसे बदनाम होना पड़ा, इतना ही नहीं उसे करुण मौत मरना पड़ा ।

\*महासती मदनरेखा के अद्भूत रूप और लावण्य में अत्यंत आसक्त बना मणिरथ, अपने सगे भाई युवराज युगबाहु की हत्या करने के लिए तैयार हो गया । स्वयं के अंतःपुर में रूपवान् स्त्री होने पर भी वह मणिरथ अपने सगे भाई की ही पत्नी के रूप में आसक्त बन गया था । मदनरेखा को पाने के लिए उसने अपने भाई की छाती में छूरी भोंक दी ।

...उसके बाद भी वह मणिरथ उस मदनरेखा को पा न सका, किंतु सर्पदंश से उसकी भी करुण मौत हो गई ।

**काया का शोषण सरल है ।**

**वासना का शोषण कठिन है ।**

कठोर व दीर्घ तपश्चर्या द्वारा काया का शोषण करना तो भी सरल है,

किंतु आत्मा के भीतर रही वासनाओं का शोषण करना, अत्यंत ही दुष्कर कार्य है।

\*सिंह की गुफा के पास चार चार मास की दीर्घ व उग्र तपश्चर्या करने वाले सिंहगुफावासी मुनि, कोशा-वेश्या की चित्रशाला में डग भरते ही कामातुर बन गए। वर्षों से कठोर संयम धर्म का पालन करने वाले चित्रशाला में चित्रित काम के आसनों के दृश्य को देखकर कामातुर बनकर कोशा वेश्या के पास काम की प्रार्थना करने लगे गए... इससे स्पष्ट हो जाता है कि काम को जीतना कितना कठिन है ?

\*मासक्षमण के पारणे मासक्षमण जैसी उग्र तपश्चर्या करने वाले संभूति मुनि ! सनत् कुमार चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न की केशलता के स्पर्श मात्र से कामातुर हो गए थे और उस काम सुख / स्त्री सुख को पाने के लिए अपनी संयम की उत्कट साधना को भी बेचने के लिए तैयार हो गए।

कितनी भयंकर हैं यह कामवासना।

अनेक ज्ञानी ध्यानी साधकों का अधःपतन स्त्री के कारण हुआ है।

**जहर तो खाने पर ही मारता है जहर को देखने से किसी की मौत नहीं हो जाती है, किंतु स्त्री का संसर्ग तो दूर रहा, उसका दर्शन, वार्तालाप और स्मरण भी आत्मघात का निमित्त बन जाता है।**

वास्तव में देखा जाय तो स्त्री का देह हाड, मांस, चर्बी, रक्त, मल-मूत्र आदि अशुचि की ढेरी ही हैं, फिर भी कामराग के कारण उस स्त्री में सौंदर्य दिखाई देता है। उस राग के कारण ही स्त्री के रूप में आसक्त कवि को स्त्री के मुख में चंद्रमा के दर्शन होते हैं और वह उसे 'चंद्रमुखी' की उपमा देता है। स्त्री के राग के कारण ही स्त्री की गति में 'गजगामिनी' के दर्शन होते हैं।

स्त्री के प्रति रागभाव के कारण ही उसके नेत्रों में कमल की पंखुडी के दर्शन होते हैं।

मानव देह अशुचि से भरा हुआ है। पुरुष के नौ व स्त्री के बारह द्वारों से सतत अशुचि का प्रवाह बह रहा है।

### **ज्ञान चक्षु से देखे**

फोटो स्टूडियों का केमरा ऊपरी चमडी का ही फोटो लेता है, शरीर के भीतर हड्डी टूट गई हो तो भी केमरे का फोटो तो सुंदर ही आता है... परंतु X-Ray मशीन से फोटो लिया जाय तो अंदर टूटी फूटी हड्डी दिखाई देती है।

बस, इसी प्रकार जब व्यक्ति अपनी चर्म चक्षुओं से स्त्री को देखता है,

तब उसे उस स्त्री देह में सौंदर्यता के दर्शन होते हैं, ... परंतु जब ज्ञान चक्षु से उस स्त्री देह को देखा जाय तो उस स्त्री देह में बिभत्सता के दर्शन होते हैं।

मुंबई में Under-ground गट्टरें हैं इस कारण सडक के नीचे गंदी गट्टर बहती होने पर भी उसकी दुर्गंध सडक पर चलने वाले पथिकों को नहीं आती है, क्योंकि वे गट्टरें ऊपर से बंद है। हाँ ! यदि गट्टर का ढक्कण खोल दिया जाय तो व्यक्ति क्षणभर के लिए भी वहां खडा नहीं रह सकता है।

बस, यही स्थिति नारी देह की है। नारी देह के भीतर अशुचि भरी हुई हैं, शरीर के भीतर अशुचि का सर्जन Production सतत चालू है, परंतु ऊपर की गौरी चमडी के कारण कामांध व्यक्ति को उस स्त्री देह में अशुचिता के दर्शन नहीं हो पाते है।

### **कामातुराणां भयं न लज्जा**

काम से पीडित व्यक्ति को न तो भय होता है और न ही अकार्य करते हुए लज्जा का अनुभव होता है।

\* इलाची कुमार श्रेष्ठी पुत्र था, उसके पिता श्रेष्ठी कन्या के साथ उसका पाणि ग्रहण कराने के लिए तैयार थे, परंतु एक नट कन्या के रूप में आसक्त बना इलाची कुमार अपनी इज्जत को भी भूल गया। एक नट कन्या को पाने के लिए वह अपने माता-पिता व परिवार को भी छोड़ने के लिए तैयार हो गया... एक श्रेष्ठी पुत्र होने पर भी नाट्य कला सीखने के लिए तैयार हो गया। काम की यह कैसी विचित्रता है ?

कामातुर व्यक्ति अपने दुष्कृतों के परिणाम को सोचने के लिए अंधतुल्य ही होता है। जिस प्रकार अंध व्यक्ति अपने सामने रहे खड्डे को भी देख नहीं पाता है, उसी प्रकार कामातुर व्यक्ति भी कामांधता के कारण, भविष्य में आने वाले दुष्परिणामों को देखने में अंध हो जाता है।

शास्त्र में तीन व्यक्तियों को आंखें होते हुए भी अंध कहा गया है - कामांध, क्रोधांध और लोभांध।

काम, क्रोध और लोभ में अंध बने हुए व्यक्ति के विवेक चक्षु के ऊपर आवरण आ जाता है। वह अपने भावि हित-अहित को सोचने में अंध बन जाता है।

**युद्ध में विजेता बनना सरल है।**

**काम विजेता बनना कठिन है।**

युद्ध के मैदान में तीर, तलवार, भाला, बंदूक आदि शस्त्रों को हाथ में लेकर दुश्मनों से लड़ना सरल है .. उन दुश्मनों को परास्त करना भी सरल

है, किंतु काम रूपी अंतरंग शत्रु को जीतना अत्यंत ही कठिन है।

युद्ध के मैदान में हजारों दुश्मनों को मौत के घाट उतारने वाला भी स्त्री के आगे हार खा जाता है।

ठीक ही कहा है -

- \* स्त्री के नेत्र बाण, दृष्टि विष सर्प की दृष्टि से भी अधिक खतरनाक है।
- \* विष पान करने वाला एक ही बार मरता है, जबकि स्त्री रूप के पिपासु को अनेक बार मरना पड़ता है।
- \* सुनंदा के रूप में पागल बने रूपसेन को 6-6 भवों में बेमौत मरना पड़ा, फिर भी उसे सुनंदा नहीं मिल गई। आखिर उसी सुनंदा साध्वी से उसके अन्तश्चक्षु खुले और उसकी आत्मा का पुनः उत्थान हुआ।
- \* डोरी से बंधन ग्रस्त पशु छूट नहीं सकता है, उसी प्रकार स्त्री के बंधन से ग्रस्त पुरुष भी मुक्त नहीं हो सकता है। पुरुष के लिए स्त्री सबसे बड़ा बंधन है।
- \* जहर को याद करने से आदमी की मौत नहीं होती है, जब कि स्त्री की तो स्मृति भी अत्यंत खतरनाक है।
- \* लंबी चोड़ी नदियाँ को तैरकर पार पा जाना सरल है, किंतु स्त्री रूपी नदी को पार करना, अत्यंत कठिन कार्य है।
- \* माया, कपट, ईर्ष्या, क्षुद्रता, तुच्छता आदि दुर्गुण स्त्री में सहज होते हैं। इन दुर्गुणों के कारण पुरुष को बहुत कुछ सहन करना पड़ता है, परंतु स्त्री के संग में आसक्त पुरुष इन सब बातों को भूल जाता है।

### **ब्रह्मचर्य की सुरक्षा सबसे कठिन है**

साधु के पांच महाव्रतों में सबसे अधिक महत्व चतुर्थ ब्रह्मचर्य व्रत का ही है। 'ए व्रत जगमां दीवो मेरे प्यारे' कहकर कवियों ने इस व्रत की महिमा का खूब खूब गान किया है।

- \* अनाज उत्पन्न हुए खेत की सुरक्षा के लिए कांटों की बाड़ बनाई जाती है।
- \* आम के फल लदे बगीचे की सुरक्षा के लिए तारों की बाड़ बनाई जाती है।

इसी प्रकार अन्य अन्य व्रतों की अपेक्षा ब्रह्मचर्य व्रत की सुरक्षा के लिए शास्त्र में नौ बाड़ का विधान किया है।

- ब्रह्मचारी पुरुष को स्त्री, पशु व नपुंसक की बस्ती से दूर रहना चाहिये।
- स्त्री के रूप सौंदर्य आदि संबंधी वार्तालाप का त्याग करना चाहिए।
- स्त्री के अंगोपांग को स्थिर नजर से नहीं देखना चाहिये।
- जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो, उस स्थान पर पुरुष को 48 मिनट तक

नहीं बैठना चाहिये।

- ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार के पूर्व स्त्री के साथ काम क्रीडा की हो तो उसे याद भी नहीं करना चाहिये।

ब्रह्मचर्य की इन नौ बाड़ों में स्त्री के दर्शन, स्पर्शन व स्मरण से दूर रहने के लिए छ-छ बाड़ों को विधान किया गया है।

उसके बाद ब्रह्मचर्य में बाधक अतिरसप्रद आहार व अति आहार के त्याग की बात की गई है, क्योंकि रसयुक्त आहार, सुषुप्त कामवासना को जागृत करने में प्रबल निमित्त है।

उसके बाद विभूषा त्याग की बात की गई है। शरीर स्नान, तैल, मालिश, आकर्षक वस्त्र, आभूषण आदि भी विकारपोषक होने से उन सबका भी त्याग जरूरी है।

जैन साधु की आचार संहिता में स्नान-त्याग, केशलोच, रंगीन वस्त्र त्याग, आभूषण त्याग, अल्प मूल्य के मर्यादित वस्त्रों को धारण करना इत्यादि जो नियम हैं, उन सबका ध्येय भी ब्रह्मचर्य व्रत की सुरक्षा ही है।

### **गरीबी में दान की तरह**

### **यौवन वय में शील पालन कठिन है।**

जो व्यक्ति बड़ी कठिनाई से अपना जीवन निर्वाह कर पाता हो, उस व्यक्ति के लिए 'दान देना' कठिन है, उसी प्रकार युवावस्था में शील का पालन करना अत्यंत कठिन कार्य है। युवावस्था में काम का हमला अधिक होता है, अतः इस काम शत्रु को समाप्त करने के लिए सतत आत्म जागृति अत्यावश्यक है।

युवावस्था में शील पालन करना हो तो उस व्यक्ति को मोज शोख व विलासिता के साधनों का सर्वथा त्याग करना चाहिये और कठोर जीवन जीना चाहिये।

जीवन व्यवहार में जितनी अधिक सुकोमलता होती है - बाह्य अनुकूलताओं के सेवन की इच्छा रहती है, उतना ही इस व्रत का पालन कठिन हो जाता है।

काम का उत्पत्ति स्थान मन है। मन में काम विकार पैदा ही न हो, अथवा उत्पन्न हुए विकार तुरंत नष्ट हो जाय, इसके लिए जीवन में स्वाध्याय का रस पैदा करना चाहिये। वैराग्य पोषक ग्रंथों का पुनः पुनः स्वाध्याय करने से मन को विकार मुक्त बनाया जा सकता है।

स्त्री राग को तोड़ने के लिए प्रभु की भक्ति भी श्रेष्ठ उपाय है। भक्ति रस के अमृत का पान करने वाले को स्त्री देह में अशुचि के दर्शन सुलभ है।

सहस्रावधानी श्री मुनिसुंदरसूरिजी म. ने 'अध्यात्म कल्पद्रुम' नामक ग्रंथ की रचना की है। उसके दूसरे अधिकार में स्त्री के ममत्व से मुक्ति पाने के लिए बहुत ही सुंदर प्रेरणा की है। वे लिखते हैं -

**'राग के कारण जिन स्त्रियों की वाणी मधुर लगती हैं, और इस कारण प्रीति से तू स्त्रियों में मोहित होता है, परंतु वास्तव में वे स्त्रियाँ तो भवसमुद्र में गिरते हुए प्राणी के गले में पत्थर की शिला समान है।'**

स्त्री के देह में रूप सौंदर्य और वाणी में माधुर्य होने से पुरुष उसके जाल में फंस जाता है।

सामान्यतः स्त्रियों के कंठ में मधुरता अधिक होती है, इस कारण उसके वाग्जाल में अच्छे अच्छे साधक भी फंस जाते हैं।

अरणिक मुनि, आषाढाभूति मुनि, नंदिषेण मुनि आदि का पतन स्त्रियों के वाग्जाल और रूप सौंदर्य के कारण ही तो हुआ था।

जिस व्यक्ति को तैरना नहीं आता है और वह व्यक्ति नदी या समुद्र में गिरे तो डूबता ही है परंतु यदि गले में पत्थर की शिला बांध ले तब तो बचने का सवाल ही कहां रहता है।

स्त्री का राग भी गले में बंधी पत्थर की शिला के समान ही है।

हे आत्मन् ! स्त्री के शरीर में तुझे क्या सुंदरता दिखती है ? उस स्त्री के देह में हड्डी, मांस, चर्बी, खून, आंते, मल, मूत्र आदि भरा हुआ है।

\*तुलसीदास अपनी पत्नी में अत्यंत ही आसक्त थे। एक दिन पत्नी पीयर चली गई तो तुलसीदास भी वहां पहुंच गए। अचानक आए अपने पति को देख रत्नावली ने यही बात कही -

**'अस्थि चरम मम देह में, या में जैसी प्रीति !**

**होत यदि रघुनाथ से, तो नहीं होत भव भीत ''**

हाड मांस से भरे हुए इस देह में आपको जैसी प्रीति है, इतनी प्रीति प्रभु से की होती तो आप इस भयंकर संसार को पार कर देते।

अपनी पत्नी के इस ठपके को सुनकर तुलसीदास जागृत हो गये और सदा के लिए उन्होंने स्त्री संग का त्याग कर दिया।

○ ○ ○

ओ मूर्ख ! गंदगी के ढेर को देखकर तू अपनी नाक - भों सिकोडता है, परंतु आश्चर्य है कि स्त्री का देह अशुचि का भंडार होने पर भी तू उससे अनुराग करता है। यह कितने आश्चर्य की बात है ?''

हर व्यक्ति गंदगी से दूर रहने की कोशिश करता है। गंदगी में पैर नहीं रखता है, अपने हाथों से उसका स्पर्श नहीं करता है। परंतु वो ही व्यक्ति स्त्री देह के पीछे पागल बनता है, यह मोहांधता नहीं तो और क्या है ?

स्त्री का संग इस भव में भी एक जाल खडा करता है और परभव में भी आत्मा को दुर्गति में ही ले जाता है।

\* शादी के बाद तत्काल श्वसुर गृह की ओर जा रही लड़की को रोती हुई देखकर एक बालक ने पूछा, 'यह लड़की क्यों रो रही है ?'

किसी ने जवाब दिया, 'शादी हुई है इसलिए..।'

तत्काल बालक ने दूसरा प्रश्न किया, 'शादी तो इस लड़के की भी हुई है, वह क्यों नहीं रो रहा है ?'

जवाब मिला, 'यह लड़की तो श्वसुर गृह जाकर चुप हो जाएगी, उसके बाद जिंदगी भर उसको ही रोना है।'

शादी के बाद व्यक्ति का संसार कितना बढ जाता है, यह किसी से छिपा नहीं है।

शादी के पहले सिर्फ अकेला था, इतनी ही चिंता थी। शादी की तो एक के दो हो गए। पत्नी की पूरी जवाबदारी सिर पर आ गई। शादी की... अब बाल-बच्चे होंगे। उनकी पूरी जवाबदारी सहन करने में व्यक्ति अपने बहुमूल्य जीवन को ही गंवा देता है।

इसलिए जिसे शीघ्र कल्याण करना हो उसे स्त्री के जाल में फंसना नहीं चाहिए और कदाचित् फंस गए हो तो यथाशीघ्र उस जाल में से मुक्त बनने का प्रयास करना चाहिये।

## सरल बनो

जो आत्मा भीतर से सरल होती है, वो ही आत्मा अपनी भूलों का स्वीकार कर सकती है, आलोचना लेकर शुद्ध हो सकती है। सरल आत्माओं का ही उद्धार होता है। जो आत्माएँ मायावी / कपटी होती हैं, उन आत्माओं का उद्धार कभी भी संभव नहीं है।

क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषाय की भांति पांच इन्द्रियों के पांच विषय भी संसार परिभ्रमण के मुख्य हेतु है।

★ श्रवणेन्द्रिय की आसक्ति के कारण हिरण मौत का शिकार बनता है।

★ चक्षु इन्द्रिय की आसक्ति के कारण पतंगा आग में जलकर खाक हो जाता है।

★ घ्राणेन्द्रिय की आसक्ति के कारण भ्रमर कमल में ही बंद हो जाता है।

★ रसनेन्द्रिय की आसक्ति के कारण मछली को मरना पड़ता है।

और स्पर्शनेन्द्रिय की आसक्ति के कारण हाथी को जिन्दगी भर गुलामी सहन करनी पड़ती है।

एक-एक इन्द्रियों की आसक्ति का इतना अधिक कटु परिणाम है तो जो पांचो इन्द्रियों के अधीन हो, उसकी क्या स्थिति होगी ?

इन इन्द्रियों की गुलामी अत्यंत ही खतरनाक है।

इन पांचो इन्द्रियों में भी स्पर्शनेन्द्रिय को जीतना अत्यंत ही कठिन है। प्रत्येक जन्म में जीवात्मा ने शरीर धारण किया है... और उस शरीर के साथ कम से कम स्पर्शनेन्द्रिय तो अवश्य होती है। अनादि काल से स्पर्शनेन्द्रिय का समागम होने के कारण उसके संस्कार आत्मा में अत्यंत ही गाढ़ बने हुए हैं।

चौदह पूर्वधर जैसे महात्मा, मासक्षमण की उग्र तपश्चर्या करने वाले घोरतपस्वी महात्मा तथा विशुद्ध संयम का पालने करने वाले संयमी महात्मा भी स्पर्शनेन्द्रिय के वश होकर चारित्र धर्म से भ्रष्ट हो गए - ऐसे अनेक दृष्टांत शास्त्र में निर्दिष्ट हैं।

शास्त्र में निर्दिष्ट ऐसे दृष्टांत का वर्णन संयम में शिथिल बनने के लिए नहीं है। हमें ऐसा नहीं सोचना कि 'ऐसे संयमी तपस्वी महात्मा भी संयम का पालन न कर सके तो हमारी तो क्या ताकत है ?'

बल्कि ऐसे प्रसंगों के वर्णन से हमें यह शिक्षा लेने की है कि ऐसे तपस्वी व ज्ञानी महात्मा भी संयम के प्रति सावधान न रहे तो उनका पतन हो गया तो फिर यदि हम पूर्ण जागरूक न रहे तो हमारी क्या दशा होगी ? इस प्रकार संयम पालन व रक्षण के प्रति विशेष जागरूक और सावधान बनना है।

हम अपने संयम पालन में विशेष सावधान बन सके-इसी दृष्टिकोण को

नजर समक्ष रखकर चारित्र से पतित आत्माओं के विस्तृत चरित्र का भी शास्त्र में निर्देश मिलता है।

जैसे कि पहले ही बात हो चुकी है कि पांच इन्द्रियों के ये विषय स्मरण मात्र से भी अपना पतन करते हैं, इस संदर्भ में शास्त्र में निर्दिष्ट रूपसेन और सुनंदा के चरित्र पर आज विहंगावलोकन करेंगे -

### सुनंदा का संकल्प

पृथ्वीभूषण नाम की विशाल नगरी। नगर के महाराजा थे कनकध्वज और महारानी थी यशोमती। राजा और रानी के अत्यंत ही लाडिलें गुणचंद्र और कीर्तिचंद्र नाम के दो राजकुमार थे।

दो पुत्रों के ऊपर महाराजा के इकलौती बेटी थी-सुनंदा।

सुनंदा ने अभी यौवन के प्रांगण में प्रवेश ही किया था-इसके पूर्व ही वह स्त्रियों की 64 कलाओं में अच्छी तरह से निपूण बन गई थी।

युवावस्था में प्रवेश के साथ ही उसका रूप सौंदर्य पूर्ण चन्द्र की भांति एकदम खिल उठा।

एक दिन वह अपने विशाल महल की 7वीं मंजिल के झरोखे में अपनी सखियों के साथ खड़ी होकर नगर के विविध दृश्यों का अवलोकन कर रही थी।

अचानक उसकी दृष्टि सामने रहे भवन की ओर गिरी...और दृश्य देखते ही वह एकदम घबरा गई।

उसने देखा - एक पुरुष अपनी रूप व सौंदर्य से युक्त पत्नी को जोर जोर से पीट रहा है। वह स्त्री जोरों से चिल्ला रही है-हे स्वामिन् ! मैंने कोई अपराध नहीं किया। किसी दुष्ट व्यक्ति ने मेरे विरुद्ध आपके कान फूंक दिए...और आप मेरी बिना किसी परीक्षा के मुझे मार रहे हो ? मेरे ऊपर लगाया गया कलंक बिल्कुल झूठा है।'

वह स्त्री इस प्रकार जोर से बोल रही थी, परन्तु उसका पति उसके वचनों की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दे रहा था और अपनी ही धून में उसे जोरों से पीटे जा रहा था।

यह करुण दृश्य देख सुनंदा एकदम विचारमग्न हो गई। उसके दिमाग में से एक के बाद एक विचार बिजली की भांति कोंधने लगे।

सुनंदा अपनी सखी को कहने लगी, 'हे सखी ! इस पुरुष की क्रूरता को तो देख, यह कितना निर्दयी है। रूप, यौवन और अनेक गुणों से युक्त अपनी

पत्नी को भी एक कुर्तों की तरह पिटता जा रहा है। उसे लेश भी दया नहीं आ रही है। यह दृश्य देखकर मेरा हृदय फटनें लगता है। अतः जीवनभर पुरुष के अधीन रहना यह तो अत्यंत ही दर्दभरी स्थिति है। लोक में जो कहावत हैं 'पुरुष घर का नायक है' यह कहावत अपूर्ण ही है। स्त्री के बिना घर कैसे हो सकता है। स्त्री के बिना पुरुष तो मुसाफिर जैसा ही लगता है। वास्तव में तो स्त्री ही घर का शणगार है।

पुरुष तो एक मात्र परिवार के पालन पोषण के लिए थोड़ा बहुत धन कमा देता हैं, परन्तु घर की शेष जवाबदारियां तो स्त्री ही वहन करती है।

'सुबह उठकर पानी भरना, अनाज साफ करना, अनाज पीसना, दलना, मकान की सफाई करना, रसोई बनाना, बच्चों को नहलाना, कपड़े धोना, सभी को भोजन कराना आदि आदि अनेकविध कार्य स्त्री ही तो संपन्न करती है। घर पर आए अतिथि का सत्कार करती है। सास ननंद आदि के औचित्य का पालन करती है। घर आए साधु-संतों को दान देती है। शारीरिक अस्वस्थता में पति की सेवा करती है। गर्भ वहन करती है और प्रसूति की पीड़ा सहन करती है। किसी भी परिस्थिति में वह अपने पति का साथ नहीं छोड़ती है। अहो ! इतना करने पर भी पुरुष अपनी पत्नी के प्रति कितना कठोर बनता है ? अरे ! इस जगत् में अति निंदनीय कार्य शिकार, जुआ, मांसाहार, शराब, चोरी, वेश्यागमन आदि पाप पुरुष ही तो करता है।

अरे ! जीवन पर्यंत कठोर जीवन जीने पर भी स्त्री को तो जिन्दगी भर पुरुष के अधीन ही रहना पड़ता है। ऐसे स्त्री जीवन को धिक्कार है।

ऐसा जीवन मुझे स्वीकार्य नहीं है अतः मैं किसी से लग्न करना नहीं चाहती हूँ।'

हे सखी ! मैंने कल ही माता-पिताजी को बात करते हुए सुना हैं कि - सुनंदा अब युवा हो गई हैं, अतः शीघ्र ही उसके योग्य वर की शोध की जाय' परन्तु मुझे लग्न नहीं करना है, अतः तू जाकर मां को कह दे कि 'सुनंदा लग्न करना नहीं चाहती है।'

सुनंदा की इस बात को सुनकर उस सखी ने कहा, 'सखी ! अभी तू छोटी है। युवावस्था प्राप्त होने पर तो स्त्री के लिए पुरुष ही सर्वस्व होता है।

संसार में दो प्रकार के सुख है - पौद्गलिक और आध्यात्मिक। संसार के पौद्गलिक सुख की प्राप्ति स्त्री-पुरुष के संयोग में ही है। पति के वियोग में तो स्त्री को वैधव्य का दुःख सहन करना पड़ता है।

आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति तो समत्व योग की साधना से ही संभव है। समता की साधना के बिना जीवन में खूब धर्म कार्य करने पर भी आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति संभव नहीं है।

अतः हे सखी ! अभी तू किसी प्रकार का साहस मत कर। पूर्ण युवावस्था आएगी तब तुझे पता लगेगा।...और शास्त्र में भी ब्रह्मचर्य व्रत को अत्यंत ही दुष्कर कहा है। अतः अभी तू धैर्य धारण कर।'

सखी की इस सलाह को सुनकर सुनंदा ने कहा, 'सखी ! तेरी बात मैंने ध्यान पूर्वक सुन ली है...परंतु अभी तो मेरी शादी करने की कोई इच्छा नहीं है, अतः माँ को जाकर कह देना- 'सुनंदा अभी शादी नहीं करेगी, जब उसकी इच्छा होगी तब वह कहला देगी। इसके साथ ही मेरे आवास में किसी पुरुष को न भेजे। यदि कोई काम आ पड़े तो किसी दासी के द्वारा ही कहला देना।'

सखी ने जाकर राजमाता को सब बातें कह दी।

मां ने पूछा, 'ऐसा करने का कोई कारण ? दासी ने कहा, 'माताजी ! विशेष कोई कारण नहीं है। सुनंदा अभी छोटी हैं...यौवन में प्रवेश करेगी तब उसकी इच्छाओं में स्वतः परिवर्तन आ जाएगा।'

सखी की बात में राजमाता ने भी अपनी सम्मति दे दी।

### **अशुभ निमित्त पतन का द्वार**

एक छोटी-सी चिनगारी क्षणभर में घास के ढेर को जलाकर खाक कर देती है। ड्राईवर की एक छोटी-सी भूल अनेकों की जिन्दगी को क्षण भर में नष्ट कर देती है। बस, इसी प्रकार एक छोटा-सा अशुभ निमित्त साधक आत्मा के जीवन को भी पतन के गर्त में डूब देता है।

\* स्त्रीरत्न की केशलता का मामूली स्पर्श और इसके साथ ही संभूति मुनि का चारित्र से पतन !

\* मुझे धर्मलाभ नहीं, अर्थ-लाभ चाहियें। वेश्या के इन शब्दों को सुनकर चमत्कार दिखलाने के लिए तैयार हो गए नंदीषेण मुनि 12-12 वर्ष तक वेश्या के जाल में फंसे रहे।

\* राजीमती के नग्न देह के दर्शन मात्र से रथनेमि संयम धर्म से चलित हो गए और राजीमती के पास काम की याचना करने लग गए।

### **सुनंदा की बदलती विचारधारा**

जल के प्रवाह की तरह समय बीतने लगा...और एक दिन सुनंदा ने

अपनी आंखों से जो दृश्य देखा, उस दृश्य को देखते ही उसकी पूर्व विचार धारा एकदम बदल गई ।

सुनंदा अपनी सखियों के साथ अपने महल के 7वीं मंजिल के झरोखें में खड़ी रहकर नगर के दृश्यों को निहाल रही थी ।

वसंत ऋतु का समय था । कोयल के कूजन से वातावरण में ताजगी थी । अचानक सुनंदा की नजर सामने वाले भवन पर गिरी । उस भवन में उसने सोलह शणगार से सुसज्ज रूप और लावण्य की साक्षात् मूर्ति समान एक नव विवाहिता कन्या को अपने प्रियतम के साथ वार्ता विनोद करते हुए देखा ।

सुनंदा अनिमेष दृष्टि से उस दंपती युगल के रूप सौंदर्य एवं वार्तालाप के दृश्य को देख रही थी ।

...बस दृश्य देखते ही उसकी अंतरात्मा में काम वासना के संस्कार जागृत हो गए और मन में ही सोचने लगी, ऐसा सुख मुझे भी मिले तो ।'

**दूध में घी की भांति ईंधन में अग्नि छुपी हुई है, परन्तु वह अग्नि, निमित्त पाकर ही प्रगट होती है । मोहाधीन संसारी आत्मा के भीतर काम, क्रोध आदि के संस्कार तो पड़े हुए ही हैं । वे तभी तक शांत पड़े होते हैं...और ऐसा ही लगता है मानो व्यक्ति निष्काम और अक्रोधी बन गया हैं...परन्तु ज्योंहि निमित्त मिलता है वे संस्कार तुरंत जागृत हो जाते हैं और व्यक्ति कामातुर क्रोधातुर बन जाता है ।**

इसीलिए तो ब्रह्मचर्य के विशुद्ध परिपालन के लिए नौ-नौ बाड़ों का विधान किया गया है । ब्रह्मचर्य पालन के इच्छुक व्यक्ति को इन बाड़ों का पालन अवश्य करना ही चाहिये । इन नियमों के पालन में ही व्रत की सुरक्षा रही हुई है और नियम के भंग में व्रत की असुरक्षा ।

ब्रह्मचर्य पालन के इच्छुक व्यक्ति को स्त्री, पशु व नपुंसक के आवास से दूर ही रहना चाहिये और विवाहित दंपती के परस्पर वार्तालाप, व्यंग आदि को भी नहीं सुनना चाहिये-क्योंकि इस प्रकार के दृश्य देखने से अन्तरमन में सुषुप्त काम वासना के संस्कार जागृत होते हैं ।

सुनंदा की यही सबसे बड़ी भूल थी । वह उस दंपति के दृश्य को एक ही नजर से देख रही थी । परिणाम स्वरूप उसका मन काम के विचारों से ग्रस्त बन गया ।

सुनंदा को स्तब्ध खड़ी देख किसी सखी ने उसे बुलाने की चेष्टा की परन्तु उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया । उस सखी ने उस और नजर डाली

जिधर सुनंदा की दृष्टि स्थिर बनी हुई थी ।

दृश्य देखते ही वह सखी सुनंदा के मनोगत भावों को एकदम समझ गई । सखी ने कहा, 'जो तू देख रही है, वह तुझे पसंद है ?

उसने कहा, 'मेरे भाग्य में यह सुख कहां से ?'

'अरे ! तू ऐसे दीन वचन क्यों बोल रही हैं मैं शीघ्र ही तेरी मां को यह बात करूंगी जिससे शीघ्र ही तेरी मनोकामना पूर्ण होगी ।'

सुनंदा ने कहा, 'नहीं ! नहीं ! अभी माँ को बात मत करना- मुझे लज्जा का अनुभव हो रहा है...बाद में धीरे धीरे मा को बात करूंगी । परंतु अभी तो नहीं ।'

'सुनंदा ! जैसी तेरी इच्छा ! परन्तु अभी तो तू नीचे चल ! इस दृश्य को ज्यों ज्यों तुम देखोगी, तुम्हारा दुःख घटने के बजाय बढ़ता ही जाएगा ।'

इस प्रकार बात कर वही सखी सुनंदा को नीचे के खंड में ले आई । नीचे के खंड में आकर सुनंदा, मार्ग पर के दृश्यों को देखने लगी ।

इसी बीच उसी नगर के वसुदत्त सेठ का चोथा पुत्र रूपसेन-जो अत्यंत ही स्वतंत्र था । घूमता हुआ सुनंदा के भवन के सामने पान की दूकान पर आ गया । रूपसेन मात्र नाम से ही रूपसेन नहीं था-उसका रूप भी अद्भूत था ।

अचानक सुनंदा की दृष्टि रूपसेन पर पड़ी । रूपसेन के अद्भूत रूप को देखकर वह एकदम मोहित होकर अपनी सखी को कहने लगी, 'सखी ! देख तो ! उस युवक का रूप कितना सुंदर है ? उसकी आंखें कितनी मनमोहक हैं ? उसका सौंदर्य मन को भाने वाला है ।

इसे देखकर मेरे मन में इसके प्रति एक अद्भूत आकर्षण पैदा हो रहा है । मेरा मन तो उसे पाने के लिए तड़प रहा है ।'

हंस कर सखी कहने लगी, 'सुनंदा ! पहले तो तू पुरुष का नाम भी नहीं लेती थी और अब ... । इसीलिए तो मैंने तुझे उस दिन कहा था, 'जो कुछ बोलना हो विचार करके बोलना चाहिये ।'

सुनंदा बोली, 'तेरी बात ठीक है, किन्तु अब तू मेरे घाव पर नमक क्यों छिड़क रही है ? अब तो तू मेरी इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न कर ।'

सखी ने कहा, 'तू धैर्य रख ! पहले तो उसके साथ कुछ परिचय कर । उसके बाद ही तेरी इच्छापूर्ति हो सकेगी । प्रेम लता का बीज तो प्रथम दृष्टि मिलन है, अतः अभी तो तू कागज पर अपना अभिप्राय लिखकर दे-वह पत्र मैं वहां तक पहुंचाऊंगी । उसके अनुसार आगे कदम उठाऊंगी । यदि वह चतुर



होगा तो शीघ्र जवाब देगा और चतुर नहीं होगा तो उस मुख के साथ संबंध करने से क्या फायदा ?

तुरंत ही सखी ने एक कागज पर लिखा, 'निरर्थक जन्मगतं नलिन्याः यया न दृष्टं तुहिनाशुबिम्बम्' जिस कमलिनी ने चंद्र के दर्शन नहीं किए, उसका जन्म निरर्थक ही गया है ।'

वह सखी उस पत्र को लेकर रूपसेन के पास गई । रूपसेन ने वह पत्र पढ़ा । वह सुनंदा के मनोभाव को तुरंत पहिचान गया । उसके हृदय में भी सुनंदा के प्रति आकर्षण भाव पैदा हो गया ।

तुरंत ही उसने पत्र का जवाब देते हुए लिखा -

**उत्पत्तिरिन्दोरपि निष्फलैव दृष्ट्वा विनिद्रानलिनी न येन ।'**

जिसे देखकर नलिनी विकसित नहीं हुई, उस चन्द्रमा की उत्पत्ति भी निष्फल है ।

रूपसेन के इस जवाब को पढ़कर सुनंदा एकदम खुश हो गई ।

उसके बाद सुनंदा के कहने से वह सखी पान का बीडा लेकर रूपसेन के पास गई और बोली, 'आप यहां आकर सुनंदा को रोज दर्शन दे, आपके दर्शन के बिना वह भोजन करना नहीं चाहती है ।'

सखी के इन शब्दों को सुनकर रूपसेन के आश्चर्य का पार न रहा । उसने कहा, 'मैंने तो सुना है सुनंदा पुरुषद्वेषिणी है तो फिर उसके हृदय में मेरे प्रति प्रेम कैसे पैदा हो गया ?

सखी ने कहा, 'आप की बात सत्य है किन्तु आज आपके दर्शन के बाद उसकी स्थिति जल बिना मछली की भांति हो गई है । अतः आप प्रतिदिन आकर उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण करे ।'

इस बात को सुनकर रूपसेन अत्यंत खुश हो गया और प्रतिदिन वहां आने का वचन देकर चला गया ।

बस, अब तो उनका यह क्रम निरंतर चलता रहा । रूपसेन रोज नए नए वेष पहिनकर आता और सुनंदा भी अपने रूप का प्रदर्शन करती । इस प्रकार प्रतिदिन उन दोनों का दृष्टिमिलन होने लगा ।

**आंख-यह पाप का प्रवेश द्वार है । इस आंख से परमात्मा के दर्शन, जीवदया का पालन और शास्त्र का स्वाध्याय भी कर सकते हैं, परन्तु मोहाधीन आत्मा के मन में ये विचार नहीं आ सकते । उसकी आंख तो किसी के सुंदर रूप की पिपासु ही होती है । पता नहीं आंख का दुरुपयोग**

**कर आत्मा कैसे कैसे भयंकर कर्मों का बंध कर देती है ?**

रूप दर्शन की पिपासा ही भविष्य में स्पर्श की वृत्ति पैदा करती है ।

## **कर्मण् की गति व्यापारी**

धीरे धीरे समय बीतने लगा । प्रतिवर्ष की भांति कौमुदी महोत्सव का दिन नजदीक आने से राजा की ओर से नगर में पडह बजाया गया कि 'दुःखी, रोगी और वृद्ध पुरुषों को छोड़कर सभी को कौमुदी महोत्सव में उपस्थित होने का है । जो राजा की इस आज्ञा का भंग करेगा, उसे भयंकर सजा की जाएगी ।'

राजा की इस आज्ञा को सुनकर लोग महोत्सव में जाने की तैयारी करने लगे । इसी बीच सुनंदा ने सोचा, 'अहो ! रूपसेन के साथ संबंध करने के लिए यह एक अमूल्य अवसर हैं - इस प्रकार विचार कर उसने सखी के द्वारा रूपसेन को कहलाया कि कौमुदी महोत्सव के दिन सभी नगरवासी बाहर चले जाएंगे, अतः आपको राजमहल के पीछे के भाग से डोरी के बल पर चढ़कर महल में आ जाने का हैं ।' इस बात को सुनकर रूपसेन भी एकदम खुश हो गया और उस दिन की इंतजारी करने लगा ।

कौमुदी महोत्सव के दिन राजा अपने प्रधान मंडल के साथ नगर बाहर निकल पड़ा था । महारानी यशोमती भी जाने के लिए तैयार हो गई थी । प्रयाण के पूर्व महारानी अपनी पुत्री सुनंदा को लेने के लिए आई ।

सुनंदा पहले से ही कपाल पर औषधियों का लेप कर मुंह नीचा कर पलंग पर सोई हुई पड़ी थी ।

तुरंत ही रानी ने कहा, 'बेटी ! क्या तकलीफ हैं ? महोत्सव में नहीं चलना हैं ?'

उसने कहा 'माताजी ! मेरे मस्तक में भयंकर पीड़ा हो रही हैं, अतः मस्तक भी ऊंचा नहीं कर सकती हूँ ।'

माता ने कहा, 'तब तो मैं भी उद्यान में नहीं जाऊंगी, तेरे पास ही बैठुंगी ।'

उसने कहा, 'माताजी ! आप मुख्य पट्टरानी हो, आप नहीं जाओगी तो पिताजी को क्रोध भी आ सकता हैं, अतः मेरी सेवा में दासियों को रखकर आप चली जाओ । धीरे धीरे मेरा मस्तक ठीक हो जाएगा और उसके बाद मैं भी चली आऊंगी ।'

इस प्रकार कहकर सुनंदा ने माता को कौमुदी महोत्सव में भेज दी ।

अहो ! एक पाप छिपाने के लिए व्यक्ति कितने पाप करता है ? सुनंदा ने अपने पाप को छिपाने के लिए झूठ का आश्रय लिया । परन्तु उसे पता नहीं है कि उसका यह पाप उसके लिए कितना भारी पड़ जाएगा ।

इधर रानी के जाने के बाद सुनंदा ने महल के पिछले भाग में मोटा रस्सा डलवा दिया... रात्रि के प्रारंभ में वह रूपसेन के आगमन की इंतजारी करने लगी ।

इधर उसी नगर में महाबल नाम का जुआरी रहता था । जो पिछले दिनों में जुएं में सब कुछ हार गया था और कर्जदार बन गया था । अपना कर्ज चुकाने के लिए उसने चोरी करने का निर्णय किया था ।

संयोगवश वह जुआरी ही सुनंदा के भवन के पीछले खंड के पास आ गया । अचानक उसने वहां मजबूत डोरी को लटकते हुए देखा । वह समझ गया कि जरूर इसके पीछे कोई संकेत होना चाहिए । वह जुआरी तो था ही, अतः उसने तुरंत निर्णय ले लिया- 'इस पार या उस पार !' या तो कुछ लेकर लौटुंगा अथवा मौत तो है ही ।

झरोखे के नीचे आकर उसने उस डोरी को हिलाया ।

सुनंदा की दासी ने सोचा 'जरूर रूपसेन लगता हैं ।'

महाबल डोरी के सहारे ऊपर चढ़ गया और दासी के संकेत के अनुसार उसने सुनंदा के खंड में प्रवेश किया ।

इसी समय उद्यान में गई महारानी की सूचना से दो दासी सुनंदा की स्वस्थता के समाचार जानने और राजमंदिर में से पूजा की सामग्री लेने के लिए वहां आ गई ।

यह देख सुनंदा घबरा गई । रूपसेन के आगमन का पता न लगे, इसलिए उसने तुरंत दीपक बुझा दिया और सुनंदा की सखियों ने बाहर जाकर आगंतुक सखियों के पूछने पर कहा, सुनंदा का सिर दर्द अत्यंत बढ़ गया था । दीपक का ताप भी वह सहन नहीं कर सकती थी अतः दीपक बुझा दिया गया हैं... अभी अभी उसे नींद आई हुई है अतः उसके खंड में कोई न आए ।'

इस बात को सुन महारानी की वे सखिया राजभवन में चली गई ।

इधर वह धूर्त महाबल सुनंदा के साथ विषय संबंध करने लगा । थोड़ी ही देर बाद महारानी की सखिया राजभवन में से पूजा की सामग्री लेकर पुनः सुनंदा के भवन की आने लगी ।

पाप का भंडा फूट न जाय इसके लिए सखी की सूचना से सुनंदा ने

तुरंत ही रूपसेन (महाबल) को जल्दी चले जाने का संकेत कर दिया । वह महाबल तुरंत ही जाने के लिए तैयार हो गया । जाते जाते वह सुनंदा के हार आदि आभूषण भी लेता गया ।

अतिनिंद्य पापाचरण में सफलता मिलने पर भी सुनंदा मनोमन अत्यंत खुश थी ।

इसी बीच महारानी की सखियों ने सुनंदा के खंड में प्रवेश किया । माया कपट पूर्वक सुनंदा ने उन्हें कहा, 'मैंने जो सिर दर्द की वेदना सहन की हैं, वह असह्य थी... परंतु अब दर्द कम हो गया है । माताजी को कहना कि वे ज्यादा चिंता न करे ।''

सुनंदा की कुशलता को जानकर उन सखियों ने उद्यान की ओर प्रयाण किया ।

इधर रूपसेन की स्थिति का विचार कर ले ।

वह रूपसेन शारीरिक अस्वस्थता का बहाना निकालकर अपने घर रह गया था और निश्चित संकेत के अनुसार रात्रि के समय सुनंदा के भवन की ओर आगे बढ़ने के लिए निकल पड़ा था ।

उसके मन में सुनंदा को पाने के अनेक मनोरथ थे परन्तु कुदरत को वह संयोग संबंध मंजूर नहीं था-परिणाम स्वरूप वह ज्योंही एक कच्ची दिवाल के पास से गुजर रहा था, वह दिवाल उसके ऊपर गिर पड़ी-और तत्क्षण उसकी मृत्यु हो गई ।

कर्म की गति बड़ी विचित्र है । व्यक्ति सोचता क्या हैं और बनता क्या है ? रूपसेन कायिक पाप तो नहीं कर सका परन्तु उसका मन मानसिक पाप से लिप्त था-परिणाम स्वरूप वह रूपसेन मरकर उसी सुनंदा की कुक्षी में गर्भ के रूप में उत्पन्न हुआ ।

इधर रूपसेन के माता-पिता जब घर आए तब उन्होंने रूपसेन को नहीं देखा । चारों ओर छानबीन की, फिर भी उसका कोई पता नहीं चला ।

अंत में रूपसेन के पिता ने राजा को निवेदन किया । राजा ने भी अनेक राजपुरुषों को भेजकर रूपसेन की चारों ओर खोज कराई, किन्तु रूपसेन का कहीं भी पता नहीं चला । चले भी कहां से ? वह तो दिवाल गिरने के साथ ही मौत को भेंट चूका था और मरकर सुनंदा के ही गर्भ में उत्पन्न हो गया था ।

कर्म का यह कैसा विचित्र गणित है । जिस सुनंदा में वह आसक्त था, उसी सुनंदा की कुक्षी में कर्मसत्ता ने उसे पुत्र के रूप में धकेल दिया ।

कुछ ही दिनों के बाद सुनंदा के देह में गर्भ के चिन्ह दिखाई देने लगा । अपकीर्ति के भय से सुनंदा ने अपनी सखियों तथा दायन की मदद से क्षार औषधियों का भक्षण कर उस गर्भ को समाप्त कर दिया ।

सुनंदा के गर्भ में रहे रूपसेन के जीव की हत्या हो गई और वह मरकर पास ही उद्यान में सांप के रूप में पैदा हुआ ।

इधर रूपसेन के पुनः मिलन का कोई संभावना नहीं होने से सुनंदा ने अपनी सखी के माध्यम से लग्न की अभिलाषा व्यक्त की ।

सुनंदा की इच्छा जानकर रानी को अत्यंत ही हर्ष हुआ ।... और कुछ ही दिनों में क्षितिप्रतिष्ठित नगर के राजकुमार के साथ उसका लग्न हो गया ।

धीरे धीरे समय बीतने लगा । एक दिन भयंकर गर्मी के ताप से बचने के लिए सुनंदा अपने पति के साथ उद्यान में चली गई । वृक्षों की शीतल छाया में वे दंपति परस्पर वार्ता विनोद करने लगे । इसी बीच रूपसेन का वह जीव सर्प सुनंदा के पास आ गया और अपनी फनों को फैलाकर सुनंदा का रूप दर्शन करने लगा ।

अचानक सुनंदा ने उस सांप को देखा और वह एकदम घबरा गई । वह जोरों से चिल्लाकर भागने लगी, 'सांप ! सांप ! बचाओ ! बचाओ !!'

सुनंदा की इस आवाज को सुनकर तत्काल कुछ सैनिक वहां आ गए । उन्होंने जैसे ही उस सांप को देखा, तत्क्षण शस्त्र के प्रहारों से खत्म कर दिया ।

वह सर्प मरकर कौए के रूप में पैदा हुआ ।

देह बदल जाता है किन्तु संस्कार नष्ट नहीं होते हैं । रूपसेन के एक के बाद एक भव बदलते जा रहे हैं, परन्तु उसके राग के संस्कार तो वैसे ही दृढ़ बने हुए हैं ।

कुछ दिनों के बाद सुनंदा अपने पति के साथ संगीत का आनंद लूट रही थी ।

इसी बीच रूपसेन का जीव वह कौआ उड़ता हुआ वहां आया । सुनंदा के अद्भूत रूप को देखकर वह 'कौ कौ' करने लगा ।

संगीत के इस वातावरण में कौए की कर्कश आवाज को सुनकर राजा को गुस्सा आ गया...तुरंत ही उसने गिलोल से कौए पर निशाना ताका । तत्क्षण कौआ नीचे गिर पड़ा । उसके प्राणपंखेरु उड़ गए ।

वह कौआ मरकर हंस के रूप में पैदा हुआ । वह हंस धीरे धीरे बड़ा हुआ ।

एक दिन राजा अपनी सुनंदा के साथ उद्यान के भू भाग में आनंद कर

रहे थे । अनेक संगीतज्ञ मधुर स्वर से गीत गा रहे थे । वातावरण अत्यंत ही खुशनुमा था । इसी बीच वह हंस भी उस वृक्ष के ऊपर आकर बैठ गया और अनिमेष दृष्टि से सुनंदा के रूप को देखने लगा । इसी बीच कहीं से उड़ता हुआ कोई कौआ वहां पर आया और हंस के पास में ही बैठकर उसने राजा के ऊपर बीट (विष्टा) कर दी । राजा को बड़ा गुस्सा आया । कौए को मारने के लिए उसने तीर छोड़ा-परन्तु वह तीर कौए के बजाय हंस को लग गया । वह हंस नीचे गिर पड़ा । तत्क्षण उसके प्राणपंखेरु उड़ गए ।

किसी ने कहा, 'भूल तो कौए ने की और सजा हंस को हो गई ।'

दूसरे ने कहा, 'बुरों की संगति करने पर सज्जन को ही सहन करना पड़ता है ।'

हंस मरकर उसी देश के जंगल में हिरण के रूप में पैदा हुआ ।

जरा सोचे ! सुनंदा के रूप दर्शन में पागल बनने के कारण उस रूपसेन की कितनी खराब हालत हो गई । एक के बाद एक भव उसके बिगड़ते जा रहे हैं । इस घटना को सुनकर चक्षु इन्द्रिय से होने वाले पापों से बचने का प्रयत्न करोगे न ?

### हिरण का शिकार

एक बार सुनंदा ने राजा को पूछा, 'स्वामी ! आप जंगल में हिरण का शिकार कैसे करते हैं ? हिरण तो अत्यंत ही चपल होता है, वह तो किसी की पकड़ में आता नहीं है !'

राजा ने कहा, 'प्रिये ! तेरी बात ठीक है, किन्तु हिरण संगीत का अत्यंत ही शौकिन होता है । कर्ण प्रिय संगीत सुनने में वह एकदम मुग्ध हो जाता है । हम शिकार करने के लिए संगीतकारों को साथ में ले जाते हैं । उनके संगीत में जब हिरण मुग्ध बन जाते हैं, तब हम उनका शिकार कर लेते हैं ।'

सुनंदा ने कहा, 'मात्र घास खाने वाले उन निरपराधी हिरणों को इस प्रकार कष्ट देकर मारने से क्या फायदा ?'

राजा ने कहा, 'अहो ! इसमें क्या ? यह तो हमारा राजधर्म है । यह पृथ्वी हमारी है अतः इस पृथ्वी पर के घास को खाने के कारण हम उन्हें खत्म करते हैं इसमें पाप किस बात का ? सुनंदा ने कहा, 'आपकी बात ठीक है, एक बार मुझे भी यह शिकार देखना है ।'

राजा ने कहा, 'तेरी इच्छा है तो हम कल ही चलेंगे ।'

बस दूसरे ही दिन राजा अपनी रानी के साथ शिकार हेतु जंगल में चला गया। संगीतकार अपने संगीत के बल से हिरणों को खींचकर ले आए।

उसी समय रूपसेन के जीव हिरण की दृष्टि सुनंदा पर पड़ी और वह सुनंदा के रूप के दर्शन में एकदम मोहित हो गया। उसी समय संगीतकारों ने संगीत बंद कर दिया। दूसरे हिरण तो इधर उधर भागने लगे, परन्तु रूपसेन का जीव वह हिरण स्थिर दृष्टि से सुनंदा को देखने लगा। तभी राजा ने अपने बाण के प्रहार से उसे बिंध लिया और मौत के घाट उतार दिया।

राजा ने नौकरों को उस मृत हिरण का मांस पकाने का आदेश दिया। तुरंत ही नौकरो ने उस हिरण के देह को चिर डाला और उसका मांस पकाने लगे।

उस मांस में अनेक सुंदर मसाले आदि डालकर उसे पकाया गया...और उसके बाद राजा और रानी दोनों उस मांस का भक्षण करने लगे।

उस मांस में लुब्ध बने राजा और रानी उस मांस की खूब खूब प्रशंसा करने लगे।

### **मुनि भगवतों का धर्मबोध**

राजा और रानी उस मांस भोजन की भरपेट प्रशंसा कर रहे थे, इसी बीच दो अतिशय ज्ञानी मुनि भगवत वहां पर आ गए। उन्होंने राजा-रानी को मांस भक्षण करते हुए देखा। इसके साथ उन्होंने अपने ज्ञान बल से देखा कि 'एक समय सुनंदा जिसको पाने के लिए तरस रही थी, आज उसी का मांस भक्षण कर रही है। अहो ! कैसा विचित्र है - यह संसार ! इस संसार के संबंध भी कितने विचित्र हैं ? जिसके प्रति अगाढ़ प्रेम था...आज उसी का मांस भक्षण !

संसार की इस विचित्रता के प्रत्यक्ष दर्शन कर वे मुनि अपने मस्तक हिलाने लगे।

अचानक राजा ने उन मुनियों को मस्तक धुनाते हुए देख लिया।

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ- 'अरे ! ये मुनि अपना मस्तक क्यों धूना रहे हैं ? जरूर कुछ कारण होना चाहिये ।'

वह दौड़ता हुआ मुनि भगवत के पास गया और उनके चरणों में प्रणाम कर बोला, 'प्रभो ! हमारे कुल में तो परंपरा से ही मांस भक्षण की प्रवृत्ति है, अतः आपके जैसे बड़े व्यक्ति बिना किसी कारण के तो मस्तक नहीं धूना सकते। प्रभो ! मस्तक धुनन के पीछे क्या कारण हैं ?

मुनि भगवत ने कहा, 'राजन् ! जिनेश्वर भगवत के एकांत हितकर उपदेश अमृत का पान नहीं करने के कारण ही तुम ऐसी बात कर रहे हो। बाकी

तो हिंसा आदि एकांत पाप ही है...और हिंसादि पापों का सेवन कर उनके परिणाम स्वरूप यह जीव नरक आदि चार गतियों में जहां तहां भटकता रहता है। अरे ! कायिक पापों से तो आत्मा की दुर्गति होती ही है, मात्र मन से हुए पापों से भी आत्मा को इस संसार में कितने भयंकर दुःख सहन करने पड़ते हैं। बस, ज्ञान द्वारा इस बात को प्रत्यक्ष देखकर ही हमने मस्तक धूनाया था, अन्य कोई कारण नहीं है।

राजा ने कहा, 'प्रभो ! आपने ज्ञान बल से ऐसा क्या देखा और वह कौन-सा जीव हैं ? कृपा करके स्पष्ट बताए ताकि हम अज्ञानी को भी कुछ लाभ हो सके।

मुनि ने कहा, 'राजन् ! विषय व कषाय के अधीन बने हुए जीव विषय के चिंतन मात्र से ही दुर्ध्यान कर दुर्गति में जाते हैं।

राजा की श्रवण जिज्ञासा को जानकर मुनि भगवत ने राजा को नरक व निगोद का विस्तृत स्वरूप समझाया।'

मुनि ने कहा, 'राजन् ! अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है, अभी भी सावधान बनकर रत्नत्रयी आराधना में लग जाओ तो तुम्हारा बेड़ा पार हो सकता है।

'हे प्रभो ! आपने ज्ञान से जो देखा, उस जीव की बात नहीं कहोगे ?

मुनि भगवत ने कहा, 'कर्म की गति बड़ी विचित्र है। कर्म के उदय से संसार में ऐसी विचित्र घटनाएं बनती हैं कि उन्हें प्रगट किया जाय तो एक दूसरों का स्नेह संबंध टूटने की संभावना रहती है-इत्यादि भय स्थलों के कारण ही हम नहीं कहते हैं। इस कारण उस सत्य को जानने का आग्रह छोड़ दो।

सुनंदा ने कहा, 'भगवन् ! आप ही ने कहा है कि सभी जीव कर्म के अधीन होने के कारण शुभाशुभ प्रवृत्ति करते हैं, अतः कर्म के उदय से होने वाली घटना को आप निःसंकोच कहे।'

मुनि भगवत ने कहा, 'वह घटना तुम्हारे जीवन संबंधी है, इस घटना को सुनकर तुम्हें दुःख तो नहीं होगा न ?'

सुनंदा ने कहा, 'प्रभो ! आप खुशी से कहो।' हमारे दुष्कृतों से हमें बोध होगा तो उनसे मुक्त बनने का उपाय आप ही से मिल सकेगा।'

राजा व रानी की अंतरंग योग्यता को जानकर मुनि भगवत ने अपने ज्ञान बल से जानकर सुनंदा के बाल्यकाल से लेकर वर्तमान काल तक की रूपसेन संबंधी सभी घटनाओं का स्पष्ट उल्लेख कर दिया और कहा-एक रूप दर्शन के पाप के कारण उस रूपसेन के कितने कितने भव हो गए ? और अभी जो मांस भक्षण किया-वह भी रूपसेन का ही जीव था' इत्यादि घटनाओं को

सुनने के साथ ही राजा व रानी के आश्चर्य का पार न रहा ।

संसार की इस विचित्र स्थिति के ऊपर उन्हें विरक्ति का भाव पैदा हुआ । अहो ! एक मानसिक पाप के कारण रूपसेन की यह हालत ?

सुनंदा का हृदय भी पाप के पश्चात्ताप से भर आया । उसकी आंखें अश्रुभीनी हो गई ।

राजा व रानी ने कहा, 'प्रभो ! आपका आगमन नहीं हुआ होता तो हमारी क्या दुर्दशा होती ? अब आप ही हमारा उद्धार करो ।'

मुनि भगवंत ने कहा, 'चारित्र्य धर्म के स्वीकार द्वारा तुम इस पाप की सजा में से मुक्त बन सकते हो ।'

सुनंदा ने पूछा, 'रूपसेन का जीव हिरण के रूप में मरकर अब कहां पैदा होगा ? और उसका उद्धार होगा या नहीं ?'

मुनि भगवंत ने कहा, 'वह हिरण मरकर विंध्याचल अटवी में सुग्राम नगर के पास आए जंगल में हाथी के रूप में पैदा हुआ है । और तुम्हारे ही मुख से अपने सात भवों की बात को सुनकर उसे जातिस्मरण ज्ञान होगा और फिर उसका उद्धार होगा ।'

सुनंदा ने राजा को कहा, 'स्वामिन् ! मेरे आत्मोद्धार के लिए मुझे दीक्षा ग्रहण करने के लिए अनुमति प्रदान करें ।'

राजा ने कहा, 'मेरी भी यही इच्छा है ।' राजा की इस भावना को जानकर अन्य अनेक राजसेवक भी दीक्षा के लिए तैयार हो गए ।

राजा ने कहा, 'हे भगवंत ! पुत्र के राज्याभिषेक आदि लोक व्यवहार को पूर्णकर मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ, अतः आप दो दिन यही ठहर जाय ।'

मुनि भगवंत ने कहा, 'गुर्वाज्ञा बिना हम यहां नहीं रुक सकते हैं, अतः तुम अपनी भावनानुसार पास ही गांव में गुरुदेव के पास आकर दीक्षा ले सकोगे ।' इतना कहकर वे दोनों मुनि आगे बढ़े ।

इधर दो ही दिन में पुत्र के राज्याभिषेक आदि की जवाबदारियों को पूर्ण कर राजा अपनी रानी सुनंदा व अनेक राज सेवकों के साथ गुरु भगवंत के पास पहुंच गया और बड़े ही उल्लास के साथ सभी ने भागवती दीक्षा स्वीकार की ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद वे राजर्षि रत्नत्रयी की सुंदर आराधना करने लगे और अंत में समस्त कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चले गए ।

इधर सुनंदा साध्वी ने भी सुंदर संयम धर्म की आराधना के फलस्वरूप अवधि ज्ञान प्राप्त किया । एक दिन रूपसेन के जीव हाथी को प्रतिबोध देने के लिए गुरुणी की आज्ञा प्राप्त कर सुनंदा ने सुग्राम नगर की ओर अपना विहार

प्रारंभ किया ।

## हाथी को प्रतिबोध

इधर विंध्याचल की अटवी में पैदा हुआ वह हाथी एक दिन सुग्राम नगर में आकर तुफान मचाने लगा । आसपास के सभी लोगों को हैरान परेशान करने लगा । सभी नगरवासी उस हाथी के उपद्रव से परेशान थे ।

सुनंदा साध्वी ने अपने ज्ञान बल से जंगल में से उस हाथी को नगर की ओर आते हुए देखा और वे स्वयं उसके सन्मुख जाने लगी ।

नगरवासी लोग सुनंदा साध्वी को हाथी के उपद्रव आदि की बातें समझाने लगे किन्तु सुनंदा साध्वी ने किसी की बातों की ओर ध्यान नहीं दिया और वे क्रमशः निर्भय होकर हाथी की दिशा की ओर आगे बढ़ने लगी ।

वह हाथी सामने ही आ रहा था और सुनंदा साध्वी जी भी उसी दिशा की ओर कदम बढ़ा रही थी ।

हाथी उछलता हुआ आ रहा था - दूर खड़े लोग यही कल्पना कर रहे थे कि बस ! अभी साध्वी जी को यह मार देगा ।

परन्तु ज्योंही वह हाथी निकट आया, उसने अपनी दृष्टि से सुनंदा साध्वी के मुख को देखा । देखते ही उसके मन में मोह उत्पन्न हो गया ।

उसी समय सुनंदा साध्वी ने उसकी मनः स्थिति को जानकर उसके प्रतिबोध के लिए कहा, '**हे रूपसेन ! बोध पा ! बोध पा !**' मोह से मूढ़ बनकर इतने इतने कष्ट पा रहा है, फिर भी मेरे ऊपर रहे मोह को क्यों नहीं छोड़ रहा हैं ? मेरे लिए तू ने छ छ भव बिगाड़ दिए और अब इस हाथी के भव में उत्पन्न हुआ हैं । इस भव को भी क्यों बिगाड़ रहा हैं ? अभी भी बाजी हाथ में है । अभी भी अपने आपको संभाल दे । स्नेह पाश के बंधन तोड़ दे...और आत्म कल्याण के पावन पथ पर आगे बढ़ ।'

सुनंदा साध्वी के मुख से इस प्रकार के वचनमृतों का श्रवण कर वह हाथी सोच में पड़ गया, ...और इस प्रकार विचार करते करते उसे तत्काल जाति स्मरण ज्ञान हो गया । उस ज्ञान के बल से उसे अपने सातों भव प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे ।

वह सोचने लगा, 'अहो ! स्नेह पाश के बंधन में फंसकर मैंने यह क्या कर डाला ? सचमुच, काम में अंध बनकर मैंने अपने अनेक भव बिगाड़ दिए..अहो ! चिंतामणि रत्न से भी अधिक कीमती मनुष्य भव को प्राप्त करने पर भी मैं उस भव को ऐसे ही हार गया ।

अहो ! इस हाथी के भव में अनेक जीवों की हिंसा कर मैंने कितने पाप

किए हैं ? उन पापों से मेरा कैसे छूटकारा होगा ?' इस प्रकार सोचता हुआ वह अपने पापों का तीव्र पश्चात्ताप करने लगा और अपनी सूँठ से साध्वीजी भगवंत के चरणों में प्रणाम कर विनति करने लगा कि आप मेरा उद्धार करो ।

साध्वीजी भगवंत ने कहा, 'जागे तब से सुबह ! अभी भी तुम सावधान बन जाओ । अब भविष्य में कोई पाप न हो जाय उसके लिए सावधान बन जाओ । पाप-त्याग की प्रतिज्ञा कर निष्पाप जीवन जीकर अपनी आत्मा का उद्धार करो । इस भव में भी निष्पाप जीवन जीकर तुम अपनी आत्मा को उर्ध्व-गामी बना सकते हो ।'

आसपास व दूर खड़े लोगों ने जब इस प्रकार हाथी से वार्तालाप करते हुए देखा तब उन्हें अत्यंत ही आश्चर्य होने लगा । हाथी को इस प्रकार शांत देखकर सभी लोग साध्वीजी भगवंत के पास आ गए और मनोमन साध्वीजी भगवंत के ज्ञान, तप व साधना की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे ।

किसी ने जाकर नगर के राजा को बात की कि साध्वीजी भगवंत के उपदेश को सुनकर उस हाथी ने उपद्रव करना छोड़ दिया है और एकदम शांत हो गया है । यह जानकर नगर का राजा भी वहां पर आया ।

राजा ने साध्वीजी भगवंत को प्रणाम किया और हाथी के प्रतिबोध का कारण पूछा ।

अनेक लोगों के उपकार के लिए साध्वीजी भगवंत ने विस्तार से हाथी के पूर्व भव का वर्णन किया और चक्षु इन्द्रिय व मन से होने वाले पापों की भयंकरता समझाई ।

साध्वीजी भगवंत के उपदेश को सुनकर राजा आदि अनेक लोगों ने प्रतिबोध प्राप्त किया ।

तत्पश्चात् साध्वीजी ने राजा को कहा, 'हे राजन् ! यह हाथी सर्वगुणों से युक्त उत्तम जाति का है । यह हाथी जिसके घर में होता है उसके घर की ऋद्धि व प्रताप बढ़ता है । अतः तुम इसका सावधानी पूर्वक पालन करना । इसके पालन से तुम्हें **जीवदया, गुणीजन का संग, साधर्मिक वात्सल्य और तपस्वी की सेवा-ये** चार महान् लाभ प्राप्त होंगे ।

राजा ने साध्वीजी भगवंत की आज्ञा का स्वीकार किया ।

राजा के हां भरने पर वह हाथी भी राजा के साथ गांव की ओर चला और साध्वीजी भगवंत के निर्देशानुसार उसका पालन करने लगा ।

**वह हाथी भी छड्ड के पारणों छड्ड का तप करने लगा । पारणों में निर्दोष आहार लेने लगा । इस प्रकार तप धर्म व ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ वह हाथी अंतिम समय में नमस्कार महामंत्र के श्रवण सहित समाधि**

**पूर्वक आयुष्य पूर्ण कर आठवें देवलोक में अटारह सागरोपम के दीर्घ आयुष्य वाला देव बना ।** वहां से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म प्राप्त कर चारित्र धर्म अंगीकार कर शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करेगा ।

सुनंदा साध्वीजी भी राजा आदि को प्रतिबोध देकर वहां से आगे बढ़ी । अनेक भव्य जीवों को सन्मार्ग का दान कर अंत में समस्त कर्मों का क्षय कर उन्होंने अक्षयपद प्राप्त किया ।

### **इंद्रिय संयम के प्रति जागरूक बने**

सुनंदा व रूपसेन का चरित्र यहां समाप्त हुआ । इस चरित्र श्रवण से हमें बहुत कुछ प्रेरणा लेने की है ।

रूप का आकर्षण कितना खतरनाक है ! एक रूप के आकर्षण के कारण प्रारंभ में सुनंदा का नैतिक पतन हुआ ....और एक परपुरुष के साथ गलत संबंध करने के लिए तैयार हो गई ।

सचमुच आज T.V. सिनेमा व विडियो चैनल के इस युग में आंख का पाप अत्यधिक बढ़ गया है । रूप कोई प्रदर्शन की वस्तु नहीं है । अनादिकालीन काम के संस्कारों के कारण ही पुरुष को स्त्री का व स्त्री को पुरुष का आकर्षण रहा हुआ है । अब उसमें भी रूप का प्रदर्शन कर आग में घी डालने का ही काम किया जा रहा है ।

**आज किसी भी वस्तु के विज्ञापन के नाम पर स्त्री के अंगोपांग का खुलेआम प्रदर्शन किया जा रहा है...परिणाम स्वरूप पुरुष का नैतिक पतन हो रहा है ।**

स्त्री यदि शीलवती नहीं होगी और पुरुष सदाचारी नहीं होगा तो उनसे पैदा होने वाली संतानें भी सदाचारी कैसे होगी ?

आज समाज में चारों ओर हिंसा, बलात्कार व अपहरण की घटनाएं सुनाई दे रही है । उनके रोकथाम का एक ही उपाय है-सदाचार की महत्ता समझी जाय और उसे जीवन में उतारने का प्रयत्न किया जाय ।

पाप का प्रवेश द्वार आंख है । रूप के आकर्षण से पाप का प्रवेश होता है । उस आंख के पाप को मन का समर्थन मिल जाता है, तब उस मानसिक पाप के कायिक पाप में बदलते देर नहीं लगती है ।

राष्ट्र में होने वाली अपहरण व बलात्कार की घटनाओं का मूल तो आंख का पाप ही है । एक आंख का पाप आत्मा का कितना अधःपतन करा देता है-सुनंदा के चरित्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

मोक्षमार्ग की संपूर्ण साधना एक मात्र मानव भव में ही संभव है और

इसी कारण मानव भव की सबसे अधिक महत्ता है। देवलोक की भौतिक सुख समृद्धि के आगे मानव को प्राप्त भौतिक समृद्धि नाम मात्र की भी नहीं है। एक बार देवलोक की दिव्यता देखने वाला मानव के इस चोले की गंदगी व उसके तुच्छ सुखों की ओर नजर भी नहीं करेगा... फिर भी अनंत ज्ञानी महापुरुषों ने कहा है कि मोक्ष की प्राप्ति एक मात्र मानव भव में ही संभव है।

मानव भव में भी मोक्षमार्ग की आराधना साधना के लिए पांच इन्द्रियाँ व्यवस्थित चाहिये। इन्द्रियों की हानि है तो संयम का पालन अच्छी तरह नहीं हो सकेगा।

- जो कान से बहरा है, वह जिनवाणी का श्रवण कैसे कर पाएगा ?
- जो आंख से अंधा है, वह जीवदया का पालन कैसे कर सकेगा ?
- जो जीभ से मुक है वह प्रभु की स्तुति कैसे कर पाएगा ?
- जो लूला लंगडा है वह दान, तीर्थ यात्रा आदि धर्मों की आराधना कैसे कर पाएगा ?

तात्पर्य यह है कि मोक्षमार्ग की साधना के लिए पांचों इन्द्रियाँ परिपूर्ण होना अत्यावश्यक है।

परंतु पांच इन्द्रियाँ मिल जाय, इतने मात्र से ही मोक्ष नहीं मिल जाता है।

- तलवार मिल गई, इतने मात्र से ही व्यक्ति सुरक्षित नहीं हो जाता है, तलवार मिलने के साथ साथ उसे बराबर चलाना भी आना चाहिये अन्यथा वही तलवार उसके लिए मौत का कारण बन जाएगी।

- धन मिलने से भी व्यक्ति सुखी नहीं हो जाता, उस धन का सदुपयोग करने की कला भी उसमें होनी चाहिये।

बस, इसी प्रकार दुर्लभतम मानव भव में परिपूर्ण पांच इन्द्रियाँ मिल गई, इतने मात्र से काम नहीं होगा उन इन्द्रियों का सदुपयोग करने की कला भी चाहिये। यदि वह कला अपने पास न हो तो ये इन्द्रियाँ भयंकर से भयंकर विनाश करा सकती हैं।

### 1. स्पर्शनेन्द्रिय की आसक्ति से पतन

संभूति मुनि ने वर्षों तक कठोर संयम व तप किया था। उग्र तप द्वारा उन्होंने अपनी काया को एकदम कृश बना दी थी... परन्तु एक दिन हस्तिनापुर नगर में सनत्कुमार चक्रवर्ती अपने अंतःपुर के साथ संभूति मुनि के दर्शनार्थ आए तब अचानक भूल से चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न की केशलता का स्पर्श संभूति मुनि को हो गया। बस, उस स्पर्श के साथ ही संभूति मुनि की विचार धारा बदल गई और उन्हें स्त्री रत्न के भोग में सुख दिखाई देने लगा... और आखिर

उन्होंने नियाणा कर लिया, 'मैंने जो तप तपा है, उसके फलस्वरूप आगामी भव में मुझे ऐसे स्त्रीरत्न की प्राप्ति हो।' बस, इस नियाणा के कारण संभूति मुनि आगामी भव में ब्रह्मदत्त चक्री बने, परन्तु उस स्पर्शनेन्द्रिय की आसक्ति के फलस्वरूप वह मरकर 7वीं नरक में चला गया।

ऐसे एक नहीं सैकड़ों प्रसंग हैं कि स्पर्शनेन्द्रिय की आसक्ति के फलस्वरूप अच्छे अच्छे त्यागी तपस्वी महात्माओं का भी अधःपतन हो गया।

### 2. रसनेन्द्रिय आसक्ति से पतन

कंडरीक मुनि ने 1000 वर्ष तक कठोर तप व चारित्र का पालन किया था... परन्तु रसनेन्द्रिय की पराधीनता के कारण उनका भयंकर अधःपतन हो गया। चारित्र जीवन हार गए और साथ में 7 वीं नरक में चले गए।

### 3. चक्षु इन्द्रिय की आसक्ति से पतन

पाप का प्रवेश द्वार आंख है। किसी के रूप दर्शन में मुग्ध बनी आंखें आत्मा को घोर पतन कराए बिना नहीं रहती है।

\* तीन खंड का अधिपति रावण जिसके अंतःपुर में स्त्रियों की कोई कमी नहीं थी फिर भी सीता के अद्भुत रूप दर्शन के बाद वह पागल हो गया। किसी भी उपाय से सीता को पाने के लिए उसने भरसक प्रयत्न किए। आखिर सीता तो नहीं मिली किंतु भयंकर युद्ध में बेमौत मारा गया और मरकर चौथी नरक में चला गया।

\* मणिरथ स्वयं सम्राट् था, परन्तु अपने छोटे भाई युवराज युगबाहु की पत्नी मदररेखा के अद्भूत रूप में आसक्त बना। मदररेखा को पाने के लिए युगबाहु की छाती में कटार भोंककर उसकी हत्या कर दी। आखिर मदररेखा उसे मिल नहीं सकी... और वह मरकर नरक में चला गया।

\* रूपसेन ! सुनंदा के अद्भूत रूप में आसक्त बने रूपसेन ने अपने 7-7 भव बर्बाद कर दिए। सुनंदा तो उसे नहीं मिली... परन्तु 7-7 भवों तक उसका अधःपतन होता गया। आखिर ज्ञानी गुरुदेव के संयोग से सुनंदा को अपनी भूल समझ में आई। सुनंदा ने हाथी के भव में रहे रूपसेन को पुनः सन्मार्ग में स्थिर किया।

### इन्द्रिय नियंत्रण के उपाय

संपूर्ण इन्द्रिय जय के बिना आत्मा का कल्याण संभव नहीं है। अतः मुमुक्षु आत्मा को तो संपूर्ण इन्द्रिय जय के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिये। परन्तु एक भावश्रावक का जीवन जीने के लिए इन्द्रियों पर नियंत्रण अवश्य

चाहिये । जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को नियंत्रण में रखता है, वो ही व्यक्ति भविष्य में इन्द्रिय विजेता बन सकता है ।

### **कर्णोन्द्रिय नियंत्रण के उपाय**

1. दूसरों की निंदा मत सुनो ।
2. अपनी प्रशंसा सुनने से दूर रहे ।
3. गंदे व अश्लील गीत नहीं सुने ।
4. सद्गुरु के मुख से नियमित धर्मोपदेश सुने ।
5. कल्याणमित्रों के साथ तत्वचर्चा करे ।
6. महापुरुषों की प्रशंसा सुने ।
7. महापुरुषों के जीवन चरित्र सुने ।

### **चक्षु इन्द्रिय के नियंत्रण के उपाय**

1. सिनेमा, T.V. और नाटक आदि नहीं देखे ।
2. किसी की लड़ाई देखने के लिए खडे न रहे ।
3. पर-स्त्री के रूप को गौर करके न देखे ।
4. अश्लील साहित्य नहीं पढ़े ।
5. नियमित प्रभु के दर्शन करें ।
6. सत्साहित्य का वांचन सदैव बनाए रखे ।

### **रसनेन्द्रिय के नियंत्रण के उपाय**

1. रात्रि भोजन का त्याग करे ।
2. मांसाहार, शराब, अंडे आदि का त्याग करे ।
3. हॉटल व बाहर का खाना छोड़ दे ।
4. 22 प्रकार के अभक्ष्य भक्षण का त्याग करे ।
5. उन्माद बढ़ाने वाले भोजन का त्याग करे ।
6. मौन रहने का अभ्यास करे ।

### **स्पर्शोन्द्रिय के नियंत्रण के उपाय**

1. पर स्त्री के अंगोपांग का स्पर्श न करे ।
2. पर स्त्री के अतिपरिचय से दूर रहे ।
3. वेश्या के संग से दूर रहे ।



## धन वैश्या

### धन की तुष्णा

किसी सम्राट् के एक नियम था, 'वह प्रातःकाल की मधुरवेला में उसके द्वार पर आए हुए याचकों को वह मुंह मांगा दान देता था।' प्रतिदिन उसके द्वार पर अनेक याचक आते थे। राजा की उदारता के कारण याचकों की मांगने की वृत्ति भी कम हो जाती थी।

एक बार प्रातःकाल की वेला में एक संन्यासी का आगमन हुआ। राजा ने पूछा, 'जो चाहिये सो मांग लो।'

संन्यासी ने कहा, 'मेरे इस पात्र को सोना मोहर से भर दे।'

खजांची थाली भरकर सुवर्ण मुद्राएँ ले आया।

राजा ने वे सुवर्ण मुद्राएँ संन्यासी के पात्र में डाल दी। परंतु आश्चर्य! ढेर सारी सुवर्ण मुद्राएँ डालने पर भी संन्यासी का पात्र पूरा नहीं भरा गया।

राजा की आज्ञा से वह दूसरी बार थाली भरकर सुवर्ण मुद्राएँ ले आया। परंतु आश्चर्य! दूसरी बार भी वह पात्र भरा नहीं गया।

राजा ने तीसरी बार आज्ञा करके थाली भरकर सुवर्ण मुद्राएँ मंगवाई...परंतु तीसरी बार भी वो ही हालत हुई।

राजा के आश्चर्य का पार न रहा।

राजा ने पूछा, 'बाबाजी! यह पात्र किससे बना है?'

ढेर सारी सुवर्ण मुद्राएँ डालने पर भी यह पात्र भर नहीं पाया?'

संन्यासी ने सत्य का घटस्फोट करते हुए कहा, '**राजन्! यह पात्र न तो सोने का है, न चांदी का! यह पात्र तो मानव हृदय को काटकर बनाया गया है। इसमें जितना भी डालोगे, सब समा जाएगा।**'

मानव हृदय की यह कैसी करुणता! सदैव अतृप्त असंतुष्ट ही रहने वाला यह हृदय !!

### कृपण की वृत्ति

रविवार का दिन था।

एक कृपण सेठ पैसों की वसुली के लिए अपने घर से सूर्योदय के साथ ही निकल पड़ा। 1 कि.मी. पैदल चलने के बाद उस सेठ के दिमाग में एक विचार बिजली की भांति कौंध उठा।

सेठ सोचने लगे, 'अहो! घर से निकलने के पूर्व दिवान खंड की लाईट Light बंद करना भूल गया हूँ। पत्नी ने यदि Light बंद नहीं की तो व्यर्थ ही लाईट का बील बढ़ जाएगा।' इस प्रकार सोचकर सेठ वापस अपने घर की ओर आगे बढ़े।

घर आते ही सेठ ने द्वार खटखटाया। तत्क्षण पत्नी ने द्वार खोला। द्वार पर अपने पति को खड़े देख पत्नी को आश्चर्य हुआ।

पत्नी ने पूछा, 'आप कैसे आए?'

पति ने कहा, 'दिवानखाने की लाईट बंद करना भूल गया था, इसलिए वापस आया हूँ।'

खीजकर पत्नी ने कहा, 'वह Light तो आपके जाने के बाद तुरंत बंद कर दी थी, परंतु आप वापस लौट आए तो आपके जूते घीस गए, इसका क्या?'

'अरे! क्या मैं इतना मुर्ख हूँ? ये जूते तो मैं बगल में दबाकर आया हूँ। धन में आसक्त कृपण व्यक्ति का यह स्पष्ट चित्र प्रस्तुत है।'

### कृपण की मनोदशा

नगर के बाहर चमत्कारिक यक्ष का मंदिर था। चमत्कार देख यक्ष के मंदिर में भक्तों के टोले उभरते थे।

जो भी भक्त यक्ष के भंडार में 1 रु. डालता, उसे यक्ष के प्रभाव से 100 रु. का लाभ होता।

सो गुणा धन प्राप्ति के लोभ से यक्ष के मंदिर में भक्तों की भीड़ लगी रहती थी।

एक बार एक कृपण व्यक्ति उस यक्ष के मंदिर में पहुँच गया।

यक्ष से स्तुति करने के बाद वह कृपण बोला, 'हे यक्षराज! आप प्रसन्न होकर अपने भक्तों को 1 रु. के बदले में 100 रुपए देते हो, तो भक्त को 99 ही मिलते हैं, अतः आप मुझ पर कृपा करें। मेरा 1 रु. काटकर 99 रुपए दे दो।'

यक्ष ने कहा, 'यह संभव नहीं है।'

धरती से भी कुछ पाना हो तो पहले अनाज का दान (वपन) करना पडता है, बाद में ही कुछ मिलता है, परंतु कृपण के लिए तो धन 11 वाँ प्राण होने से, उसके लिए धन का त्याग, अशक्य ही होता है।

## भिखारी का मन भी भिखारी

एक राजा को रात्रि में एक स्वप्न आया, 'आज तुम किसी भिखारी के हाथ से भीख लोगे तो तुम युद्ध में विजयी बन जाओगे।'

प्रातः काल हुआ। युद्ध में विजय की आशा से वह राजा प्रातः काल में ही रथ में आरूढ़ होकर नगर के बाहर भिखारी की बस्ती की ओर आगे बढ़ने लगा।

इधर एक भिखारी अपनी झोली में मुट्ठीभर चावल लेकर भीख मांगने के लिए निकल पडा।

सामने से आ रहे राजा के रथ को देखकर वह भिखारी एकदम खुश हो गया। अहो ! आज मेरे भाग्य की सीमा नहीं है...आज तो सुकन में महाराजा स्वयं आ रहे हैं...आज तो मेरा दारिद्र्य सदा के लिए दूर हो जाएगा। इस आशा और अरमान से भिखारी का चेहरा भी खिल उठा।

थोड़ी ही देर बाद राजा व भिखारी एकदम निकट आ गए। राजा अपने रथ में से नीचे उतरा और भिखारी के पास आकर बोला, 'आज तुम मुझे कुछ भिक्षा दो...मैं तुमसे मांगने के लिए आया हूँ।'

राजा के इन शब्दों को सुनकर वह भिखारी हक्का-बक्का हो गया। अरे यह क्या ? जहां से कुछ पाने की आशा थी, वहां से कुछ मिलना तो दूर रहा...आज मुझे कुछ देना पडेगा ? ओहो ! आज तो मेरे सुकन ही बिगड गए...आज मुझे कुछ भी मिलने वाला नहीं है। मेरे सारे अरमान नष्ट हो गए।

वह भिखारी कुछ भी देने के लिए राजी नहीं था, जबकि राजा पुनः पुनः प्रार्थना कर रहा था, 'आज कुछ तो देना ही पडेगा।'

आखिर बेमन से भिखारी ने अपना हाथ झोली में डाला...और बड़ी मुश्किल से चावल के चार दाने उसने अपने हाथ में लिये और राजा के पात्र में डाल दिए।

भिक्षा पाकर राजा खुश हो गया। उसने उस भिखारी का खूब आभार माना और रथ में आरूढ़ होकर उसने वहां से विदाई ले ली।

इधर भिखारी के पश्चाताप का पार नहीं था। आखिर वह आगे बढ़ा और दिन भर गांव में भीख मांगकर शाम के समय अपनी झोपडी में आ गया।

सभी भिखारी इकट्ठे हुए।

आज उस भिखारी के चेहरे पर प्रसन्नता नहीं थी, क्योंकि प्रारंभ में ही उसे कुछ देना पडा था।

थोड़ी देर बाद उस भिखारी ने अपनी झोली खोली...और यह क्या ! उसने देखा उस झोली में चावल के चार दाने सोने के बन गए हैं।

उसने सोचा, 'अहो ! मैंने राजा को सिर्फ चार ही दाने दिए थे, अतः चार दाने सोने के बन गए हैं...शायद राजा के परिवेष में कोई देव तो नहीं था। अरे ! मैंने आज यह कैसी भूल कर दी...यदि सब दाने दे दिए होते तो आज मेरे पास कितना सोना हो जाता ? मेरा दारिद्र्य सदा के लिए दूर हो जाता।

परंतु अब उस भिखारी के हाथ में कुछ नहीं था। जो अवसर आया था, वह तो चला गया था।

आखिर भिखारी का मन भी तो भिखारी ही होता है। मात्र धन मिलने से व्यक्ति उदार नहीं बन जाता है।

## अनर्थकारी अर्थ (धन)

ठीक ही कहा है - 'अर्थमनर्थ भावय नित्यं' - अर्थ, अनर्थकारी हैं, यह भावना हमेशा करनी चाहिये।

◆ कामांध पुरुष को अधम कहा जाय तो अर्थांध को अधमाधम कहना होगा। काम में आसक्त, वर्तमान काल में तो सुखानुभूति कर रहा होता है, जब कि धन में आसक्त व्यक्ति तो यह लोक और परलोक दोनों बिगाड़ता है।

◆ धन की तीव्र आसक्ति में से 'संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान पैदा होता है, जो व्यक्ति को यावत् नरक में ले जाता है मम्मण सेठ की नरक गति का कारण हिंसा या मांसाहार नहीं था, किन्तु धन की आसक्ति ही उसे 7वीं नरक में ले गई थी।

◆ धन की मूर्च्छा मात्र देव व मनुष्य को ही नहीं किंतु एकेन्द्रिय वनस्पतिकाय में भी देखने को मिलती है।

◆ रूपवान स्त्री का आकर्षण तो सिर्फ युवकों को होता है, जब कि धन का आकर्षण तो बालक, वृद्ध, स्त्री आदि सभी को होता है।

◆ दुनिया में बड़े बड़े भयंकर पाप धनिकों के घर में ही होते हैं।

◆ हार्टएटेक, B.P., अल्सर आदि भयंकर रोग भी धनिकों के घर पर ही महमान बनकर जाते हैं, क्योंकि वहीं पर उनका मान सन्मान ज्यादा होता है।

◆ क्रोध से प्रीति, मान से विनय और माया से विश्वसनीयता नष्ट होती हैं,

जब कि धन के लोभ से तो सभी गुणों का नाश हो जाता है ।

◆ धन का सर्वश्रेष्ठ उपयोग दान ही हैं, जो संपत्ति दान में काम नहीं आती हैं, वह या तो भोग मार्ग में जाती हैं या ऐसे ही नष्ट हो जाती है ।

◆ धन के अर्जन में दुःख है, अर्जित धन के संरक्षण में दुःख है । धन आए तो भी दुःख और धन जाए तो भी दुःख है । वास्तव में धन दुःख का ही मूल है ।

हमेंशा याद रखें पश्चाताप किसी गलत कार्य का ही किया जाता है ।

इन अटारह पाप स्थानकों में पांचवा पाप कौन सा है ?

जवाब - पांचवा पाप परिग्रह है ।

अर्थात् हमारे जिनेश्वर भगवंतो ने परिग्रह को पाप ही कहा है । पैसा रखना ही पाप है । इसीलिए साधु के पांचवें महाव्रत में परिग्रह का सर्वथा त्याग रखा गया है ।

परन्तु जो गृहस्थ, मूर्च्छा-आसक्ति, ममता, राग भाव आदि के पाप के कारण परिग्रह का सर्वथा त्याग करने में असमर्थ है, उसके लिए अनंतज्ञानी तारक परमात्माओं ने दूसरे नंबर का अर्थात् परिग्रह परिमाण का धर्म बतलाया है । अर्थात् गृहस्थ को अपने परिग्रह का परिमाण अवश्य करना चाहिये ।

### **अनादिकालीन मूर्च्छा**

अनादि काल से जीवात्मा में आहार, भय, मैथुन और परिग्रह नाम की चार संज्ञाएँ रही हुई है । इन चारों के संस्कार जीवात्मा में इतने अधिक गाढ बन चुके हैं कि उन संस्कारों को तोड़ना अत्यंत ही कठिन कार्य है ।

परिग्रह अर्थात् मूर्च्छा, धन आदि के प्रति मूर्च्छा-ममता के संस्कार जीवात्मा में इतने अधिक गाढ बने हुए हैं कि उन संस्कारों को तोड़ना अत्यंत ही कठिन कार्य है । यावत् एकेन्द्रिय वनस्पतिकाय आदि में भी धन के प्रति मूर्च्छा देखने को मिलती है । शास्त्र में ऐसी वनस्पतियों का वर्णन आता है जो वनस्पति, जिस भूमि में धन गड़ा हुआ होता है, वहां अपना जाल फैला देती है ।

यद्यपि वह धन उस वनस्पति को कुछ भी काम लगने वाला नहीं है, परन्तु जन्म जन्मांतर के मोह के संस्कार से ही उसे उस धन का आकर्षण रहता है । समरादित्य चरित्र के अन्तर्गत एक कथा है जिसमें भूमि में धन गाड़ने के बाद 21-21 भव निकल जाते हैं, फिर भी धन की मूर्च्छा दूर नहीं हो पाती है । पशु तिर्यच व एकेन्द्रिय के भवों में भी वह स्थिति बनी रहती है । धन वहीं का वहीं गड़ा हुआ रह जाता है और उस धन को पाने के लिए 21-21 भव पूरे हो जाते हैं । नारियल वृक्ष के भव में भी वह जीव उस धन की मूर्च्छा के कारण

अपने पत्ते उस भूमि पर फैला देता है, जहाँ पर धन गड़ा हुआ है ।

भव बदल जाता है परन्तु मूर्च्छा का भाव / संस्कार नहीं बदल पाता है ।

\* राज्य की प्राप्ति के पूर्व कुमारपाल के जीवन में बनी हुई सत्य घटना है । कुमारपाल उस समय जंगलों में भटक रहे थे । एक बार एक वृक्ष के नीचे आराम कर रहे थे, तभी उन्होंने देखा कि एक चुहाँ बिल में से सोना महोरे निकाल रहा है और उन्हें देख देखकर खुश हो रहा है । कुमारपाल यह दृश्य अपनी आंखों से देख रहे थे । थोड़ी देर बाद वह चुहाँ उन सोना महोरों को वापस बिल में ले जा रहा था । अचानक कुमारपाल ने 1-2 सोना महोर उठा ली । ओघ संज्ञा के कारण चुहें को लगा कि सोना महोरे कुछ कम है । वह बाहर आया और तडप तडप कर मर गया ।

\* मम्मण सेट के पास धन की कोई कमी नहीं थी । रत्नों से मढे हुए सोने के दो बैलों का वह मालिक था । इतना इतना धन होने पर भी वह धन उसे कम ही लग रहा था । मौत से लडकर भी वह अधिक धन पाना चाहता था । इतनी संपत्ति होने पर भी वह न दान दे सका और न ही उसे खा सका । धन का ढेर वहीं का वहीं रह गया परन्तु उस धन की मूर्च्छा ने उसे सातवी नरक में पहुंचा दिया ।

धिक्कार हो धन की उस मूर्च्छा को, जो आत्मा का इतना घोर अधःपतन करा देती है ।

### **सदैव अतृप्त मानव मन**

\* पैरों की Size के अनुसार बूट, चंपल व जूतों का माप निश्चित किया जा सकता है ।

\* मस्तक की Size के अनुसार टोपी का माप निश्चित किया जा सकता है ।

\* व्यक्ति की लंबाई व कम्मर की मोटाई के अनुसार पेंट Pant का माप निश्चित किया जा सकता है ।

\* पेट की भूख के अनुसार भोजन का परिमाण निश्चित किया जा सकता है ।

\* खानेवालों की संख्या के अनुसार रसोइया रसोई का एस्टीमेट Estimate निकाल सकता है ।

परन्तु आश्चर्य है कि किसी भी उपाय से मानव के मन की भूख का माप निकाला नहीं जा सकता है । उसे कितना ही मिल जाय वह सदैव अतृप्त ही रहता है ।

प्रारंभ में लगता है कि 500-1000 मिल जाएंगे तो यह मन संतुष्ट हो

जाएगा, परन्तु ज्योंहि 500-1000 मिल जाते हैं, त्योंहि उसकी Demand बढ़ जाती है, वह तुरंत ही High Jump लगा देता है, और उसकी मांग 5-10 हजार की हो जाती है।

परन्तु ज्योंहि 5-10 हजार मिल जायेंगे त्योंहि लाख-दो लाख की मांग चालू हो जाएगी। चाहे जितना मिले, मन को संतोष नहीं होता है।

सुभूम चक्रवर्ती छ खंड का अधिपति था फिर भी उसे संतुष्टि नहीं थी, वह सातवाँ खंड जीतना चाहता था। आखिर सातवाँ खंड तो उसे नहीं मिला किंतु 7वीं नरक उसे अवश्य मिल गई।

असंतुष्टि अतृप्ति ही मानव मन की सबसे बड़ी कमजोरी है।

किसी के द्वार पर आए याचक की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है, परन्तु उस याचक की समस्त इच्छाओं का पूर्ण करना शक्य नहीं है।

कहा भी है "इच्छाओ आगाससमा अणंतिया।" जैसे आकाश का कहीं अंत नजर नहीं आता है, उसी प्रकार इच्छाओं का कोई अंत नजर नहीं आता है। ज्यों ज्यों इच्छाएँ पूर्ण होती जाती हैं, त्यों-त्यों नई नई इच्छाएँ पैदा होती जाती हैं।

\*दो मासा पाने की इच्छा से आए कपिल को जब राजा ने इतना कह दिया कि तुम्हें जितना चाहिये, उतना मांग लो। तो लोभ के वशीभूत हुए उस कपिल को संपूर्ण राज्य की प्राप्ति में भी संतुष्टि नजर नहीं आई।

'जहा लाहो तहा लोहो।' ज्यों ज्यों लाभ बढ़ता जाता है त्यों त्यों लोभ बढ़ता ही जाती है। जैसे लाभ की कोई सीमा नहीं है, वैसे ही लोभ की भी कोई सीमा नहीं है।

जिस प्रकार ईंधन से कभी अग्नि तृप्त नहीं होती है। जिस प्रकार नदियों से सागर तृप्त नहीं होता है। जिस प्रकार मुर्दों के आगमन से श्मशान कभी तृप्ति नहीं होती है, उसी प्रकार चाहे जितना धन मिल जाय, फिर भी यह मानव मन संतुष्ट नहीं हो पाता है। उसकी Demand वैसी की वैसी बनी रहती है।

### **मुख्य किस्मों ? धन की वृद्धि में या हानि में ?**

किसी कवि ने ठीक ही कहा है

**दाम विना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान् ।**

**सुखी ने देख्यो जगत में, सब जग लियों में छान ।**

मैंने सारे जगत् को दूँढ लिया है, यहां न तो धनवान् सुखी है और न ही गरीब।

जिसके पास संपत्ति नहीं है, वह निर्धनता के कारण दुःखी है। वह अपने पेट का खड्डा भरने में समर्थ नहीं है। वह दाने दाने के लिए तरस रहा होता है। वह सुबह अपना पेट भरता है तो शाम की उसे चिंता सताती है और शाम का पेट भर जाय तो कल सुबह क्या खाएंगे ? उसकी चिंता उसे सता रही होती है... इस प्रकार की चिंताओं के कारण वह सदैव आकुल व्याकुल और परेशान रहता है।

अब जिसके पास में अमाप संपत्ति है, वह भी इस संसार में दुःखी है। वह भी ईर्ष्या व लोभ की आग में सेका जा रहा है।

**एक धनी व्यक्ति अपने से अधिक धनी व्यक्ति को ईर्ष्या के मारे देख नहीं पाता है। उसकी आंखों में किसी गरीब के प्रति करुणा के बजाय धिक्कार की भावना होती है। वह अंदर से जल रहा होता है। मेरे पास में दो करोड है और उसके पास पांच करोड है। आ ! हा ! हा !!**

दूसरे के उत्कर्ष को देखने वाले और उसे सहने वाले दुनिया में विरले ही होते हैं। अधिकांश लोग दूसरों के उत्कर्ष को देखकर मन ही मन जलते रहते हैं।

धनवान् व्यक्ति का दूसरा बड़ा अवगुण है वह लोभी होता है जो कुछ मिल गया, उसमें मन संतुष्ट नहीं होता है। उसे तो और अधिक पाने की तीव्र लालसा रहती है, जो कुछ मिला है, वह उसे कम ही नजर आता है... इस कारण वह 5-25 वर्ष की इस छोटीसी जिंदगी में 50-100 वर्ष का काम अपने सिर पर उठा लेता है। वह नए नए प्लॉट, नए नए कारखाने डालता ही रहता है। धन को अधिकाधिक बढ़ाने की चिंता में उसे दो टाईम शांति से भोजन करने की भी फुर्सत नहीं होती है। वह सुबह का भोजन 2-3 बजे और शाम का भोजन रात को 11-12 बजे करता है। जिन संतानों को उसने पैदा किया है, उन बाल-बच्चों से बातचीत करने की भी उसे फुर्सत नहीं होती है।

**गरीब दुःखी है, क्योंकि उसके पास में भूख है किंतु भोजन नहीं है।**

**धनवान् दुःखी है क्योंकि उसके पास में भोजन है किंतु भूख नहीं है।**

इससे स्पष्ट है कि इस संसार में सभी दुःखी हैं। गरीब भी और धनवान भी।

कई बार ऐसा भी देखने को मिलता है कि गरीब के घर खानेवाले बहुत हैं किंतु खिलाने के लिए दो टंक का भोजन भी नहीं है। जब कि किसी धनवान के

घर खिलाने के लिए ढेर सारी सामग्रियाँ है तो उसके घर खाने वाला कोई नहीं है ।

## **धनी भी दुःखी-निर्धन भी दुःखी, तो सुखी कौन ?**

यह प्रश्न उठना सहज है । इसका जवाब है जिसने धन की मूर्च्छा उतार दी है, वह सुखी है । भोगी के पास सुख की आशा रखना बेकार है । सुखी तो वह है जिसने धन की समस्त आसक्तियों को तिलांजलि दे दी है । ममता के बंधन को जिसने तोड़ डाला है, ऐसा व्यक्ति हर परिस्थिति में सुख की अनुभूति कर सकता है ।

अज्ञानता व मोह के कारण ही व्यक्ति बाह्य भौतिक साधनों में सुख की कल्पना करता है और उन्हें बढ़ाने की भरपूर कोशिश करता रहता है, परन्तु आश्चर्य है कि व्यक्ति ज्यों ज्यों भौतिक साधन बढ़ाता जाता है, त्यों त्यों सुख उससे 100 गज दूर भागता जाता है । वे बाह्य भौतिक साधन ही उसके लिए महा दुःख के कारण बन जाते हैं ।

अमेरिका में अधिकांश व्यक्ति समृद्ध है । भौतिकवाद के आधुनिकतम साधन और Latest साधन उनके पास में है, फिर भी उनका मन शांत नहीं है । बाहर से समृद्ध होते हुए भी वे भीतर से कंगाल है । बाहर से अमीर दिखाई देते हैं किंतु भीतर से वे महा दरिद्री होते हैं ।

इस India में फूटपाथ पर सोनेवाला व्यक्ति आराम से सो जाता है और उन्हें नींद आ जाती है जबकि अमेरिका में Air Conditioned Bed Room में डनलप की गद्दी पर आलोटने पर भी उन्हें नींद नहीं आती है और उन्हें नींद के लिए नींद की गोली खानी पडती है ।

ठीक ही कहा है

- धन से Air Conditioned Bed Room मिल सकता है, किंतु नींद नहीं ।
- धन से वैभवशाली सुख की सामग्री खरीद सकते हैं किंतु सुख नहीं ।
- धन से मित्र खरीद सकते हैं किंतु प्रेम नहीं ।
- धन से दवाई खरीद सकते हैं किंतु स्वास्थ्य नहीं ।
- धन से Golden Frame का चश्मा, कीमती बूट व सौंदर्य प्रसाधन की सामग्री खरीद सकते हैं किंतु आंख, पैर या सौंदर्य नहीं ।

## **साथ में कौन ?**

व्यक्ति खून पसीना एक करके धन इकट्ठा करता है । उस धन को पाने के लिए हिंसा, झूठ, चोरी, विश्वासघात, मिलावट, कर चोरी, आदि न मालूम

कितने पाप करता है परन्तु आश्चर्य है कि आखिर वह धन उसे धोखा ही देता है ।

रोग, वृद्धावस्था व मृत्यु से बचने-बचाने का सामर्थ्य धन में नहीं है ।

रोग, जरा व मृत्यु धनवान् पर दया नहीं खाते है । वे तो उन्हें भी परेशान करते रहते है । आज दुनियाँ में जो बडी बडी बीमारीयाँ कहलाती हैं, वे बडी बडी बीमारियाँ धनवान व्यक्तियों में अधिकांशतः देखने को मिलती है । Heart Attack, Blood pressure, Cancer, Diabetes जैसे भयंकर रोग गरीबों की अपेक्षा धनवानों के जीवन में देखने को मिलते हैं ।

गरीब बाहर से दुःखी है तो धनी भीतर से दुःखी है ।

गरीब की चिंता पेट की है तो धनी की चिंता पेट की है ।

गरीब बाहर से कंगाल है तो धनी सदगुणों के अभाव में भीतर से कंगाल है । गरीब को धन प्राप्ति की चिंता के कारण नींद नहीं आती हैं तो धनी व्यक्ति को प्राप्त धन के संरक्षण की चिंता के कारण नींद नहीं आती है ।

जीवन में ज्यों ज्यों धन की वृद्धि होती है त्यों त्यों व्यक्ति असुरक्षित बनता जाता है । आए दिन अखबारों में लूटफाट, डकैती व हत्याओं की घटनाएँ सुनते हैं, वे हत्याएँ गरीबों की नहीं, अमीरों की सुनने को मिलती है ।

सम्राट् सिकंदर ने अपने जीवन में ढेर सारा सोना इकट्ठा कर दिया था, परन्तु वह सोना उसे मौत से बचा न सका । उस सोने के कारण वह निर्भयता प्राप्त न कर सका ।

व्यक्ति जब दुनिया से विदाई लेता है तब उसका धन तिजोरी में ही पडा रह जाता है ।

**हजारों ऐश के सामान, मुल्कों के मालिक थे ।**

**सिकंदर जब गया दुनिया से, दोनों हाथ खाली थे ।**

वह धन उसे बचाने की लेश भी कोशिश नहीं करता है ।

## **धन से सदगति नहीं !!**

आपके पास यदि धन है और उस धन के प्रति आपके दिल में तीव्र आसक्ति है तो वह धन आपको सदगति में नहीं ले जाएगा, वह आपको दुर्गति में ही धकेलेगा ।

धन के कारण आज तक किसी व्यक्ति की सदगति नहीं हुई है । धनी व्यक्ति की सदगति हुई हो तो उसमें मुख्य कारण उसका धन नहीं किंतु उसके हृदय की विशालता व उदारता है ।

इससे स्पष्ट है कि धन के संग्रह से नहीं किंतु धन के त्याग से ही आत्मा की सद्गति हो सकती है ।

हृदय की विशालता व उदारता के लिए धन की मुख्यता नहीं है । बिना धन के भी व्यक्ति का हृदय विशाल व उदार हो सकता है और अपार संपत्ति होने पर भी व्यक्ति का हृदय संकुचित और कृपण हो सकता है ।

मम्मण के पास अमाप संपत्ति थी, फिर भी उसका हृदय कृपण व संकुचित था ।

पुणिया के पास में बहुत ही कम संपत्ति थी, फिर भी उसका हृदय विशाल व उदार था ।

हृदय की विशालता और उदारता से व्यक्ति स्वर्ग में जा सकता है परन्तु मात्र धन के संग्रह से नहीं ।

अतः स्पष्ट है कि स्वर्ग व मोक्ष में प्रवेश का द्वार हृदय की उदारता व विशालता है । जिसका हृदय उदार व विशाल है, उसके लिए स्वर्ग व मोक्ष के द्वार खुले हैं और जिसका दिल संकुचित व कृपण है, उसके लिए स्वर्ग व मोक्ष के द्वार बंद ही हैं ।

### **धन की इच्छाओं पर नियंत्रण करें**

गाडी की कीमत उसकी Speed पर ही नहीं है Speed के साथ उसका ब्रेक Brake का होना भी जरूरी है । जिस गाडी का Brake Fail है, उस गाडी की Full speed की भी कोई कीमत नहीं है । ब्रेक लेस Brake Less मर्सीडीझ के बजाय तो धीमी गति से चलने वाली सामान्य गाडी अच्छी है ।

समुद्र में उठने वाली तरंगों की भांति मानव मन में इच्छाएं पैदा होती रहती हैं । उन इच्छाओं पर नियंत्रण न रखा जाय तो वे इच्छाएँ हमारी आत्मा का भयंकर अधःपतन करा सकती हैं ।

अप्राप्त की लालसाएँ इतनी तीव्र होती हैं कि मानव को छ खंड का साम्राज्य मिल जाय तो भी वह कम लगता है और वह अधिक से अधिक पाने की कोशिश करता रहता है । जो कुछ भी मिला है वह अपने पुण्य के अनुसार मिला है । परन्तु आश्चर्य है कि मानवी को जो कुछ मिला है, उसमें उसे संतोष होता ही नहीं है वह अधिक से अधिक पाने की ही कोशिश करता रहता है ।

**प्राप्त में असंतोष और अप्राप्त की लालसा ही मानव के समस्त दुःखों का कारण है । जो कुछ भी मिला है वह हमेशा कम लगता है और जो**

**नहीं मिला है, उसको पाने की ही सदैव प्यास बनी रहती है । अतः ज्ञानियों ने धन की इच्छाओं पर नियंत्रण पाने के लिए परिग्रह परिमाण नाम का अणुव्रत बतलाया है ।**

महानुभावो ! आप सर्वथा धन का त्याग करने में समर्थ नहीं हो । अभी आपका मनोबल धन के सर्वस्व त्याग के लिए कमजोर है तो कम से कम उस धन की अपनी मर्यादा Limit तो तय Final कर दो । बस ! मेरे भाग्य से मुझे इतना धन मिल गया तो उससे अधिक पाने की मैं इच्छा नहीं करूंगा और न ही उसके लिए प्रयत्न करूंगा, फिर भी अनायास अधिक धन मिल गया तो उसका सात क्षेत्र में सदुपयोग कर दूंगा, परन्तु मैं अपनी मालिकी से वह धन नहीं रखूंगा ।

शरीर के किसी भाग में कोढ़ आदि का दाग पैदा हुआ हो तो सर्व प्रथम व्यक्ति उस दाग को सर्वथा मिटाने की कोशिश करता है, परन्तु सर्वथा मिटाने की संभावना न हो तो उसे आगे बढ़ने से रोकने की कोशिश करता है । बस, इसी प्रकार प्रभु शासन के वास्तविक परमार्थ को समझी हुई आत्मा परिग्रह को पाप ही समझती है, अतः सर्व प्रथम तो उस पाप का सर्वथा त्याग करने की ही कोशिश करती है, परन्तु इतना शक्य न हो तो उस पाप पर नियंत्रण लाने की तो अवश्य कोशिश करती है । परिग्रह का परिमाण निश्चित करने से अधिक धन पाने की इच्छाओं पर नियंत्रण आ जाता है और उस नियंत्रण के फलस्वरूप व्यक्ति अनावश्यक पाप प्रवृत्तियों से अपने आपको बचा लेता है ।

हिंसा, झूठ, चोरी व व्यभिचार को तो सारी दुनिया पाप मानती है, अतः वे प्रवृत्तियाँ लोक में निंद्य होने के कारण उन पापों के आचरण से व्यक्ति डरता भी है, परन्तु अधिकांशतः दुनिया परिग्रह-पैसे को पाप नहीं मानती है, इसी कारण धन के संग्रह में प्रयत्नशील बनी रहती है । अन्याय और अनीति तो पाप है ही, परन्तु न्याय मार्ग से उपार्जित धन भी पाप है यह बात जैन दर्शन समझाता है ।

मम्मण ने अन्याय अनीति लूट या चोरी करके धन इकट्ठा नहीं किया था, फिर भी धन की मूर्च्छा के पाप के कारण मम्मण सेठ मरकर 7वीं नरक में चला गया ।

कई व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी व व्यभिचार के पाप का त्याग कर देंगे, परन्तु धन की ममता नहीं छोड़ेंगे । धन की ममता का त्याग करना अत्यंत ही दुष्कर कार्य है ।

## सच्चा अपरिग्रही कौन ?

जिसके पास धन नहीं है इतने मात्र से वह अपरिग्रही नहीं कहलाता है । एक भिखारी के पास खाने की कोई सामग्री नहीं होती है । पहिनने के कपड़ों का कोई ठिकाना नहीं होता है...परन्तु इतने मात्र से वह अपरिग्रही नहीं कहलाता है ।

आपके द्वार पर एक भिखारी भी आता है, वह रोटी के टुकड़े की भीख मांगता है, फिर भी आप उसको पेट भरकर भोजन नहीं देते हैं । देते भी है तो अनादर से ।

परन्तु आपके द्वार पर जैन साधु आ जाय तो आप उनको आदर व सन्मान के साथ अंदर बुलाते है और अत्यंत ही भक्ति भाव से आग्रह कर आप बहोराते है ।

इसका कारण क्या ?

कारण यही है कि भिखारी के पास कुछ नहीं होने पर भी वह बड़ा परिग्रही है, क्योंकि उसके मन में धन के प्रति तीव्र आसक्ति रही हुई है, जब कि साधु महात्मा ने तो जो कुछ भी अपने पास था, उसे भी लात मार दी है । साधु के पास धन का ढेर रख दोगे तो भी वे उसका स्पर्श भी नहीं करते हैं ।

कई महानुभाव गुरु भगवंतों का सोने की गिनी से गुरु पूजन करते हैं, परन्तु वे गुरु भगवंत उस धन के मालिक बनने तो दूर रहे, उसका स्पर्श भी नहीं करते हैं ।

साधु भगवंत ने धन की इच्छा मात्र का त्याग किया है, इसी कारण वे निष्परिग्रही कहलाते है ।

धन के प्रति रही हुई आसक्ति मूर्च्छा ही सबसे बड़ा पाप है ।

**जिसने आसक्ति के बंधन को तोड़ डाला है, उसके पास अपार संपत्ति हो तो भी अपरिग्रही है । भरत चक्रवर्ती छ खंड के अधिपति थे, परन्तु वे मन से सर्वथा विरक्त थे । इस कारण छ खंड के अधिपति होने पर भी उन्हें आरिसा भवन में केवलज्ञान हो गया था ।**

व्यवहार नय बाह्य धन संपत्ति को परिग्रह कहता है, जब कि निश्चय नय से परिग्रह बाह्य संपत्ति नहीं किंतु अंतरंग आसक्ति है । यदि आपके भीतर आसक्ति है तो आपके पास अल्प संपत्ति होगी तो भी आप महा परिग्रही है ।

मोक्ष मार्ग की साधना की सफलता और सार्थकता परिग्रह की आसक्ति तोड़ने में है ।

बाहर से संसार का त्याग कर दिया, परन्तु भीतर आसक्ति जीवंत है

तो उस त्याग का विशेष मूल्य नहीं है ।

❖ सुमंगलाचार्य भगवंत अत्यंत ही शासन प्रभावक थे । वृद्धावस्था में शारीरिक प्रतिकूलता के कारण उन्होंने एक कमर पट्टे का उपयोग प्रारंभ किया था । कमर पट्टे का उपयोग एक आपवादिक परिस्थिति में प्रारंभ किया था । कुछ समय बाद वे पूर्ण स्वस्थ हो गए, परन्तु कमर पट्टे की ममता उनके दिल में घर कर गई । अब कमर पट्टे का त्याग उनके लिए असह्य हो गया । कमरपट्टे की आसक्ति तीव्र बनती गई । बस, इस एक पाप के कारण वे मरकर अनार्य देश में पंगु के रूप में पैदा हुए ।

पदार्थ की आसक्ति का पाप अत्यंत ही खतरनाक है ।

## आसक्ति छोड़ना कठिन है

❖ एक सेठ मृत्यु शय्या पर पड़े हुए थे । अंतिम श्वास चल रहा था, अचानक उनकी नजर घर के दरवाजे में घूसी हुई बकरी पर गिरी । उस बकरी ने पास में पड़े झाडु को अपने मुंह में ले लिया और उसको चबाने लगी । सेठ ने झाडु खा रही उस बकरी को देखा । उन्हें चिंता सताने लगी । यह बकरी देखते ही देखते यह सारा झाडु खा जाएगी । उनकी शक्ति तो नहीं थी कि वे उठ खड़े कर उस बकरी को बाहर निकाल सके । वे मन ही मन आकुल व्याकुल होने लगे । अब उनसे रहा नहीं गया...वे पूरी ताकत लगाकर बोलने लगे..ब...ब....ब

परन्तु सेठ के उस जवाब को कोई स्पष्ट समझ नहीं सका ।

बड़े बेटे ने सोचा, पिताजी कुछ कहना चाहते है । बड़े बेटे ने सोचा, 'शायद पिताजी ने कहीं धन गाड़कर रखा हो अथवा अन्य किसी के पास जमा रखा हो तो वे बता देंगे ।' इस प्रकार विचारकर बड़े बेटे ने बड़े से बड़े डॉक्टर को बुलाया और कहा, 'किसी भी हालत में पिताजी कुछ बोल सके इसके लिए आप प्रयत्न करें ।'

पुत्र के आग्रह से डॉक्टर ने सेठ को 1000 रु. का Injection दिया । Injection के प्रभाव से सेठ को थोड़ी चेतना आ गई और बोले, 'देखो ! वह बकरी झाडु खा जा रही है ।'

जैसे ही बेटे ने ये शब्द सुने उसके आश्चर्य का पार न रहा उसने सोचा अरे ! एक झाडु के लिए मैंने 1000 रु. खो दिए ।

धन की आसक्ति इतनी अधिक तीव्र होती है कि मरते दम भी व्यक्ति को धर्म याद नहीं आता है ।

सामान्यतया मृत्यु की स्मृति व्यक्ति को पाप से बचाती है। मौत सामने आ जाय तो व्यक्ति अन्य सब कुछ भूल जाता है, परन्तु परिग्रह की आसक्ति इतनी खतरनाक होती है कि व्यक्ति मौत आ जाय तो मौत को भी स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है, परन्तु धन की ममता को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हो पाता है।

\*धन के पीछे पागल बने मम्मण सेठ को मौत की परवाह नहीं थी। मुसलाधार वर्षा के कारण नगर में चारों ओर पानी पानी हो गया था। नगर में चारों ओर शून्यता नजर आ रही थी...परन्तु ऐसी विकट परिस्थिति में भी एक मात्र मम्मण नदी में कूदकर नदी में बह रहे चंदन की लकड़ियों को खींच खींच कर किनारे ला रहा था।

कैसी विचित्र परिस्थिति थी ! परन्तु मम्मण सेठ को मौत की परवाह नहीं थी। मौत से लडकर भी वह धन पाना चाहता था। कैसा था यह पागलपन ?

### अर्थ अर्थ का मूल

सारे अनर्थों का मूल पैसा है, धन के अर्जन के लिए व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापों का आश्रय लेता है, पुण्य योग से धन मिल जाय तो अब उसके रक्षण की चिंता खडी होती है। पैसा नहीं था, तब पैसा कमाने की चिंता थी...पैसा आ गया तो उसको बढ़ाने और उसके रक्षण की चिंता खडी हो गई। आया हुआ धन चला न जाय, उसकी चिंता व्यक्ति को परेशान करती रहती है।

### मित्र ने मित्र की हत्या की

दो मित्र अर्थार्जन के लिए घर छोड़कर रवाना हुए। जैसे ही उन्होंने किसी जंगल में प्रवेश किया, उन्हें सोने की ईंट दिखाई दी। दोनों मित्रों ने उस सोने को आपस में बांटने का निर्णय लिया। काफी दूर तक चलने के कारण वे दोनों थक चूके थे, उन्हें भूख लगी थी।

एक मित्र ने दूसरे मित्र को कहा, "तुम बाजार में जाकर थोड़ी मिठाई खरीदकर ले आओ, ताकि हमारी भूख शांत हो सके।"

एक मित्र मिठाई लेने के लिए बाजार में गया। उसने बाजार में जाकर मिठाई खरीद ली। उसी समय उसके दिमाग में लोभ का भूत सवार हो गया। उसने सोचा, "यदि मैं दूसरे लड्डु में जहर मिला दूं और वह लड्डु मित्र को दे दूं तो वह सोने की ईंट मुझे मिल जायेगी। इस प्रकार विचार कर उसने एक लड्डु में जहर मिला दिया।

इस मित्र के दिमाग में लोभ का भूत सवार हुआ, उसी समय उस मित्र के दिमाग में भी वह सोने की पूरी ईंट पा लेने का विचार उत्पन्न हुआ। उस मित्र ने सोचा, 'क्यों न कुएँ में से पानी लाने के बहाने मैं उसे कुँए में धकेल दूं। यदि वह मर गया तो सोने की पूरी ईंट मुझे मिल जाएगी।' इस प्रकार विचार कर वह उस मित्र की इंतजारी करने लगा।

थोड़ी ही देर में जैसे ही वह मित्र बाजार में से लड्डु लेकर आ गया। दूसरे मित्र ने कहा, 'मुझे बहुत प्यास लगी है, पास के कुँए में से थोड़ा पानी लेकर आ जाओ।' वह मित्र पानी लेने के लिए पास के कुँए के पास गया। जैसे ही वह कुँए के किनारे खडे रहकर पानी निकालने लगा, त्यों ही दूसरे मित्र ने आकर उसे कुँए में धक्का मार दिया। वह मित्र कुँए में गिर पडा और थोड़ी ही देर में मर्मस्थल पर चोट लगने से उसकी मृत्यु हो गई।

अपने मित्र की हत्या कर वह उस वृक्ष के नीचे आया, जहां सोने की ईंट पडी हुई थी। वह उस सोने की ईंट को देखकर खुश हो गया। इधर उसे तीव्र भूख लगी हुई थी। बाजार में से लाए हुए लड्डुओं को देखकर उसके मुंह में पानी आ गया, तुरंत ही उसने वो लड्डु खाया, जिसमें जहर मिला हुआ था। लड्डु खाने के बाद थोड़ी ही देर में विष का प्रभाव दिखाई देने लगा और कुछ ही देर बाद उसकी मृत्यु हो गई।

सोने की ईंट वहीं की वहीं रह गई। उसके लोभ में दोनों मित्रों की मृत्यु हो गई।

### लोभ से सर्व गुणों का नाश

क्रोध से प्रीति का नाश होता है। मान से विनय का नाश होता है, माया से व्यक्ति विश्वास खो बैठता है, जब कि लोभ से सर्व गुणों का नाश होता है।

लोभी व्यक्ति की क्षमा भी वास्तविक क्षमा नहीं होगी, परन्तु उस क्षमा में भी दंभ होगा। किसी को अच्छी तरह से ठगने के लिए लोभी व्यक्ति क्षमा भी धारण कर सकता है और अत्यंत ही नम्रतापूर्ण व्यवहार भी कर देता है। एक व्यापारी किसी ग्राहक को ठगने के लिए कितनी नम्रता से पेश आता है। उसकी वह नम्रता गुण नहीं किंतु दंभ ही हैं, क्योंकि वह उस नम्रता का उपयोग किसी को ठगने के लिए ही कर रहा है।

इससे स्पष्ट है कि लोभी व्यक्ति की क्षमा व नम्रता भी दूसरों को अच्छी तरह से ठगने के लिए ही होती है।



एक पैर पर खडा बगला कितना शांत दिखाई देता है । परन्तु उसकी वह शांति माया से परिपूर्ण ही होती है । बस, इसी प्रकार लोभी व्यक्ति का व्यवहार माया पूर्ण होता है ।

लोभी व्यक्ति अहिंसक नहीं हो सकता क्योंकि धन के लोभ में आकर वह किसी की हत्या भी कर सकता है ।

लोभी व्यक्ति सत्यवादी नहीं रह सकता, क्योंकि धन का लोभ उसे झूठ बोलने के लिए प्रेरित करता है ।

लोभी व्यक्ति अचौर्य व्रत का भी पालन नहीं कर सकता क्योंकि धन के लोभ में आकर वह कर-Tax आदि की चोरी किए बिना नहीं रह सकता ।

लोभी व्यक्ति अपरिग्रही भी नहीं रह सकता क्योंकि धन की वृद्धि तो उसे प्राणों से भी अधिक प्यारी होती है ।

लोभी व्यक्ति दानवीर नहीं बन सकता क्योंकि धन तो उसका 11 वां प्राण होता है । धन का त्याग उसके लिए असह्य होता है । दान की बात आते ही उसे पसीना छूटने लगता है ।

कई लोभी व्यक्ति जिनवाणी (प्रवचन) का श्रवण भी नहीं करते हैं, क्योंकि उन्हें यह भय रहता है, व्याख्यान में कहीं दान की बात आ गई तो मुझे लाज शर्म से भी कुछ देना पड़ेगा, इसके बजाय तो व्याख्यान में जाए ही नहीं तो कम से कम इतना धन तो बच सकेगा ।

लोभी व्यक्ति स्वाध्याय नहीं कर सकता । वह सोचता है कि इतने घंटे व्यर्थ गुमाए, इसके बजाय तो दुकान पर बैठेंगे तो कितना व्यापार हो सकेगा ।

लोभी व्यक्ति मंदिर आदि धर्मस्थानों से दूर ही रहने की कोशिश करेगा, क्योंकि वह सोचेगा कि कहीं मंदिर में गया तो वहां शर्म से भी दो पैसे भंडार में डालने पड़ेंगे, इसके बजाय मंदिर जाए ही नहीं तो कम से कम उस फालतु (?) खर्च से बचत तो हो सकेगी ।

भाव श्रावक के दिल में प्राप्त धन के प्रति तीव्र अनासक्ति होती है और उस अनासक्ति के कारण ही धन के बीच रहते हुए भी वह आसक्तिजन्य कर्मों का बंध नहीं करता है ।

शायद आपने भर्तृहरि के वैराग्य शतक का यह श्लोक पढा होगा ?

**'भोगे रोगभयं कुले च्युति-भयं वित्ते नृपालाद् भयं,  
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयं ।  
शास्त्रे वादभयं गुणे खल भयं काये कृतान्ताद् भयं,  
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥'**

सचमुच ! इस जगत् में निर्भय कौन ? इसका जवाब है 'वैराग्यमेव अभयं' जो वैराग्यमय हैं, वही इस जगत् में निर्भय है ।

**'जहां राग हैं, वहां भय है और जहां वैराग्य है वहां निर्भयता है'** यह शाश्वत सूत्र है । इस शाश्वत सूत्र पर या तो हमें श्रद्धा नहीं है अथवा इसके गहन Deep रहस्य को समझ नहीं पाए हैं, इसी कारण हम बाह्य-पदार्थों में आसक्त बनकर, उन पदार्थों की अभिवृद्धि में हम अपनी आत्म-सुरक्षा मान बैठे हैं ।

परन्तु याद रखना-इस संसार में जितने भी बाह्य-भौतिक पदार्थ दिखाई देते हैं, उन सब पदार्थों पर 'नश्वरता' का कलंक लगा हुआ है, आज नहीं तो कल, वे नष्ट होने ही वाले हैं ।

नई आलिशान बिल्डिंग Building के निर्माण Construction में भले ही तुम्हें भव्यमहल के दर्शन होते होंगे .परन्तु ज्ञानियों की दृष्टि में तो वह महल भी खंडहर ही दिखाई देता है ।

- सुना है - ऋषभदेव प्रभु के समय में इन्द्र ने विनीता नगरी की स्थापना की थी... परन्तु आज उस विनीता नगरी का नामोनिशान नहीं है ।
- सुना है - रावण की लंका, सोने की लंका कहलाती थी परन्तु आज उस सोने की लंका का अस्तित्व ही साफ हो गया है ।
- सुना है - भरत क्षेत्र के पहले, दूसरे व तीसरे आरे में दस कल्पवृक्ष मनुष्य की सभी इच्छाओं का पूर्ण करते थे, परन्तु आज उन कल्पवृक्षों के जीर्ण शीर्ण पत्ते भी नजर नहीं आ रहे हैं ।
- इतिहास के पन्नों पर द्वारिका नगरी के वैभव व शालीनता का वर्णन पढते हैं, परन्तु आज उस नगरी के कहीं अवशेष भी नजर नहीं आ रहे हैं ।
- राजगृही नगरी - जहाँ मगध सम्राट श्रेणिक रहता था, जहाँ शालिभद्र का सात मंजिली दिव्य महल था- जिस शालिभद्र के घर प्रतिदिन देवलोक से 99 पेटियाँ उतरती थी - जिस राजगृही नगरी में अमाप संपत्ति का मालिक

मम्मण सेट रहता था...आज उस राजगृही नगरी में श्रेणिक व शालिभद्र के महलों के अवशेष ढूँढने पर भी नहीं मिलते हैं ।

कैसी अनित्यता ! कैसी क्षण भंगुरता हैं इन बाह्य पदार्थों की !

मात्र जड वस्तुओं पर ही 'क्षण-भंगुरता' का कलंक लगा हुआ है, ऐसी बात नहीं है । मनुष्य आदि प्राणियों का जीवन भी क्षणभंगुर है । किसी भी समय 'मृत्यु' आकर अपना गला दबोच सकती है । और अपने सारे अरमान एक ही क्षण में धूमिल कर सकती है ।

अत्यंत ही निकट के भूतकाल में विश्व के रंगमंच पर हृदय को कंपित कर देने वाली जो चित्र-विचित्र घटनाएँ बनी है । उनमें से कुछ घटनाएँ निम्न लिखित हैं-

1. 11 Sept. 1980 के दिन अल्जीरिया में भयंकर भूकंप की दुर्घटना बनी । जिसमें 6000 लोग बेमौत मारे गए और चार लाख लोग बेघर हो गए ।
2. 31 Oct. 1984 के दिन भारत की प्रधान मंत्री श्रीमति इंदिरा गांधी की अपने ही निवास स्थल में सतवंतसिंह और बेअंतसिंह नाम के अंगरक्षकों ने स्टेनगन से एक साथ 15-20 गोलियाँ छोड़कर हत्या कर दी । रक्षक ही भक्षक बन गए ।
3. 31 Dec. 1984 के दिन मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में युनियन कार्बाईड के कारखाने में जहरीली गैस रीसन की भयंकर दुर्घटना से एक साथ 3400 लोग खत्म हो गए और 20,000 लोगों की स्थिति गंभीर हो गई थी ।
4. 24 May 1985 में बंगलादेश में सामुद्रिक तूफान से एक साथ 11,000 लोग खत्म हो गए ।
5. 23 June 1985 के दिन एयर इंडिया के कनिष्क विमान में आयरलैंड के समुद्रतट पर बंब विस्फोट की भयंकर दुर्घटना हुई, जिससे 329 यात्री खत्म हो गए ।
6. 12 Aug. 1985 के दिन जापान एयर लाइंस का बोइंग 747 विमान टोकियो में दुर्घटना ग्रस्त हो गया, जिसमें 520 व्यक्ति तत्काल खत्म हो गए ।
7. 31 Dec. 1986 के दिन प्युटोरिका की प्लाजा हॉटल में भयंकर आग लग गई, जिसमें 97 लोग एक साथ खत्म हो गए ।
8. 7 Dec. 1988 के दिन सोवियत संघ अर्मानिया में भयंकर भूकंप आया, जिसमें 25000 लोग तत्क्षण समाप्त हो गए ।

9. 23 May 1991 के दिन रात्रि में मद्रास से 40 कि.मी. दूर पेरुंबदर में रात को 10 बजे एक चुनावी सभा को संबोधित करने के पूर्व, राजीव गांधी की बंब विस्फोट से हत्या कर दी गई । इस हत्याकांड में राजीव गांधी का शरीर एकदम छिन्नछिन्न हो गया । उसके मृतदेह के साथ उनका मुंह नहीं मिल पाया ।

10. 6 Dec, 1992 के दिन अयोध्या में बाबरी मस्जिद ध्वंस की घटना के बाद देश में चारों ओर भयंकर हत्याएँ हुई, जिसमें बम्बई, अहमदाबाद, सुरत आदि शहरों में जो क्रूरतम नरसंहार हुआ, वह अत्यंत ही करुण व हृदय-द्रावक था । जिसमें सैकड़ों लोग मारे गए और अनेको को जीं दे जी जला दिया गया ।

11. Oct. 1993 में महाराष्ट्र के लातूर व किल्लरी गांवों में भयंकर भूकंप आया, उसमें भी हजारों मनुष्य व पशु एक साथ समाप्त हो गए ।

12. 26 जनवरी के दिन कच्छ की धरती पर आए भूकंप में लगभग 1 लाख लोग मर गए । हजारों लोग बेघरबार हो गए ।

विश्व के रंगमंच पर बनने वाली ये दयनीय और करुण घटनाएँ हमें जीवन की क्षण-भंगुरता का मूक-संदेश सुना रही है ।

**'भाई ! तेरा जीवन ही जब चंद क्षणों का है तो फिर तू इतनी दौड धूप, ये ढेर सारे पाप किसके लिए कर रहा है ?**

यह सारी संपत्ति... यह सारा वैभव... ये मोटर गाडी...आदि आदि के प्रति स्वामित्व के संबंध जोड़ने के लिए तुमने कितनी बार झूठ बोला ? कितनों के साथ विश्वासघात का भयंकर पाप किया । परन्तु उन सब का परिणाम क्या आया ?

एक दिन मौन होकर तुझे यह बंगला खाली कर देना पड़ेगा ।

जिस मकान के स्वामित्व को सिद्ध करने के लिए तुमने अपने भाइयों के विरुद्ध कोर्ट में दावा किया, आखिरी पल तक तू लडता रहा, परन्तु आज तुझे एक ही क्षण में इस बंगले का स्वामित्व छोड़ना पड रहा है ।

चेतन !

मात्र तू ही नहीं, दुनिया के अधिकांश लोग सत्ता व संपत्ति की प्राप्ति में सुख व सुरक्षा की कल्पना करते हैं । सत्ता व संपत्ति मिलेगी तो हम निर्भय बन जाएंगे ।' परन्तु मृग मरिचिका की तरह यह सिर्फ भ्रान्ति ही है ।

आज के सत्ताधीश कितने भयभीत हैं ? जिस प्रजा ने उनको चुना ।

आज उसी प्रजा को मिलने के लिए उन्हें Body Guard की आवश्यकता रहती है। वे निर्भय होकर प्रजा को मिल नहीं पाते हैं।

सचमुच, इस जगत् में धनी भी दुःखी हैं और निर्धन भी। धन चला न जाय, कोई लूट न ले - इस भय से धनी दुःखी है और धन के अभाव के कारण निर्धन व्यक्ति दुःखी है।

कहा है - **धन बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान्।**

**सुखी न देख्यो जगत् में सब जग लियो छान।**

वास्तव में सुखी वो ही हैं, जिसने धन आदि के ममत्व का संपूर्ण त्याग कर दिया है।

सूखे नारियल में से नारियल का गोला (गिरी) अखंड रूप से बाहर निकल सकता है, जब कि पानी वाले नारियल में से वह अखंड गोला बाहर नहीं निकल सकता। बाहर निकालते समय उसे टूटना ही पडता है। जैसे - पानी के कारण नारियल के गोले को टूटना पडता है, बस, इसी प्रकार जहाँ ममत्व का अस्तित्व है वहाँ जीवात्मा को पीडाएँ सहन करनी ही पडती है।

जो ममत्व से मुक्त बन गया, उसे सानुकूल वस्तु की प्राप्ति में कोई हर्ष नहीं और सानुकूल वस्तु के चले जाने में किसी प्रकार का शोक नहीं।

जहाँ ममत्व है -ममता है वही पर हर्ष शोक के आवेग रहे हुए है।

जहाँ ममत्व का अभाव है, वहाँ हर्ष शोक के आवेग का भी अभाव रहा हुआ है।

मानव जीवन का मूलभूत उद्देश्य 'वीतराग बनना' होना चाहिये और वीतराग बनने के लिए सर्वप्रथम विराग-भाव/ विरक्ति अनिवार्य हैं। विरक्ति की नींव पर ही वीतरागता का महल खडा है।

❑ **विरक्ति को पाने के लिए आसक्ति को तोडना अनिवार्य है।**

❑ **आसक्ति तो विरक्ति में प्रतिबंधक है। जिस पदार्थ पर हमें आसक्ति होती है, उस पदार्थ के स्वामित्व को पाने की वृत्ति मन में पैदा हुए बिना नहीं रहती। इतना ही नहीं, उस स्वामित्व में प्रतिबंधक व्यक्ति के प्रति दिल में द्वेष भाव पैदा हुए बिना नहीं रहेगा।**

इस प्रकार आसक्ति का भाव हमें द्वेष, घृणा व तिरस्कार का पाप कराए बिना नहीं रहता है।

**सुखी जीवन का रहस्य है-आसक्ति तोडो और विरक्ति से जीओ !**

जीवन में आसक्ति का त्याग जितना अधिक होगा, उतनी ही जीवन में

समाधि प्राप्त हो सकेगी।

निकट के भूतकाल में हुए पू. आनंदघन जी. म., पू. यशोविजय जी म., पू. चिदानंद जी म. आदि अनेक योगी- महापुरुषों ने संसार की असारता को समझाने वाले अनेक गेय काव्य/पद्यों की रचना की हैं, जिनका पुनः पुनः गान करने से हमारी अन्तश्चेतना में वैराग्य का बीजारोपण हो सकता है और बीजारोपण हो गया हो तो उसमें से बीजांकुर प्रगट हो सकता है।

पू. चिदानंद जी म. का एक पद है -

**'जग सपने की माया रे, नर ! जग सपने की माया'**

शायद यह पद कंठस्थ नहीं किया हो तो उसे कंठस्थ करने की कोशिश करना।

इस पद में उन्होंने संसार के नग्न स्वरूप को बतलाते हुए कहा है -

'हे मानव ! तू जगत् के मिथ्या स्वरूप को अच्छी तरह समझ ले। यह जगत् बाहर से जैसा दिखाई देता है, वैसा नहीं है। ज्ञानियों ने तो इस जगत् को स्वप्न की उपमा दी है। जिस प्रकार व्यक्ति स्वप्न में अपने आपको राजा बना हुआ देख सकता है और रंक बना हुआ भी। परन्तु स्वप्न की उस राज्य-प्राप्ति का क्या अर्थ है ? स्वप्न में राजा बनने का आनंद भी कितने समय तक ? जब तक आंख न खुले तभी तक न ? एक भिखारी भी स्वप्न में राजा बन सकता है, परन्तु स्वप्न पूरा होने के साथ ही वह भिखारी, भिखारी ही रहने वाला है। स्वप्न में राजा बनने से ज्यादा कोई फर्क पडने वाला नहीं है।

बस, इसी प्रकार इस बाह्य जगत् में जो कुछ भी सुंदर दिखाई दे रहा है, वह सब स्वप्न तुल्य ही है। जगत् का सौंदर्य अल्पकालीन है।

जिनागमों में इस मानव भव को बिजली की चमक तुल्य चंचल बताया है। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में घोर अंधेरी रात में अचानक बिजली चमकती है और चारों ओर एकदम प्रकाश हो जाता है, परन्तु उस प्रकाश का अस्तित्व कितने समय तक ? चंद्र क्षणों में वह प्रकाश विलीन हो जाता है और पुनः चारों ओर अंधकार छा जाता है, बस, इसी प्रकार अत्यंत दुर्लभता से प्राप्त मानव-भव भी अत्यंत चंचल है।

अरे ! ज्ञानियों ने इस मनुष्य भव के आयुष्य को तो अंजलि में रहे जल के समान एकदम अस्थिर बतलाया है। अंजलि में रहा हुआ जल जिस प्रकार प्रतिक्षण कम होता जाता है, बस, इसी प्रकार यह आयुष्य भी प्रतिक्षण कम होने के स्वभाव वाला है।...और यह यौवन तो संध्या के रंग के समान अत्यंत ही

क्षण जीवी है। आकाश में संध्या खिलती है। वह दृश्य अत्यंत ही आकर्षक लगता है...परन्तु उसका अस्तित्व कब तक ! कुछ ही समय बाद वह दृश्य नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार यह यौवन भी अत्यंत ही चंचल है। देखते ही देखते नष्ट हो जाने वाला है।

...और यह सुंदर दिखाई देने वाली गौरवर्णीय काया ! वास्तव में देखा जाय तो इस काया का पैकिंग Packing ही सुंदर है, इसके भीतर तो गंदगी का कोई पार नहीं है।

नगर की गट्टर तुमने देखी होगी ? नीचे गट्टर बह रही होती है, परन्तु ऊपर से वह गट्टर बंद होने से उसकी दुर्गंध बाहर नहीं आ पाती है, परन्तु ज्योंही उस गट्टर का ढक्कन खोला जाय, उसकी भयंकर दुर्गंध से सिर चकराने लग जाता है। बस, इसी प्रकार यह काया भी गंदी गट्टर है। गट्टर की भांति इस पर चमड़ी का ढक्कन लगा होने से उसकी दुर्गंध बाहर नहीं आती है, परन्तु दुर्घटना आदि द्वारा ज्योंही इसकी चमड़ी दूर होती है, त्योंही यह अत्यंत बिभत्स और दुर्गंधी लगती है।

जिस प्रकार वृक्ष की छाया को बदलते देर नहीं लगती है। सूर्य की दिशा बदलने के साथ ही वृक्ष की छाया बदलती रहती है, उसी प्रकार इस मानवीय काया के नष्ट होते भी कुछ देर नहीं लगती है।

मनुष्य जीवन में पुण्य के उदय से प्राप्त धन-संपत्ति नदी के जल-प्रवाह की तरह अत्यंत ही अस्थिर है। जिस प्रकार नदी में जल स्थिर नहीं होता है, वह सतत बहता रहता है, उसी प्रकार पुण्य से प्राप्त धन-संपत्ति भी अस्थिर है। आज धन प्राप्त हुआ है तो कल वह चला भी जा सकता है। दुनिया में कई बड़े बड़े धनवान् भी, भाग्य के परिवर्तन के साथ निर्धन बन गए। कई सत्ताधीशों की स्थिति भिखारी जैसी हो गई। महलों में रहनेवाले जेल में कैद हो गये। अमाप संपत्ति के मालिक दानों दानों के लिए तरसने लग गए। अतः पुण्य के उदय से प्राप्त संपत्ति का विश्वास करने योग्य नहीं है।

..और संसार के ये संबंधी ! चाहे माता हो, पिता हो, भाई हो, बहिन हो, काका हो, काकी हो, मामा हो, मामी हो, सभी स्वार्थ से भरे हुए हैं। जब तक किसी से अपने स्वार्थ की सिद्धि होती रहती है, तभी तक उस व्यक्ति के साथ संबंध जोड़ते हैं और स्वार्थ पूर्ण हो जाने के बाद उसी व्यक्ति के साथ ऐसा बर्ताव करते हैं, मानो कोई परिचय ही नहीं था।

आम की गुटली व छिलके जब तक रस से जुड़े होते हैं, तब तक

उनका बड़ा मूल्य होता है, परन्तु ज्योंही वह गुटली व वे छिलके, आम के रस से अलग पड जाते हैं, त्योंही उन्हें रास्ते पर फेंक दिया जाता है, वे एकदम मूल्यहीन, तिरस्कार-पात्र बन जाते हैं।

वृद्धावस्था, रुग्णावस्था, आर्थिक-संकट और अन्य भयंकर आपत्ति के समय पता चलता है कि ये 'संबंधी' कहलाने वाले कितनी मदद करते हैं ?

लग्न के प्रसंग पर भोजन में तो सैंकड़ों लोग उपस्थित होते हैं, परन्तु लग्न के बाद वर या वधु को कोई आपत्ति आ जाय तो उस समय सहायता करने वाले कितने निकलते हैं ?

संसार के संबंध मोह जाल तुल्य है। जिस प्रकार मांस के टुकड़े में लुब्ध बनी मछली को अपने ही प्राण खोने पडते हैं, उसी प्रकार इन संबंधों में मूर्छित बनी आत्मा को इस संसार की जन्म-मरण की पीड़ाएँ सहन करनी पडती है।

याद रखना, काले रंग के चश्में चढाकर तुम सफेद वस्तु के वास्तविक स्वरूप को पहिचान नहीं सकोगें, बस, इसी प्रकार मोह के चश्मे पहिनकर संसार के यथार्थ स्वरूप का दर्शन करना चाहो तो यह संभव नहीं हो सकेगा।

जब तक मोह के चश्में पहिने होंगे, तभी तक यह संसार सुखमय और आकर्षक लगेगा, परन्तु मोह के चश्मे उतार कर तुम इस संसार के स्वरूप के दर्शन करोगे तो तुम्हें यह संसार अत्यंत ही बिभत्स, व अनेक अपेक्षाओं से विकृत लगेगा।

## 1. स्वार्थीय संसार

- यद्यपि इस संसार में लोही के रिश्ते कहलाने वाले अनेक संबंध हैं, परन्तु उन संबंधों में स्वार्थ की भयंकर बदबू रही होती है। जब तक अपना स्वार्थ सिद्ध होता होगा, तभी तक उन संबंधों के बीच प्रेम और वात्सल्य के दर्शन होंगे, परन्तु स्वार्थ पूर्ण होने के साथ ही उन संबंधों के बीच दरार पड जाती है।
- 'आपके अभाव में मैं अपने जीवन के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकती हूँ।' ...इस प्रकार कहने वाली सूर्यकांता महारानी ने अपने प्रियतम प्रदेशी राजा को विष भरा दूध का कटौरा प्रदान कर मौत के घाट उतार दिया था। कितना आश्चर्य ! जो प्राण देने के लिए तैयार थी, वही प्राण लेने के लिए तैयार हो गई ! कारण ? कारण इतना ही था कि प्रदेशी राजा अब धार्मिक बन गए थे जब कि सूर्यकांता महारानी को धार्मिकता पसंद नहीं थी।
- एक ही मां के दो पुत्र थे। पहला बेटा होशियार था और खूब धन कमाता था, दूसरा बेटा कमजोर था, वह धन कमाने में पीछे था। कई बार तो

दुर्भाग्य के कारण छोटा बेटा धन खो देता था । कहने के लिए तो एक ही मां के वे दो बेटे थे परन्तु उन दोनों के प्रति मां के व्यवहार में काफी अंतर था । बड़े बेटे को वह खूब प्रेम देती थी, उसे वह गर्म-गर्म रोटी खिलाती थी, जब कि छोटे बेटे के प्रति उसे विशेष प्रेम नहीं था, उसे वह ठंडी रोटी खिलाती थी । वास्तव में मां के व्यवहार में स्वार्थ की ही बदबू थी ।

- ❑ एक ग्वाला गायों को घास डाल रहा था, परन्तु कुछ गायों को हरा-भरा घास खिला रहा था और कुछ गायों को सूखा घास ! शोध करने पर पता चला कि जो गायें दूध देती हैं, उन्हें हरा घास खिलाता है और जो गायें दूध नहीं दे रही हैं, उन्हें सूखा घास खिलाता है । ग्वालें का यह कैसा स्वार्थ ?
- ❑ जिन वृक्षों पर फल-फूल लगे हो, उन वृक्षों की माली खूब देखभाल करता है, परन्तु जो वृक्ष उजड़े हुए होते हैं, माली उनकी लेश भी परवाह नहीं करता है ।... क्योंकि इस संसार में स्वार्थ की ही तो बोलबाला है ।
- ❑ एक बेटा अपने बाप की खूब सेवा कर रहा था । पुत्र की सेवावृत्ति से बाप भी खुश हो गया, उसने अपनी सारी सम्पत्ति, दुकान व जायदाद बेटे के नाम कर दी । बाप ने अपने पास कुछ भी नहीं रखा । कुछ ही दिनों बाद उस बेटे ने अपने बाप को 'वृद्धाश्रम' में जाकर भर्ती करा दिया । अब उस बूढ़े की सेवा करने वाला कोई नहीं था । कैसा स्वार्थी संसार !
- ❑ जब तक तेरे पुण्य का सितारा चमकता होगा, तेरे पास सत्ता, संपत्ति व शक्ति होगी, तब तक दुनिया के अनेक लोग तेरे मित्र बन जाएंगे, अनेक व्यक्ति तुझ से अपना नाता जोड़ने की कोशिश करेंगे । परन्तु याद रखना, वे सारे मित्र तेरे नहीं हैं, परन्तु उस माया (धन) के कारण हैं । जिस दिन तेरे पास से वह माया (धन) चली जाएगी, वे ही परिचित मित्र अपरिचित बन जाएंगे । वे निकट के संबंधी भी अपना मुंह मोड़ देंगे और दूर रहने की कोशिश करेंगे ।

## 2. दुःखमय संसार

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी अरिहंत परमात्मा ने इस संसार के नग्न स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि यह संसार दुःख रूप है, दुःख फलक है और दुःखानुबंधी है । संसार में जो भौतिक सुख, भोग सुख दिखाई दे रहे हैं, वे तो किंपाक फल की भांति अत्यंत ही दुःखदायी है । विषमिश्रित मिष्ठान्न के खाने में

क्षण भर आनंद है, परन्तु परिणाम तो मौत ही है, इसी प्रकार इस संसार के सुख भी प्रारंभ में मधुर लगते हैं, परन्तु उनका परिणाम अत्यंत ही कटु है । संसार के सुख जितने सरस दिखते हैं, उतने ही निरस हैं ।

नरक आदि चारों गतियों का विचार करेंगे तो पता लगेगा कि इस संसार में सुख तो दूर रहा, सुख की छाया भी नहीं है । ज्ञान चक्षु को उघाडकर जरा देख ले उन नारक जीवों को !

दुःख व वेदनाओं के कारण वे कितनी करुण चित्कारें कर रहे हैं ?

- ❑ उन्हें क्षणभर के लिए शांति नहीं है । परमाधामी देव उन्हें सतत पीडा दिए जा रहे हैं ।
- ❑ भूख की पीडा, प्यास की पीडा, ठंडी की पीडा, गर्मी की पीडा, रोग की पीडा, परमाधामियों के भय आदि से नरक के जीव सतत दुःखी हैं । सुख व शांति से वे कोशो दूर हैं ।
- ❑ नरक के जीवों को क्षेत्रकृत वेदना भी इतनी भयंकर होती है कि हम उस वेदना की कल्पना भी नहीं कर सकते ।
- ❑ नरक में रहे मिथ्यादृष्टि नारक अपने विभंगज्ञान से उपयोग लगाकर अपने दुश्मनों को पहिचानते रहते हैं और वैक्रिय रूप कर परस्पर लडते रहते हैं । हे चेतन !

कदाचित् नारक जीवों की घोर वेदना हम प्रत्यक्ष नहीं देख सकते हैं, क्योंकि हमारे पास विशिष्ट श्रुतज्ञान अथवा अवधिज्ञान नहीं है, परंतु तिर्यच के जीवों की पीडाएँ तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रही हैं न ?

- ❑ एकेन्द्रिय वनस्पति के जीवों के छेदन...भेदन की घटनाएँ प्रत्यक्ष देख रहे हो न ? लोग वनस्पति को छूरी से काटते हैं, उन पर पैर रखकर चलते हैं, उनके ऊपर दौडते हैं, उन्हें आग में डालते हैं, उन्हें गर्म पानी में उबालते हैं ।
- ❑ पृथ्वीकाय के जीवों पर लोग चलते हैं । नमक आदि पृथ्वीकायिक जीवों को लोग अग्नि में सेकते हैं ।
- ❑ स्नान करना, कपडे धोना, आंगण साफ करना इत्यादि प्रसंगों में अप्काय के जीवों की विराधना प्रत्यक्ष देख रहे हैं ।
- ❑ कीड़े-मकोड़े-बेइन्द्रिय-तेइन्द्रिय-चउरिन्द्रिय आदि जीव कई बार मनुष्य के

पैरों तले कुचले जाते हैं, उनके दर (बील) में पानी भर जाता है। मोटर गाडी ट्रेक्टर आदि वाहनों के नीचे आकर ये जीव कुचले जाते हैं।

- ❑ कुछ जीव-जंतु लकड़ी के भीतर रहे होते हैं और उन्हें लकड़ी के साथ ही आग में जला दिए जाते हैं।
- ❑ नदी नाले के जल प्रवाह के साथ अनेक जीव-जंतु, पानी में बह जाते हैं, और उन्हें बेमौत मरना पड़ता है।
- ❑ सुअर, भेंड, बकरी, मुर्गे आदि को मांस-लोलुपी कसाई लोग जींदे जी काट लेते हैं, उन्हें जींदे जी आग पर पका दिया जाता है।
- ❑ फर के कोट, टोप, मुलायम बूट आदि के लिए नवजात भेंड के बच्चों की जींदे जी चमड़ी उतार दी जाती है।
- ❑ बैल-घोडे आदि को गाडी में जोता जाता है और नहीं चलने पर उन्हें हंटर आदि के तीक्ष्ण प्रहार सहन करने पड़ते हैं।
- ❑ गाय, भैंस आदि प्राणियों को भूख, प्यास आदि की भयंकर यातना सहन करनी पड़ती है।
- ❑ गाय, बैल, कुत्ते, गधे, घोडे आदि के शरीर में जब भयंकर घाव पड़ जाते हैं, अथवा अन्य किसी प्रकार की बीमारी पैदा होती है, तब उन्हें दीन बनकर उन पीडाओं को सहन करना पड़ता है।
- ❑ डॉक्टरी शिक्षण आदि के नाम पर अनेक मेंढक बंदर आदि प्राणियों को जींदे जी चीर दिया जाता है और उन प्राणियों पर निर्दयता से अनेकविध प्रयोग किए जाते हैं।
- ❑ कई शिकारी लोग जंगली प्राणियों को तीर बंदूक आदि से मार डालते हैं और उनके मांस की मिजबानी उडाते हैं।
- ❑ सौंदर्य प्रसाधन के नाम पर अनेक प्राणियों पर निर्दयतापूर्वक अत्याचार किए जाते हैं।
- ❑ सर्कस में विविध कार्यक्रमों में जंगली पशुओं को जोडने के लिए उन पर घोर जूलम ढाए जाते हैं।
- ❑ कुम्हार आदि गधे आदि के पास खूब काम लेते हैं और उस बेचारे गधे को भर पेट खाने को भी नहीं मिल पाता है। पूरी मजदूरी करने पर भी उसे भूखा ही सो जाना पड़ता है।

तिर्यच गति के दुःखों के बाद अब नजर करना - मनुष्य गति के दुःखों पर।

- ❑ मनुष्य का भव होने पर भी साक्षात् नरकागार जैसी भयंकर पीडाएँ सहन कर रहे मनुष्यों के दर्शन करना हो तो मुम्बई की प्रसिद्ध जसलोक हॉस्पिटल या अहमदाबाद की वी.एस. हास्पिटल, राजस्थान हॉस्पिटल में एक बार राउंड Round लगा देना।
  - कैसे कैसे दर्दी और उनकी कैसी कैसी यातनाएँ !
  - ❑ कोई केंसर का दर्दी है तो कोई हार्ट-एटेक का।
  - ❑ किसी के दोनों पैर कट गए हैं तो किसी के दोनों हाथ !
  - ❑ किसी की खोपडी फट गई है तो किसी की आंखे !
  - ❑ कोई बुखार से पीडित है तो कोई टी.बी. से।
  - ❑ ओपरेशन-थियेटर में किसी के बायपास सर्जरी का ओपरेशन हो रहा है तो किसी के पेट में से बडी बडी गांटे निकाली जा रही है।
  - ❑ कोई डायबीटीस् का दर्दी है तो किसी का Blood Pressure कंट्रोल में नहीं है।
  - ❑ किसी का हार्ट बंद होने की तैयारी में है तो किसी की कीडनी Fail हो रही है।
  - ❑ किसी का पेशाब बंद हो चूका है तो नली से पेशाब निकाला जा रहा है तो किसी को श्वास लेने में तकलीफ होने से ऑक्सीजन पर चढाया गया है।
  - ❑ कोई हैज से पीडित है तो किसी को हेमरेज हो गया है।
  - ❑ कोई एड्स का दर्दी है तो किसी को संधि वायु की पीडा है।
  - ❑ किसी का X-Ray निकाला जा रहा है तो किसी का Blood व Urine Test किया जा रहा है।
  - ❑ किसी के खून में गडबड है तो किसी के सीने में दर्द है।
  - ❑ किसी को स्तन केंसर हो गया है तो किसी को Blood Cancer.
  - ❑ कोई अंधापे से पीडित है तो कोई बहरेपन से।
  - ❑ किसी को गेगरीन हो गया है तो किसी को तपेदिक।
- इस दुनिया में हजारों की संख्या में हॉस्पिटलें हैं, फिर भी जहां देखे, वहां दर्दियों की Line लगी हुई है।
- ये तो हुई शारीरिक रोगों की बात।
- इस दुनिया में कई मनुष्य भयंकर से भयंकर मानसिक-पीडा का अनुभव

कर रहे हैं ।

- ❑ उस सेठ के पास करोड़ों की संपत्ति हैं किंतु संतान के अभाव के कारण वह रात-दिन संतप्त है । संतान के अभाव की मानसिक-पीडा उसके लिए असह्य बनी हुई है ।
- ❑ करोड़ों की संपत्ति के मालिक ये फिल्मी हीरोइनों मानसिक संत्रास के कारण आत्महत्या का आश्रय ले रही हैं ।
- ❑ सेठ द्वारा हो रहे अपमान तिरस्कार के कारण वह नौकर संत्रस्त है ।
- ❑ पत्नी की झगडालु वृत्ति के कारण उस पति की जिंदगी बेकार हो गई है । उसका घर हर समय कलह का मैदान बन चुका है ।
- ❑ चारों ओर से आर्थिक समस्याओं के कारण उस पर अत्यंत ही मानसिक दबाव हैं, अंत में वह आत्महत्या करने के लिए उतारू हो गया है ।
- ❑ दो वर्ष पूर्व माता-पिता की उपेक्षा कर प्रेम लग्न किए थे और आज वे दोनों पति-पत्नी डायवर्स के लिए कोर्ट के द्वार पर आकर खडे हुए है ।
- ❑ 'व्यापार में इस बार दस लाख का फायदा हुआ किंतु घर में चोरी हो जाने से 15 लाख का नुकसान हो गया' सेठ की हालत बडी खराब हो गई ।
- ❑ 'किसी ने उस पर बलात्कार का झूठा इल्जाम लगा दिया । निर्दोष होते हुए भी उसे कोर्ट के चक्कर लगाने पडे रहे है ।
- ❑ 'किसी ने उसकी जमीन पर झूठा कब्जा कर लिया' इस कारण वह दुःखी हो गया है ।
- ❑ 'उसके 7 लडके होने पर भी एक भी लडका उसकी सेवा करने के लिए तैयार नहीं है, वह कह रहा है, 'नाम के 7 लडके काम का एक भी नहीं ।'
- ❑ वह सास अपनी बहु की तानाशाही के कारण अत्यंत ही परेशान है । वह कहती हैं, 'मेरे घर में बहु नहीं आई थी तब तक मैं सुखी थी, अब मैं परेशान हो गई हूँ ।'
- ❑ वह पुत्र-वधु अपनी सास के कारण दुःखी है । दहेज के लोभ के कारण वह सास, पुत्र-वधु को बारबार परेशान करती रहती हैं, आखिर उस पुत्र-वधु ने जहर खाकर आत्म हत्या कर दी ।
- ❑ शेयर के भाव एकदम Down हो गए, अनेक व्यक्ति साफ हो गए, अनेको की नींद हराम हो गई ।

- ❑ भावों में तेजी मंदी के साथ ही सेठ का स्वास्थ्य बनता-बिगडता है । तेजी सुनते ही ठीक हो जाते हैं और मंदी सुनते ही अस्वस्थ !
- ❑ जिस बेटे को पढाने-लिखाने के लिए मा ने सब कुछ सहन किया, लग्न के बाद वह पत्नी का हो गया, मा के सारे अरमानों पर पानी फिर गया, वह अत्यंत ही दुःख से अपने दिन काट रही है ।
- ❑ बचपन में उन दो भाइयों के बीच कितना गाढ प्रेम था, परन्तु आज वह प्रेम हवा में उड गया हैं, वे दोनों भाई एक-दूसरे का मुंह देखने के लिए राजी नहीं है ।  
इस प्रकार मनुष्य गति में भी सुख का नामोनिशान नहीं है और दुःख का पार नहीं है ।

शायद तुम यह कल्पना करते होंगे कि मनुष्य गति में भले ही सुख नहीं हो किंतु देव गति तो सुख भरपूर होनी चाहियें, क्योंकि इच्छा मात्र से ही उनके सारे संकल्प पूर्ण हो जाते हैं । भोजन के लिए उन्हें रसोई बनानी नहीं पडती है । कही जाने-आने के लिए उन्हें टिकट विंडों Ticket Window पर Line लगानी नहीं पडती है । उनके शरीर में किसी प्रकार की बीमारी नहीं होती हैं उन्हें Accident आदि का कोई भय नहीं होता हैं, उनके पास अमाप धन-संपत्ति होती है, इत्यादि ।

देवताओं के बाह्य-सुख के संदर्भ में तुमने जो बातें कही, वे बिल्कुल सत्य है । उन्हें मनुष्य की तरह नौ मास तक गर्भावास की पीडा सहन नहीं करनी पडती है । उम्र की वृद्धि के साथ उन्हें बुढापा परेशान नहीं करता हैं । उनके शरीर में किसी प्रकार का रोग पैदा नहीं होता है । इस प्रकार भौतिक दृष्टि से मनुष्य की अपेक्षा देवता अनेकगुणे सुखी होने पर भी वे देव ज्ञानियों की दृष्टि में सुखी नहीं है ।

**देवताओं के पास अपार सुख होने पर भी एक दिन उनका सुख नष्ट हो जाने वाला हैं, क्योंकि आयुष्य की पूर्णाहृति के साथ ही उन्हें वे सुख छोडने ही पडते हैं । देवता मरकर मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यच बन सकते हैं और भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और दूसरे वैमानिक तक के देवता मर कर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में भी जा सकते हैं ।**

- ❑ अपने आयुष्य की समाप्ति के छ मास पूर्व देवता अपने आगामी भव के

आयुष्य का बंध करते हैं। अपने ज्ञान के बल से जब उन्हें अपने गंतव्य भव का पता चलता है, तब उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय होती है।

- एक भिखारी के तौर पर जन्में हुए बालक को भीख मांगने में इतने कष्ट का अनुभव नहीं होता है, परंतु एक करोड़पति के रूप में जन्में व्यक्ति को यदि उसी जीवन में भीख मांगने के दिन आ जाय तो उसकी स्थिति अत्यंत ही दयनीय होती है, बस, इसी प्रकार जिन देवताओं के शरीर में या बाह्य वातावरण में कहीं भी गंदगी को स्थान नहीं होता है, ऐसे देवताओं को जब अशुचिभरे स्थान में जन्म लेना पड़ता है, तब उनकी स्थिति अत्यंत ही खराब होती है।

इस प्रकार हजारों वर्ष तक बाह्य सुख का अनुभव करने पर भी अंत में तो उनके ललाट पर दुःख ही लिखा होता है तो फिर उन देवताओं को हम सुखी कैसे कह सकेंगे ?

भौतिक-दृष्टि से समृद्ध देवता भी मानसिक दृष्टि से दुःखी देखे जा सकते हैं, क्योंकि अपार संपत्ति होने के साथ ही वे वीतरागी तो नहीं हैं, अतः अपने से ज्यादा सत्ताधीश, संपत्तिवान् व पुण्यवान् को देखकर वे ईर्ष्या व लोभ के कारण दुःखी दुःखी होते हैं। ईर्ष्या की ज्वाला उन्हें भी परेशान करती रहती है। लोभ के कारण वे भी मानसिक दृष्टि से संतप्त ही होते हैं।

इस प्रकार देखोगे तो इस संसार में चारों गतियाँ दुःख से भरपूर ही हैं।

चार गति रूप भव-संसार के विचारों से भाव श्रावक अपनी आत्मा को भावित करता है। इसके परिणाम स्वरूप वह संसार से सर्वथा अलिप्त रहता है।

## विषय-वैराग्य

५

'अध्यात्म सार' ग्रंथ के 7वें अधिकार में वैराग्य के दो प्रकारों का बहुत ही सुंदर वर्णन है।

वैराग्य के दो प्रकार - (1) विषय वैराग्य और (2) गुण वैराग्य।

विषय वैराग्य अर्थात् पांच इन्द्रियों के अनुकूल विषयों में सतत विरक्ति !

- जिस योगी पुरुष का मन आत्मा के सत् चित् और आनंद स्वरूप में मस्त बना हो, उसे पांच इन्द्रियों के भौतिक विषयों में लेश भी आकर्षण या आसक्ति नहीं होती है।

जो आत्मा अध्यात्म के अमृत कुंड में स्नान करता हो उसे विष की धारा कुछ भी पीडा नहीं कर पाती, उसी प्रकार अनुकूल विषयों को प्राप्त कर योगी पुरुषों का मन लेश भी चंचल नहीं बनता है।

- जिन योगी पुरुषों का मन अनाहत-नाद के श्रवण में मस्त बना हो, ऐसे विरक्त योगी पुरुषों को कोकिल कंठी स्त्री के मधुर संगीत के श्रवण में लेश भी आकर्षण नहीं होता है।

- शुद्ध स्फटिक की तरह आत्मा का स्वरूप अत्यंत ही निर्मल है। निर्मल और शाश्वत आत्मा के स्वरूप के दर्शन में लीन बने योगी आत्मा को वीर्य और रुधिर से उत्पन्न हुए स्त्री आदि के देह दर्शन में किसी प्रकार का आकर्षण नहीं होता है।

चर्म-चक्षु से दिखाई देने वाला रूप तो विनाशी हैं, क्योंकि वह पौद्गलिक है। काल-क्रम से पौद्गलिक पदार्थ के बाह्य रूप में परिवर्तन आता रहता है। आज जो रूप अत्यंत सुंदर दिखाई दे रहा है, कल उसका स्वरूप वैसी ही रहेगा, इसकी गारंटी नहीं है।

यौवन के कारण जिस स्त्री के देह में आकर्षण होता है, वही स्त्री जब वृद्ध हो जाती है, तब उसका रूप अत्यंत ही बिभत्स बन जाता है, फिर उसके दर्शन में किसी प्रकार का आकर्षण नहीं रहता है।

- मुमुक्षु आत्मा का मन कस्तुरी, मालती के पुष्प, गुलाब व मोगरे के फूल, चंदन, केंसर तथा कपूर आदि की सुगंध में लुब्ध नहीं बनता है, क्योंकि मुमुक्षु आत्माओं का मन तो शील की सुगंध के आस्वाद में डूबा होता है।

अध्यात्म की सुगंध के रसपान का भ्रमर बने मुमुक्षु आत्मा को क्षणिक व परिवर्तन शील भौतिक पदार्थों की बाह्य सुगंध का कोई आकर्षण नहीं रहता है।



- ❑ मुमुक्षु आत्मा को मधुर व स्वादिष्ट पक्वान्न , फलाहार-मेवे आदि पदार्थों के स्वाद में किसी प्रकार का आकर्षण नहीं होता है ।
- ❑ **मधुर रस वाले पदार्थों को देखकर रसना-लालचु प्राणियों की जीभ में से रस टपकने लगता है, जबकि उन्हीं पदार्थों को देखकर मुमुक्षु आत्माओं की आंखों में यह सोचते हुए आंसु आ जाते हैं कि इन पदार्थों के स्वाद में लुब्ध बनने पर भविष्य में आत्मा की कैसी भयंकर दुर्दशा हो जाएगी ।**
- ❑ मुमुक्षु आत्माओं को अशुचि की भंडार स्वरूप स्त्री के देह-स्पर्श में किसी प्रकार की सुखानुभूति नहीं होती है । मोहान्ध व अज्ञानी आत्माएँ स्त्री के भोग आदि में सुख की कल्पना करती हैं, जबकि ज्ञानी व योगी पुरुषों को आत्मा के ज्ञानादि गुणों के भोग में परमानंद का अनुभव होता है ।  
देह-स्नान, बावना चंदन का लेप, सुंदर वस्त्र एवं अलंकार आदि में मुमुक्षु आत्माओं को किसी प्रकार का मोह उत्पन्न नहीं होता है । क्योंकि मुमुक्षु आत्मा तो काम की चेष्टाओं को सर्प के विष की मूर्च्छा तुल्य मानते हैं ।  
मोक्ष की प्राप्ति में ही जिस मुमुक्षु आत्मा ने परम सुख की कल्पना की है, ऐसी मुमुक्षु आत्मा को जिस प्रकार इस लोक के बाह्य सुखों का आकर्षण नहीं होता है, उसी प्रकार उसे देवलोक संबंधी दिव्य सुखों का भी कोई आकर्षण नहीं होता है ।  
देवलोक के दिव्य सुख भी विष मिश्रित पक्वान्न की तरह वास्तव में सुखकारी नहीं है, क्योंकि जिन देवताओं को आज जो दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं, उनके वे सुख भी हमेशा रहने वाले नहीं है । च्यवन का समय निकट आने के साथ ही उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय व करुण बन जाती है ।  
देवताओं की इस स्थिति को जानने के कारण मुमुक्षु आत्माओं को दिव्य सुखों का कोई आकर्षण नहीं होता है, वह तो एक मात्र भव-बंधन से सदा के लिए मुक्त, मुक्ति के सुख को पाने के लिए सदैव समुत्सुक होती है ।  
इस प्रकार विषयों में अत्यंत ही विरक्त बने योगीपुरुषों को साधना के फल स्वरूप अनेक प्रकार की लब्धियाँ, विपूल लब्धि, पुलाक लब्धि, चारण लब्धि, आशी विष लब्धि आदि प्राप्त हो तो भी उन योगी पुरुषों को उन लब्धियों का किसी प्रकार का अहंकार नहीं होता है ।  
ये विरक्त आत्माएँ अपने निजी स्वार्थ के लिए कभी भी उन लब्धियों का उपयोग नहीं करती है ।  
सनत्कुमार महामुनि का प्रसंग तो याद है न !

सनत्कुमार चक्रवर्ती का अद्भूत रूप था । एक बार सौधर्म सभा में बैठे इन्द्र महाराजा द्वारा सनत्कुमार चक्रवर्ती के अद्भूत रूप की मुक्तकंठ से की गई प्रशंसा को दो मिथ्यादृष्टि देव सहन नहीं कर पाए । इन्द्र के वचन की परीक्षा के लिए ब्राह्मण का रूप कर वे सनत्कुमार चक्रवर्ती के महल में पहुँच गए । उस समय सनत्कुमार चक्रवर्ती स्नानागार में स्नान कर रहे थे ।

ब्राह्मण के वेष में रहे वे देव स्नानागार के निकट पहुँच गए और चक्रवर्ती के अद्भुत रूप को निहारने लगे । अचानक चक्रवर्तीने पूछ लिया - 'अरे भूदेवों ! कैसे आए हो ?'

'हमने आपके रूप की दूर-सुदूर क्षेत्र में प्रशंसा सुनी है इसी कारण आपके रूप दर्शन के लिए आए हैं । वास्तव में हमने जैसी प्रशंसा सुनी, वैसा ही आपका अद्भुत रूप और लावण्य है ।' -ब्राह्मण वेष में रहे देवों ने कहा ।

'अरे ब्राह्मणों ! मेरा रूप देखना है तो राजसभा में आना ! अभी तो मैं स्नान कर रहा हूँ मेरे शरीर पर कोई कीमति वस्त्र अलंकार भी नहीं ।' अत्यंत ही गर्व के साथ सनत्कुमार ने कहा ।

'जैसी आपकी आज्ञा ।' इतना कहकर वे देव बाहर आ गए ।

इधर थोड़ी ही देर बाद स्नान-विधि से निवृत्त होकर सनत्कुमार चक्रवर्ती ने अत्यंत ही कीमती वस्त्र धारण किए । तत्पश्चात् रत्नजडित स्वर्ण आदि के विविध आभूषणों से उन्होंने अपना देह अलंकृत किया । अच्छी तरह से सज-धज कर वे राजसभा में प्रवेश करने लगे ।

राजसभा में प्रवेश के समय छडीदार ने जोरों से छडी पुकारी । 'भरत खंड के अधिपति महाराजाधिराज सनत्कुमार चक्रवर्ती पधार रहे हैं ।' - 'महाराजाधिराज की जय हो, जय हो !' के गगनभेदी नादों से राजसभा गुंज उठी ।

महामंत्री सेनाधिपति, नगरसेठ तथा प्रजाजनों ने महाराजा का भावभीना सत्कार किया । कुछ ही क्षणों के बाद सनत्कुमार चक्रवर्ती अपने सिंहासन पर आरूढ हुए ।

थोड़ी देर बाद महामंत्री ने राजसभा की कार्यवाही प्रारम्भ कर दी । महाराजा ने सभा के ऊपर पैनी नजर डाली । उस राजसभा में वे दो ब्राह्मण वेषधारी देव भी आए हुए थे- परन्तु महाराजा की ओर दृष्टि डालते ही उन्होंने अपना मुंह मोड़ दिया था । चक्रवर्ती ने अपनी सगी आंखों से ब्राह्मणों के उस विचित्र वर्तन को देख लिया । वे तुरंत ही बोल उठे, 'अरे ब्राह्मणों ! तुम मेरे

रूप दर्शन के लिए इतनी दूरी से आए हो तो अभी आंख मिचौनी क्यों कर रहे हो ?

उन ब्राह्मणों ने हाथ जोड़कर कहा, 'राजन् ! जिस रूप दर्शन के लिए हम आए थे, वह रूप तो अब नष्ट हो चूका है, अब देखने जैसा रहा भी क्या है ? आपको विश्वास न हो तो आप अपने प्याले में थूक कर देखिए...उनमें कितने कीड़े पैदा हो गए हैं ?'

ब्राह्मणों की इस बात को सुनते ही चक्रवर्ती ने एक पात्र में थूका । तत्क्षण उन्हें अनेक कीड़ें दिखाई दिए । रूप का अभिमान उनका एक ही क्षण में गल गया और वे सोचने लगे, 'अहो ! इस देह का रूप इतना विनश्वर ! मेरी काया रोगों से घिर गई है ? मेरे रूप के अभिमान को धिक्कार हो । अब मुझे इस देह की ममता का त्याग कर आत्मा के शाश्वत व सच्चे सौंदर्य को पाने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिये ।' इस प्रकार विचार कर तत्क्षण उन्होंने राज्य परित्याग का अपना निर्णय घोषित कर दिया और चक्रवर्ती के वेष का परित्याग कर आत्म सौंदर्य के पिपासु बनकर जंगल की ओर आगे बढ़ गए ।

सनतकुमार चक्रवर्ती के जीवन में अचानक आए इस परिवर्तन को देखकर सभी दिग्मूढ हो गए । सभी सोचने लगे, 'यह क्या ?'

सनतकुमार चक्रवर्ती का अंतःपुर करुण विलाप करने लगा । अंतःपुर की स्त्रियां उनके पीछे पीछे चलने लगी और उन्हें वापिस लौटने के लिए आजी-जी भरी प्रार्थनाएँ करने लगी, ...परन्तु अंतर से विरक्त बने सनतकुमार महामुनि के मन पर इन करुण आक्रंदों का कुछ भी प्रभाव नहीं पडा । वे तो इस भीड़ के बीच भी एकाकी बने आत्मसाधक की भांति अपनी आत्म साधना में आकंठ डूब गए थे । न तो उन्हें स्त्रियों का मोह आकर्षित कर सका और न ही देह में फैले हुए भयंकर रोग उनकी आत्म साधना में बाधक बन सके । छ मास तक उनका अंतःपुर उनके पीछे पीछे चलता रहा...फिर भी वे महामुनि अपने साधना मार्ग से लेश भी चलित नहीं हुए । आखिर थककर अंतःपुर की स्त्रियाँ वापस अपने महलों में लौट गई ।

चक्री में से महामुनि बने सनतकुमार महामुनि रत्नत्रयी की आराधना साधना में तल्लीन बन गए । वर्षों पर वर्ष बीतने लगे ।

एक दिन पुनः इन्द्रसभा में बैठे इन्द्र महाराजा ने सनतकुमार महामुनि के धैर्य-सत्त्व गुण की भूरि भूरि प्रशंसा की ।

महामुनि के सत्त्व गुण की प्रशंसा को सहन नहीं करने वाले वे मिथ्यादृष्टि दो देव महामुनि के सत्त्व गुण की परीक्षा के लिए वैद्य के वेष में पृथ्वीतल पर

उतर आए ।

सनतकुमार महामुनि निःसंग भाव से जंगल की ओर विहार कर रहे थे । तभी वे वैद्य वेषधारी देव महामुनि के सामने आकर खड़े हुए और महामुनि के चरणों में प्रणाम करने लगे ।

महामुनि ने उन्हें 'धर्मलाभ' की आशीष दी ।

तत्पश्चात् उन वैद्यों ने कहा, 'भगवंत ! हम शारीरिक रोगों की चिकित्सा करने वाले कुशल वैद्य हैं, आपके देह पर दृष्टिपात करने से लगता है कि आपकी काया रोगों से घिरी हुई है, अतः हे कृपालु ! आप हम पर कृपा करें और हमें रोगों की चिकित्सा करने का अवसर प्रदान करें ।'

वैद्यों के मुख से इस बात को सुनकर महामुनि ने कहा, 'बंधुवर ! देह रोग से भी अति भयंकर कर्म-रोग मेरी आत्मा को लगा हुआ है, यदि उस रोग को तुम मिटा सकते हो तो मेरी छूट है, बाकी शरीर के रोग की तो मुझे कुछ परवाह नहीं है, इस रोग को तो मैं भी मिटा सकता हूँ...।' इतना कहकर महामुनि ने अपने मुंह में से अपनी अंगुली पर थोड़ा सा थूक लिया और उसे अपने एक हाथ पर लगाने लगे । देखते ही देखते वह थूक से स्पर्श हुई चमड़ी कंचन जैसी बन गई ।

यह दृश्य उन मिथ्यादृष्टि देवों ने देखा और वे भावपूर्वक से झुक गए ।

अहो ! देह में एक ओर इतने भयंकर रोग और दूसरी ओर उन रोगों को निर्मूल करने की ऐसी अद्भुत आत्म-लब्धि ! फिर भी ये महामुनि उस लब्धि का उपयोग अपने देह के रोग निवारण में नहीं कर रहे हैं । ये महामुनि कितने सत्त्वशाली हैं ? सचमुच ! इन्द्र महाराजा ने इनके सत्त्व गुण की जैसी प्रशंसा की, वैसे ही सत्त्व गुण के ये धारक हैं ।

उन देवों ने अपना मूल-स्वरूप प्रगट किया और अपने अपराध की क्षमा याचना कर पुनः स्वर्ग लोक में चले गए । इधर सनतकुमार महामुनि भी अत्यंत ही दृढता पूर्वक शरीर में फैले हुए उन भयंकर रोगों को अत्यंत ही समता पूर्वक सहनकर समस्त कर्मों का क्षय कर मोक्ष में चले गए ।

हैं न सनतकुमार महामुनि की विरक्तता । उनके श्लेष्म आदि में रोग-निवारण की शक्ति पैदा हो चूकी थी, परंतु उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए उस लब्धि का लेश भी उपयोग नहीं किया ।

□ तारक तीर्थकर परमात्मा अपने छद्मस्थकाल में अतुलबली और अनंत लब्धियों के स्वामी होते हैं, परंतु विषय वैराग्य की तरह उनका गुण वैराग्य

भी इतना अधिक प्रबल होता है कि वे उपसर्गों से बचने और अपनें देह रक्षण आदि के लिए अपनी लब्धियों का कभी उपयोग नहीं करते थे ।

□ संगम जैसे भयंकर देव को चकचूर करने की ताकत रखनेवाले महावीर प्रभु ने देव-मनुष्य व तिर्यच कृत सभी उपसर्गों को अत्यंत ही समतापूर्वक सहन किया था, जबकि उपसर्ग करने वालों को परास्त करने की उनमें पूर्ण शक्ति थी ।

उपरोक्त प्रसंगों को दृष्टि समक्ष रखकर अपनें जीवन में विषय वैराग्य और गुण वैराग्य को पुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

'सम्यग् ज्ञान' के प्रकाश में जब हम जगत् का यथार्थ दर्शन करते हैं, तब अपनी आत्मा में इस बाह्य संसार के प्रति वैराग्य भाव पैदा हुए बिना नहीं रहता ।

**परमज्ञानी महापुरुषोंने वैराग्य के तीन भेद भी बतलाएँ हैं, जिनमें दो त्याज्य और एक उपादेय बतलाया है । वैराग्य के ३ भेद - (१) दुःखगर्भित वैराग्य (२) मोहगर्भित वैराग्य और (३) ज्ञानगर्भित वैराग्य ।**

१) संसार के यथार्थ स्वरूप को जाने बिना एक मात्र संसार के बाह्य कष्ट, निर्धनता, तिरस्कार, अनादर, भूख आदि दुःखों को देखकर जिसे वैराग्य होता है, वह **दुःखगर्भित वैराग्य** कहलाता है । यह वैराग्य स्थिर नहीं रह पाता । दुःख दूर होने के साथ ही वह व्यक्ति पुनः संसार की ओर अपना मुख कर देता है । कहाँ है :-

**'सिर मूंडन में तीन गुण, सिर की मिट गई खाज ।**

**खाने को लड्डू मिले, लोक कहे महाराज'**

संसार के बाह्य कष्टों से घबराकर दीक्षित बनने वाले साधु का उद्देश्य मात्र बाह्य सुखों की प्राप्ति का ही होता है । संसार के दुःख से घबराया व्यक्ति संसार के सुख मिलते ही पुनः संसार की ओर दौड़ लगा देता है अथवा श्रमण जीवन में बाह्य सुख के बजाय अपनी कल्पना से विपरीत दुःख पडे तो भी वह दुःख से घबराकर श्रमण जीवन का त्याग कर देता है । ऐसी आत्माएँ पापभीरु न होकर दुःखभीरु होती है ।

२) कुशास्त्र के अध्ययन से जो भव वैराग्य पैदा होता है, वह **मोहगर्भित वैराग्य** कहलाता है । जिनेश्वर भगवंत के द्वारा बतलाए हुए सत्य तत्वों का जिसे यथार्थ बोध नहीं है और असर्वज्ञ कथित स्वर्ग-नरक-मोक्ष आदि के मिथ्या स्वरूप को जानकर जो संसार से विरक्त बनता है, उसका वैराग्य मोहगर्भित कहलाता है ।

मोहगर्भित विरक्त आत्मा कुशास्त्रों में दक्ष होती है और सर्वज्ञ कथित शास्त्रों का विपरीत अर्थ करती है । वह आत्मा स्वच्छंदी होती है । न तो उसमें गुणीजनों के प्रति आदर भाव होता है और न ही क्रोध के प्रसंग में क्षमा भाव ।

स्वयं की बडाई हांकना, दूसरों के साथ द्रोह करना, कलह क्लेश व झगडे करना, कपट करना, अपनें पाप को छिपाना, गुणी पुरुषों के प्रति राग न होना, अपनें उपकारी के उपकार को भूल जाना, पाप के अनुबंध पडने की चिंता नहीं करना, शुभ क्रियाओं में प्रणिधान का अभाव होना तथा अविवेक पूर्वक प्रवृत्ति करना इत्यादि मोहगर्भित वैराग्य से जन्य दोष है ।

उपरोक्त दोनों प्रकार के वैराग्य त्याज्य है ।

३) सम्यक्त्व के कारण जिसे जिन प्ररूपित तत्वों का यथार्थ बोध हुआ हो, जिसकी दृष्टि स्याद्वाद से पूर्ण हो, जो सदैव मोक्षमार्ग के उपाय में उद्यमशील हो और तत्व जानने का अर्थी हो, ऐसे मुमुक्षु का वैराग्य **ज्ञानगर्भित** कहलाता है । यह ज्ञानगर्भित वैराग्य गीतार्थ (स्व-पर शास्त्र के यथार्थ ज्ञाता) एवं गीतार्थ की निश्चा (आज्ञा पालन) स्वीकार करने वाले को कहा गया है ।

ज्ञानगर्भित वैराग्य के फल स्वरूप आत्मा में अनेक गुण प्रगट होते हैं । ज्ञानगर्भित विरक्त आत्मा की दृष्टि सूक्ष्म और मध्यस्थ होती है । उस आत्मा को किसी प्रकार कदाग्रह नहीं होता है । जगत् के समस्त जीवों के प्रति उसके दिल में मैत्री भाव होता है । वह आत्मा सम्यग् क्रियाओं में आदर वाली होती है ।

**दूसरों के दोष देखने में वह आत्मा अंध-समान, दूसरों के दोष बोलने में वह आत्मा मूक-समान और दूसरों की निंदा सुनने में वह आत्मा, बधिर-समान होती है ।**

जिस प्रकार गरीब व्यक्ति को अर्थार्जन में भारी उत्साह होता है, इसी प्रकार ज्ञानगर्भित वैराग्य वाली आत्मा को आत्मगुणों की प्राप्ति में अत्यधिक उत्साह होता है ।

वह आत्मा काम के उन्माद से रहित होती है अर्थात् वह इस प्रकार की कोई चेष्टा नहीं करती है, जिससे काम का उद्दीपन हो ।

वह आत्मा जाति, कुल, रूप, विद्या आदि के मद से रहित होती है । अन्य की बाह्य व अंतरंग समृद्धि को देखकर उसके दिल में किसी प्रकार की ईर्ष्या की आग पैदा नहीं होती है । इतना ही नहीं, वह आत्मा समतारूपी अमृत कुंड में सदैव स्नान करती रहती है । क्रोधादि कषायों का आवेग लगभग शांत

हो गया होता है ।

वह आत्मा , आत्मा के चिदानंद स्वभाव में सदैव मस्त होती है ।

**प्रश्न :** गीतार्थ आत्मा को तो ज्ञानगर्भित वैराग्य संभव है । परन्तु गीतार्थ की निश्चा स्वीकार करने वाले को ज्ञानगर्भित वैराग्य कैसे संभव है ?

उत्तर- ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की मंदता के कारण भले ही कोई आत्मा स्वयं अपनी बुद्धि से जिनोपदिष्ट तत्वों को न जान सके, परन्तु उस आत्मा पर लगा मोहनीय (दर्शन मोहनीय) कर्म मंद हो गया हो और उसका क्षयोपशम हो गया हो तो वह आत्मा गीतार्थ गुरु के चरणों में पूर्णतया समर्पित हो जाती है और वह आत्मा गीतार्थ गुरु की आज्ञा के अनुसार हर प्रकार की प्रवृत्ति करती है । गीतार्थ की आज्ञा का वह लेश भी उल्लंघन नहीं करती है ।

जिस प्रकार किसी को गाडी चलाना Driving नहीं आता हो फिर भी अपनी गाडी , ड्राइवर को सौंप कर वह व्यक्ति अपने लक्ष्य स्थल पर पहुँच जाता है , बस , इसी प्रकार स्वयं गीतार्थ नहीं होने पर भी गीतार्थ की परतंत्रता का स्वीकार किया होने के कारण वह आत्मा गीतार्थ की भांति स्वयं भी भव सागर से पार हो जाती है ।

शास्त्र में 'माषतुष' आदि मुनियों के अनेक दृष्टांत हैं , जो स्वयं गीतार्थ नहीं होने पर भी गीतार्थ की निश्चा का स्वीकार करने के कारण भव बंधन से सदा के लिए मुक्त हो गए ।

जिन वचनों का अमृत पान कर , उन वचनों को पूर्ण श्रद्धा व आस्था पूर्वक स्वीकार कर अपने जीवन में ज्ञानगर्भित वैराग्य को पुष्ट करने का प्रयास कर शीघ्र ही मुक्ति सुख के भोक्ता बनो , यही शुभ कामना है ।

भावश्रावक के 17 गुणों के अन्तर्गत छद्म गुण हैं , 'आरंभ त्याग' यहां आरंभ शब्द जैनदर्शन का पारिभाषिक शब्द है । आरंभ का अर्थ प्रारंभ नहीं लेना है ।

जैन दर्शन में **सरंभ** का अर्थ है - 'हिंसा का संकल्प' । **समारंभ** का अर्थ है-दूसरों को पीडा देना तथा **आरंभ** का अर्थ है - अन्य प्राणियों का नाश करना ।

भावश्रावक की आन्तर परिणाति का वर्णन करते हुए कहा है कि '**सर्वविरतिलालसः खलु देशविरतिः परिणामः**' अर्थात् भावश्रावक के दिल में सर्वविरति धर्म को पाने की तीव्र लालसा होती है अर्थात् वह श्रावक बाह्य दृष्टि से घर में रहा हुआ होता है , परंतु उसके अन्तर्मन में तो सर्वविरति की ही भावना होती है । अन्य शब्दों में श्रावक घर में रहता है , किंतु घर में रमता नहीं है ।

'**सर्वजीवस्नेहपरिणामः सर्वविरतिः**:' अर्थात् सर्वविरति में जगत् के समस्त जीवों के प्रति अपार स्नेह भाव होता है ।

सामान्यतया दुनिया में नियम है कि जिन जीवों के प्रति हृदय में स्नेह भाव होगा , उन जीवों की हिंसा करने की भावना कभी नहीं होगी ।

भावश्रावक संयम पाने का तीव्र अभिलाषी होता है , अतः उसके दिल में जगत् के अन्य जीवों की हिंसा करने का भाव तो हो ही नहीं सकता ।

जहां तक हो सके वहां तक श्रावक आरंभ समारंभ करे नहीं और करना ही पडे तो अल्प आरंभ से काम चलाता है अर्थात् श्रावक बहु आरंभी नहीं , किंतु अल्प आरंभी होता है ।

ऐसे व्यवसाय जिनमें अनेक त्रस जीवों का घाता होता है , उन व्यवसायों का श्रावक त्याग ही करता है ।

**(1) अंगार कर्म :-** जिस व्यापार में भट्टी की मुख्यता हो उसे अंगारकर्म कहते हैं । अंगारकर्म में अग्नि की प्रबलता से छह काय के जीवों की विराधना होती है । अतः ऐसा व्यापार नहीं करना चाहिये । अंगारकर्म निम्नलिखित हैं -

- (1) लुहार का धन्धा
- (2) सुनार का धन्धा
- (3) भडभूंजा का धन्धा
- (4) कुम्भार का धन्धा
- (5) ईंट पकाने का काम
- (6) दियासलाई बनाने की फैक्ट्री

- (7) चुना पकाने का धन्धा
- (8) लकड़ियाँ जलाकर कोयला बनाने का धन्धा
- (9) क्षार भस्म आदि का धन्धा
- (10) होटल-फार्मसी का धन्धा

**(2) वन कर्म :-** जिसमें वनस्पति का छेदन-भेदन अधिक प्रमाण में हो, उसे वन कर्म कहते हैं, इसमें मुख्यतया निम्नलिखित धन्धे हैं -

- (1) जंगल कटवाना
- (2) वन सम्बन्धी वृक्ष, मूल, फल आदि कटवाने का धन्धा
- (3) खेती बाड़ी, बगीचे का धन्धा
- (4) साग सब्जी का व्यापार इत्यादि ।

**(3) शकट कर्म :-** वाहन तथा उसके अंग Part निर्माण आदि का धन्धा शकट कर्म कहलाता है, इसमें मुख्यतया निम्न धन्धे आते हैं -

- (1) गाडा गाडी बनाना ।
- (2) मोटर, ट्रक, जहाज विमान बनाना, बेचना तथा किराये पर देना ।
- (3) इंजिन तथा वाहनों के अन्य अंगों Parts का उत्पादन तथा क्रय विक्रय करना ।

**(4) भाडी कर्म :-** वाहन के साधनों को भाड़े पर देना भाडी कर्म कहलाता है ।

जैसे गाड़ी, मोटर, साईकल, रिक्शा, तांगा, बैल-गाडी, बैल, घोड़ा आदि भाड़े पर देना ।

**(5) स्फोटक कर्म :-** पृथ्वी अथवा पर्वत को फोड़ने वाले धन्धे स्फोटक कर्म कहलाते हैं । इसमें निम्नलिखित धन्धे आते हैं -

- (1) कुआ खोदना (बोरिंग करना)
- (2) तालाब खोदना
- (3) बावडी-झील-नहर खोदना ।
- (4) पर्वत के पत्थर तोड़ना इत्यादि ।

**(6) दन्त वाणिज्य :-** पशु पक्षी के अंगोपांग से निर्मित वस्तुओं का संग्रह करना तथा उन्हें बेचना दन्त वाणिज्य कहलाता है, इसमें मुख्य निम्न धन्धे हैं -

- (1) हाथी दांत का व्यापार

- (2) उल्लू के नाखुनों का व्यापार
- (3) हिरण आदि पशुओं का चर्म व्यापार
- (4) हंस आदि पक्षियों के पंख का व्यापार

**(7) लाक्ष वाणिज्य :-** लाक्ष आदि पदार्थ, जिनमें अनेक त्रस जीवों की हिंसा होती है, ऐसा व्यापार करना ।

जैसे लाख, गोंद, क्षार, हरताल आदि वस्तुओं का व्यापार करना ।

**(8) रस वाणिज्य :-** विगई-महाविगई का व्यापार रस वाणिज्य कहलाता है ।

- (1) शहद का व्यापार करना ।
- (2) मांस मदिरा बेचना ।
- (3) दूध, दही, घी आदि बेचना ।

**(9) केश वाणिज्य :-** मनुष्य संबंधी तथा पशुओं के बालों का व्यापार करना । जैसे -

- (1) दास दासी का क्रय विक्रय करना ।
- (2) पशु पक्षी के बाल, पीछें, ऊन आदि का व्यापार ।

**(10) विष वाणिज्य :-** जहरीले पदार्थों को बेचना । जैसे -

- (1) सोमल, हरताल आदि खनिज विष का व्यापार ।
- (2) वच्छनाग आदि वनस्पति जन्य विष का व्यापार ।
- (3) अफीम, बारुद, आदि का व्यापार करना ।

**(11) यंत्र पिल्लण कर्म :-** चक्र-परिभ्रमण जिसमें हो, ऐसे यंत्र से पीलने आदि का व्यापार । जैसे -

(1) बाष्प यंत्र, पेट्रोल यंत्र, बिजली यंत्र से संचालित उद्योग धन्धों का व्यापार ।

- (2) गन्ने पीसने का धन्धा
- (3) तिलहन पीलने का धन्धा

**(12) निर्लाछन कर्म :-** पशु आदि के अंगोपांग का छेद करना निर्लाछन कर्म कहलाता है । जैसे -

- (1) पशु पक्षी के पूंछ काटना
- (2) दाग देना
- (3) पीठ गलाना
- (4) खसी करना, अंड विच्छेद करना ।

(5) नाक कर्ण आदि का वेधन करना

**(13) दव-दाह कर्म :-**

(1) जंगल जलाना ।

(2) खेत खलिहान में आग लगाना

(3) गांव जलाना इत्यादि दवदाह कर्म कहलाते हैं ।

**(14) जलाशय शोषण :-** कुआ, तालाब, सरोवर आदि के पानी का

शोषण करना, उन्हें सुखा देना ।

**(15) असती पोषण कर्म :-**

(1) दास दासी तथा वेश्या आदि को नीच धन्धे के लिए प्रोत्साहित

करना

(2) कुत्ता, बिल्ली, तोता आदि पालना

(3) जंगली पशुओं को पालना

श्रावक को उपरोक्त पंद्रह प्रकार के कर्मादानों का त्याग करना चाहिये ।

इस प्रकार के धन्धों में आय अच्छी हो तो भी मुमुक्षु को इस प्रकार के धन्धे नहीं करने चाहिये, क्योंकि इनमें अर्थलाभ होने पर भी आत्मा के शुभ परिणामों का घात होता है ।

यदि किसी परिस्थिति वश इनमें से किसी प्रकार का धन्धा करना पड़े तो भी उस धन्धे का मन में खेद होना चाहिये और उसके सिवाय के शेष धन्धों का त्याग कर देना चाहिये ।

आत्मा पर लगे अशुभ कर्मों को शीघ्र खपाने के लिए तारक तीर्थकर परमात्माओं ने तप धर्म बतलाया है । वह तप भी जब अभिग्रह पूर्वक किया जाता है, तब अत्यधिक कर्म की निर्जरा होती है । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से अभिग्रहों का स्वीकार किया जाता है ।

अभिग्रह स्वीकार करने के बाद उसे गुप्त रखा जाता है और जब तक अभिग्रह की शर्तें पूर्ण न हो तब तक अन्न-जल का त्याग किया जाता है ।

वर्तमान में भी अनेक आत्माएँ अभिग्रह धारण कर अपूर्व कर्म निर्जरा करती हैं ।

महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजय जी . म . ने वैराग्य के स्थिरीकरण के लिए सुंदर उपाय बताते हुए कहा है -

**'निर्ममस्यैव वैराग्यं स्थिरत्वमवगाहते ।**

**परित्यजेत्ततः प्राज्ञो ममतामत्यनर्थदाम् ॥''**

'जो ममता रहित हैं, उसी का वैराग्य स्थिरता प्राप्त करता है । इसी कारण प्राज्ञ पुरुष अत्यंत ही अनर्थ को देने वाली ममता का परित्याग करते हैं ।'

□ यदि हृदय में ममता जीवित है तो बाह्य विषय सुखों के त्याग की कोई कीमत नहीं है । वही त्याग एकांत आत्महितकर हैं, जिसके मूल में वैराग्य रहा हुआ है । वैराग्य रहित त्याग की कोई कीमत नहीं है । वह त्याग तो दंभ मात्र है । उस त्याग के भीतर तो थोड़ा छोड़कर, अधिक पाने की तीव्र लालसा रही हुई है ।

जिस हृदय में झोपड़ी को छोड़कर महल पाने की तीव्र लालसा रही हुई हैं, ऐसे व्यक्ति के झोपड़ी के त्याग की कोई विशेष कीमत नहीं है । ऐसा त्याग तो दंभ से भरा हुआ है ।

सांप अपनी कांचली (कंचुक) छोड़ देता है, इतने मात्र से ही वह निर्विष थोड़े ही बन जाता है ?

□ काफी प्रयत्न कर व्यक्ति गुणों को प्राप्त करता है, परंतु यह ममता राक्षसी लीला मात्र में ही गुण समुह को स्वाहा कर देती है ।

□ संभूति मुनि ने दीर्घकाल तक चारित्रधर्म का पालन और उग्र तप कर दया, निःस्पृहता, उत्कटतप, क्षमा, मृदुता आदि गुण प्राप्त किए थे । परन्तु स्त्री रत्न के प्रति पैदा हुई ममता ने उनकी समस्त गुण संपदा को साफ कर दिया । जिन गुणों को हासिल करने में वर्षों लगे थे...परंतु ममता ने कुछ ही क्षणों में उन गुणों को नष्ट कर दिया । वे महात्मा में से परमात्मा बन सकते थे, जब कि ममता ने उन्हें नीचे पटक दिया । वे एक बार चक्रवर्ती जरूर बनें, परंतु चक्रवर्ती में से सीधे नरक में चले गए ।

□ वास्तव में इस संसार में जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है । परलोक में साथ चलने वाला उसका कोई साथी नहीं है, फिर भी ममतावश होकर वह नए नए व्यक्तियों के साथ नए नए संबंध जोड़ता

रहता है। उन संबंधों को जोड़ने में, उन संबंधों को टिकाने में अपना अमूल्य समय गंवा देता है, परंतु आश्चर्य है कि परलोक में विदाई लेते समय उसका एक भी संबंध काम नहीं लगता है, उसे सब संबंधों को छोड़कर अकेला ही जाना पड़ता है।

- अहो ! वट का बीज कितना छोटा सा होता है। परंतु जमीन में बोने के बाद वह कितना फैल जाता है ? वह अपनी जड़ों व डालियों को कितनी दूर तक फैला देता है ! बस, इसी प्रकार जब व्यक्ति अपनी हृदय भूमि में ममता का बीजारोपण कर देता है, उसके बाद वह ममता वट वृक्ष की भांति धीरे-धीरे बढ़ती ही जाती है और हर बाह्य पदार्थ में ममता के कारण 'मेरा मेरा' करती रहती है।
- ममता एक ऐसी व्याधि है जो एक बार लागू पड़ने के बाद दिन-दुना-रात-चौगुना बढ़ती ही जाती है। वास्तव में ज्ञान रूपी महा औषधि के बिना इस ममता रूपी व्याधि की चिकिस्ता संभव नहीं है।
- ममत्व के कारण ही व्यक्ति निःशंक होकर आरंभ-समारंभ आदि में प्रवृत्त होता है। आरंभ-समारंभ में जो भयंकर हिंसा रही हुई है, ममत्ववान् व्यक्ति को उस हिंसाजन्य पाप का भय नहीं रहता है, अतः वह आत्मा निर्भय होकर हिंसादि पाप करती है।

धन की ममता के कारण व्यक्ति रात-दिन धन कमाने के पीछे पागल रहता है उसे दिन-रात का, कर्तव्य-अकर्तव्य का भी कोई विचार नहीं आता है। धन के लिए देशांतर गमन, वन-गमन आदि सभी कष्ट उठाने के लिए तैयार हो जाता है।

- वास्तव में व्यक्ति ममता के वशीभूत होकर अपनी संतान आदि का पालन-पोषण करती है, परन्तु वे ही पुत्र आदि न तो इस लोक में सहायक बनते हैं और न ही परलोक में।

मगध सम्राट् श्रेणिक ने कितने प्रेम और वात्सल्य से अपने पुत्र कोणिक का पालन-पोषण और रक्षण किया था, जब कि वही कोणिक, वृद्ध बने अपने पिता श्रेणिक को जेल के सिकंजों में बंद कर देता है, इतना ही नहीं, उनको अत्यंत भयंकर कोड़े मरवाता है।

- जिस आनंद कुमार को सिंह राजा ने अत्यंत ही प्रेम से पाला-पोषा था, वही आनंद कुमार बलात्कार से पिता से राज्य छीनकर पिता को जेल में

डाल देता है, इतना ही नहीं, उनकी हत्या भी कर देता है।

जब इस लोक में भी ये संतानें शरण रूप नहीं बन सकती हो तो फिर परलोक की तो क्या बात करना ?

- आज वर्तमान में भी हम देखते हैं कि जिन माता-पिताओं ने प्रेम से अपनी संतानों का पालन किया होता है, वे ही संतानें अपने वृद्ध माता पिता को घर से बाहर निकाल देती हैं, उन्हें वृद्धाश्रमों में भेज देती हैं, जहाँ वे दयनीय स्थिति में अपना शेष जीवन पूर्ण करती है।
- ममत्व के कारण व्यक्ति अन्याय-अनीति आदि भयंकर पापाचरण द्वारा अर्थार्जन करके अपने परिवार का पालन-पोषण करता है, परन्तु मरने के बाद तो उसे अकेले ही नरक की भयंकर यातनाएँ सहन करनी पड़ती है।
- जिस चक्रवर्ती के स्त्री रत्न को पाने के लिए संभूति मुनि ने धर्म के साथ सौदा किया... उस स्त्री रत्न को प्राप्त कर भी उसे कौन सी बड़ी उपलब्धि हो गई ? आखिर चक्रवर्ती बने उस ब्रह्मदत्त को सातवीं नरक में ही जाना पड़ा न !... और उस नरक की पीडाओं को भी अकेले ही सहन करना पड़ा न !

**ममतान्ध और जात्यन्ध में काफी अंतर हैं। जन्म से जो व्यक्ति अंध हैं वह तो विद्यमान, वस्तु को नहीं देख पाता है, परन्तु ममता में अंध बना व्यक्ति तो वास्तव में जो वस्तु विद्यमान नहीं है, उसे देखता है।**

- ममता में अंध बना व्यक्ति, अपने भाव प्राणों का हरण करने वाली स्त्री को अपने प्राणों से भी अधिक मानता है।
- स्त्री के हड्डी स्वरूप दांतों में मचकुंद के पुष्पों की कल्पना करता है और श्लेष्म से भरे मुख को चंद्र की उपमा देता है।

स्त्री का देह रक्त-मांस-अस्थि-श्लेष्म और मल-मूत्र से भरा होने पर भी तीव्र ममत्व के कारण पुरुष उसके प्रति अत्यंत ही आकर्षित होता है। भीतर में गंदगी का पार नहीं, परंतु ऊपर से गौर वर्णीय चमडी के कारण पुरुष, स्त्री के प्रति आकर्षित होता है, यह सब ममत्व का ही विलास है।

- संसार में देह-जन्य जितने भी संबंध हैं, वे सब अस्थायी है। मात्र एक जन्म / जीवन तक ही टिकने वाले है, फिर भी ममता के कारण उन संबंधों को शाश्वत मानता हुआ, उन संबंधों के पीछे पागलसा हो जाता है।

□ जिनेश्वर भगवंत द्वारा निर्दिष्ट तत्वज्ञान द्वारा जगत् के यथार्थ स्वरूप का विचार किया जाय तो पता लगेगा कि जीव और जड दोनों पदार्थ एकदम भिन्न है। दोनों के गुण धर्म भिन्न है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि जीव के धर्म हैं और रूप-रस-गंध-स्पर्श आदि पुद्गल के धर्म है। जीव कभी अजीव/पुद्गल स्वरूप नहीं बन सकता और अजीव/जड पदार्थ कभी जीव में नहीं बदल सकता। परन्तु अज्ञानता-ममता-मिथ्यात्व व मोह के कारण जड पदार्थों के साथ अपना संबंध स्थापित करना चाहता है। जब कि जीवात्मा के ज्ञान चक्षु पर आवरण रहा होता है, तब तक जीवात्मा को देह व आत्मा के भेद का सम्यग् बोध नहीं होता है। परन्तु यदि ज्ञान नेत्र खुल जाय तो देह व आत्मा का सम्यग् बोध हो सकता है।

जिस प्रकार अंधेरों में डोरी में भी सर्प की भ्रांति हो जाती है, परन्तु प्रकाश के आगमन के साथ ही जैसे वह भ्रांति दूर हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा में सम्यग्ज्ञान का प्रकाश प्रगट होने के साथ ही देह व आत्मा का भेद स्पष्ट हो जाता है, और उस भेदज्ञान के साथ ही जड पदार्थों के प्रति रही ममता भी दूर हो जाती है।

ममत्व भाव की भयंकरता को समझकर जीवन में समत्व भाव की आराधना-उपासना के लिए प्रयत्न करना इसी से जीवन सफल व सार्थक बन सकेगा, जिसके परिणाम स्वरूप अपनी मृत्यु को मृत्यु महोत्सव में बदल सकोगे और क्रमशः शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त कर सकोगे।

## पात्र बनने !

सागर कभी भी मेघ अथवा नदियों से जल की प्रार्थना नहीं करता है। फिर भी मेघ, बरसकर सागर को भरता रहता है, नदियां भी आ-आकर सागर में मिलती रहती है।

बस, इसी प्रकार जो पात्र बनता है, उसके पास संपत्तियाँ खींचकर चली आती है।

पात्र बनोगे तो सारा वैभव तुम्हारे पास आकर आलोटगा। तुम्हें वैभव को पाने के लिए दौड़ धूप करने की आवश्यकता नहीं है।

यदि पात्रता नहीं है और संपत्ति प्राप्त हो गई तो वह भी लाभ के बदले नुकसान का ही काम करेगी। अयोग्य अपात्र को प्राप्त सत्ता, संपत्ति व अधिकार लाभ के बदले नुकसान का ही कारण बनते हैं।

कर्म के संपूर्ण क्षय से आत्मा में जो गुण पैदा होते हैं, वे गुण भविष्य में कभी लुप्त नहीं होते हैं, अर्थात् वे गुण शाश्वत होते हैं, जब कि कर्म के क्षयोपशम से जन्य जो कुछ भी गुण प्राप्त होते हैं, उन गुणों के चले जाने का सदैव भय रहा हुआ है। थोड़े से प्रमाद का सेवन किया जाय अथवा उन गुणों की थोड़ी सी उपेक्षा की जाय तो उन गुणों को नष्ट होने में देर नहीं लगती है।

उदाहरण के लिए - प्रतिदिन महेनत करके हजारों गाथाएं कंठस्थ की हो। श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के कारण वे गाथाएं याद भी रह गई हो...परन्तु दो चार महिनों के लिए उन गाथाओं का पुनरावर्तन नहीं किया जाय तो उन गाथाओं के विस्मरण होने में देर नहीं लगती है। सारांश यही है कि क्षयोपशम भाव जन्य गुणों के रक्षण के लिए सतत जागृति आवश्यक है। इसी कारण छद्मस्थ मुमुक्षु आत्माओं के लिए गुरुकुलवास पर खूब खूब भार दिया गया है।

1444 ग्रंथ के प्रणेता श्रीमद् हरिभद्रसूरिजी म.ने दूसरे षोडशक में कहा है -

**'गुरुपारतंत्र्यमेव च, तद् बहुमानात् सदाशयानुगतं।**

**परम गुरुप्राप्तेरिह, बीजं तस्माच्च मोक्ष इति।'** २-१०

गुरु के प्रति अंतरंग भक्ति व बहुमानपूर्वक उनके आशय विशेष को ध्यान में रखकर वर्तन करना तथा उनकी आज्ञा के अधीन रहना, यही परम गुरु अर्थात् साक्षात् परमात्मा की प्राप्ति का परम बीज है और उसी से आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति कही गई है।

वर्तमान काल में भरतक्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा केवली भगवंत अर्थात् श्रुतकेवली (चौदह पूर्वी) का योग नहीं है...फिर भगवान महावीर प्रभु के द्वारा स्थापित शासन विद्यमान है। इस काल में भी जिनवचन के प्रति पूर्णसमर्पित सद्गुरु के चरण कमल की सेवा द्वारा आत्मा मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ सकती है।

**'इस भवसागर को पार उतरने के लिए सद्गुरु ही सुदृढ नौका के समान हैं'** - यह भावना मुमुक्षु आत्मा के हृदय में दृढीभूत हो जानी चाहिये।

मुमुक्षु आत्मा का जीवन गुरुचरणों में पूर्णतया समर्पित होना चाहिये। गुरु आज्ञानुसार ही उनके जीवन की प्रत्येक क्रियाएँ होनी चाहिये।



कहा भी हैं -

**'आणाए च्चिय चरणं, तब्भंगे जाण किं न भग्गंति ।'**

आज्ञा की आराधना में ही चारित्र कहा गया है, उस आज्ञा का भंग हो जाने पर शेष क्या बचता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ।

गुर्वाज्ञा से निरपेक्ष रहकर जो कठिन तप व उत्कृष्ट चारित्र का पालन भी करते है तो भी उनके जीवन का कोई विशेष मूल्य नहीं है । गुर्वाज्ञा निरपेक्ष कठिन तप को भी मात्र काय कष्ट ही कहा गया है ।

मुमुक्षु आत्मा को गुरु के आशय को जानकर ही अपनी प्रवृत्ति करनी चाहिये । हृदय में गुरु के प्रति खूब खूब बहुमान भाव होना चाहिये । भूल से भी गुरु की आशातना न हो जाय, इसके लिए प्रतिपल जागृत रहना चाहिये । 'गुर्वाज्ञा पालन में ही मेरी आत्मा का सच्चा हित रहा हुआ है ।' इस भावना से अपनी आत्मा को खूब खूब भावित करना चाहिये ।

उपदेशमाला में कहा है ।

**'धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवासं न मुचुंति ।'**

वे शिष्य धन्यवाद के पात्र हैं जो जीवन पर्यंत गुरुकुलवास का त्याग नहीं करते है ।

मच्छली की सुरक्षा जल में रही हुई है । जल का परित्याग उसके लिए मौत का कारण बनता है, उसी प्रकार संयम की सुरक्षा गुरुकुलवास में ही रही हुई है ।

'गुरुकुलवास में अधिक साधु होने से गोचरी संबंधी दोष लगते हैं । छोटी छोटी बातों में गुरुदेव का ठपका-कटु वचन सहन करने पडते हैं । इसके बजाय तो स्वतंत्र रहने में निर्दोष भिक्षा भी मिल सकती है, और गुरु के 'कटु वचन भी सहन नहीं करने पडते हैं ।' इस प्रकार विचार कर जो गुरुकुलवास का परित्याग कर देते है, सचमुच उन्होंने जिन वचन के परमार्थ को समझा ही नहीं है ।

कदाचित् गुरुकुलवास में भिक्षा संबंधी दोष लगते हो तो उन्हें क्षंतव्य माना गया है और गुरुकुलवास के अनेक लाभ बतलाए गए है ।

'गुरुकुल वास में रहने से नए नए ज्ञान की प्राप्ति होती है, मुमुक्षु आत्मा का सम्यग् दर्शन निर्मल बनता है और वह चारित्र में भी स्थिर बनती है ।

गुरुकुलवास में रहनेवाले मुनि को ही बाल, वृद्ध, ग्लान व तपस्वी महात्मा की सेवा - वैयावच्च का लाभ प्राप्त होता है । 'शिष्य की भूल होने पर गुरु के कटु वचन उसे सुनने पडते हैं ।' परन्तु यह तो शिष्य का सद्भाग्य है क्योंकि इस प्रकार उसे अपनी भूलों को सुधारने का अमूल्य अवसर प्राप्त होता

है । गुरु के अंतःकरण में तो एक मात्र शिष्य के कल्याण की ही कामना रही हुई होती है, अतः उसे गुरु के कटु वचन भी मलयाचल पर्वत के चंदन वनों से आने वाली शीत व सुगंधी लहर की भांति ही समझने चाहिये ।

शिष्य की भूल होने पर गुरुदेव ठपका देते हैं, परन्तु उनके मन में तो वात्सल्य का ही झरना बह रहा है, अतः वह ठपका भी शिष्य के लिए एकांत हितकर ही है ।

छद्मस्थ अवस्था में गुरु की पराधीनता का सहर्ष स्वीकार करने वाले शिष्य को ही परम गुरु अर्थात् साक्षात् परमात्मा का योग प्राप्त होता है । उसके परिणाम स्वरूप वह आत्मा अल्प भवों में ही भवबंधन से सर्वथा मुक्त बन जाती है ।

गुरुकुलवास में रहनेवाले मुनि को गुरु विनय एवं गुरु की सेवा भक्ति का अवसर मिलता है ।

जरा नजर करो गौतम स्वामी पर ! वे चार ज्ञान के धारक एवं 50000 शिष्य संपदा के मालिक थे, फिर भी अपने गुरु महावीर प्रभु के प्रति कितने विनीत थे । वे सदैव प्रभु के समक्ष एक बालक की भांति रहते थे ।

इतना ही नहीं जब एक बार प्रभु ने उन्हें एक छद्मस्थ श्रावक को 'मिच्छामि दुक्कडम्' देने को कहा तो भी वे लेश मात्र नहीं हिचकिचाए और अपनी भूल के परिमार्जन के लिए प्रभु आज्ञा को तत्काल शिरोधार्य कर कामदेव श्रावक को 'मिच्छामि दुक्कडम्' देने के लिए चले गए ।

### **गुरु भगवंत का उपकार**

जगत् के प्राणी मात्र के कल्याण के लिए तारक तीर्थंकर परमात्मा धर्म-शासन (तीर्थ) की स्थापना करते हैं, परन्तु परमात्मा के वियोग में गीतार्थ आचार्य आदि गुरु भगवंत ही शासन की धुरा को वहन करते हैं अतः गुरु भगवंत ही शासन के आधार स्तंभ है ।

जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन प्रभु शासन के चरणों में समर्पित कर दिया, जो पांच महाव्रतों का पालन करते है, कंचन कामिनी के सर्वथा त्यागी होते हैं, जिनाज्ञा ही जिनका प्राण होता है । जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा के विरुद्ध जो एक शब्द मात्र का उच्चारण नहीं करते हैं । ग्रामानुग्राम पैदल परिभ्रमण कर जो भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग का उपदेश देते रहते हैं । जिनका संपूर्ण जीवन परोपकारमय होता है । जो मन वचन और काया से सदैव प्रभु आज्ञा के पालन में ही उत्साही और तत्पर रहते हैं, ऐसे तारक गुरु भगवंतों का हमारे ऊपर असीम उपकार है ।

तीर्थकर रूपी सूर्य तथा गणधर व केवली भगवंत रूपी चंद्र के अस्त हो जाने पर अमावस्या के समान घनघोर रात्रि में आचार्य आदि गुरु भगवंत ही दीपक बनकर भव्य जीवों को तीर्थकर परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट मोक्ष मार्ग का पथ प्रदर्शन कराते हैं, अतः तारक गुरु भगवंतो का हमारे ऊपर जो उपकार हैं, उसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। ऐसे उपकारी गुरु भगवंतो की जीवन पर्यंत सेवा की जाय तो भी उनके उपकार के ऋण में से मुक्त नहीं हो सकते हैं-  
पू. उपाध्यायजी म. ने ठीक ही कहा है -

**समकित्दायक गुरुतणो, पच्चुवयार न थाय ।**

**भव कोडा कोडी करी, करता सर्व उपाय ।**

अनेक उपायों द्वारा करोड़ों भवों तक समकित दाता गुरुदेव की सेवा-भक्ति की जाय तो भी उनके उपकार में से ऋण मुक्त नहीं हो सकते हैं।

ऐसे उपकारी गुरु भगवंत हमारे लिए परम आदरणीय और उपास्य होते हैं। उनका विनय बहुमान करना हमारा परम कर्तव्य होता है।

'गुरु वंदन' भी गुरु विनय का ही एक प्रकार है। अतः गुरु वंदन आदि की विधि की पूर्ण जानकारी हमें अवश्य रखनी चाहियें। जानकारी के अभाव में कई बार अज्ञानता आदि दोषों से गुरु की आशातना हो जाती है। उस आशातना से बचने के लिए यहा गुरु वंदन संबंधी विशेष जानकारी दी जा रही है।

**गुरु वंदन के प्रकार :-**

**1) फेटा वंदन :-** हाथ जोडकर मस्तक झुकाकर 'मत्थएण वंदामि' कहकर जो वंदन किया जाता है, उसे फेटा वंदन कहते है।

**2) थोभ वंदन :-** दो खमासमण देकर इच्छकार आदि बोलकर जो वंदन किया जाता है, उसे थोभ वंदन कहते है।

**3) द्वादशावर्त वंदन :-** वांदणा आदि देकर राइ मुहपत्ति की जाती हैं, उसे द्वादशावर्त वंदन कहते है।

**गुरु वंदन के आठ कारण :-** निम्नांकित कारण उपस्थित होने पर गुरु भगवंत को अवश्य वंदन करना चाहिये -

- 1) प्रतिक्रमण करने के पूर्व
- 2) गुरु भगवंत के पास से वाचना (गाथा) लेनी हो।
- 3) कायोत्सर्ग करने के पहले।
- 4) अपराध की क्षमा मांगने के पूर्व।
- 5) आगंतुक (अतिथि) साधु के आगमन पर।

6) आलोचना (प्रायश्चित) लेने के पूर्व।

7) पच्चक्खाण लेने के पूर्व।

8) अनशन करने के पूर्व अवश्य गुरु वंदन करना चाहिये।

**गुरु वंदन से लाभ :-**

1) गुरु भगवंत का विनय होता है।

2) अपना अभिमान नष्ट होता है।

3) गुरु की पूजा होती है।

4) तीर्थकर भगवंत की आज्ञा पालन का लाभ मिलता है।

5) सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है।

6) नीच गोत्र का क्षय और उच्च गोत्र का बंध होता है।

7) आठ कर्मों के बंधन शिथिल होते है।

8) अंत में सर्व कर्म के क्षय रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

**गुरु वंदन नहीं करने से नुकसान :-**

1) गुरु भगवंत का अविनय होता है।

2) अभिमान की पुष्टि होती है।

3) गुरु की अवज्ञा-आशातना-हीलना का दोष लगता है।

4) नीच गोत्र कर्म का बंध होता है।

5) धर्म की प्राप्ति दुर्लभ होती है और

6) संसार परिभ्रमण बढ जाता है।

**गुरु वंदन कब करना चाहिये ?**

1) गुरु भगवंत प्रशांत अवस्था में हो।

2) अपने आसन पर बिराजमान हो।

3) क्रोध आदि आवेगों से रहित हो।

4) 'छंदेण' आदि कहने में तत्पर हो।

**गुरुवंदन कब नहीं करना चाहिये ?**

1) गुरु भगवंत का चित्त व्यग्र हो।

2) वंदन करने वाले की ओर लक्ष्य न हो।

3) निद्रा आदि प्रमादग्रस्त हो।

4) आहार निहार के लिए जा रहे हो।

**अवग्रह :-**

अवग्रह गुरु व शिष्य आदि के बीच उचित अंतर, गुरु का अवग्रह 3½

हाथ का हैं। अर्थात् 3½ हाथ दूर रहकर गुरु भगवंत को वंदन करना चाहिये। स्वपक्ष के लिए 3½ एवं पर पक्ष (स्त्री साध्वी के लिए) 13 हाथ का अवग्रह होना चाहिये।

### कौन किसे वंदन न करें ?

1) पुत्र ने पहले दीक्षा ली हो और पिता ने बाद में दीक्षा ली हो तो भी पिता, पुत्र मुनि को वंदन न करें।

2) पुत्री ने पहले दीक्षा ली हो और माता ने बाद में दीक्षा ली हो तो भी माता साध्वी, पुत्री साध्वी को वंदन न करें।

3) बड़ा भाई दीक्षा पर्याय में छोटा हो तो भी दीक्षा पर्याय में ज्येष्ठ, छोटे भाई मुनि को वंदन न करें।

4) अपनों से लघु पर्याय वाले को वंदन न करें।

माता-पिता व बड़ा भाई आदि संसारी अवस्था में हो तो वे अपनों दीक्षित पुत्र व भाई मुनि को वंदन कर सकते हैं।

### अन्य सूचनाएँ -

1) गुरु भगवंत को प्रातः मध्याह्न व संध्या, तीनों काल वंदन करना चाहिये।

2) गुरु वंदन करते समय यह भावना करनी चाहिये कि मेरे जीवन में भी वह दिन कब आएगा, जब मैं इस संसार की माया का त्याग कर श्रमण जीवन को स्वीकार करूंगा।

3) उपाश्रय में प्रवेश के पूर्व 'निसीहि' अवश्य बोलना चाहिये और उपाश्रय में गुरु भगवंत अथवा अन्य श्रावक से संसार संबंधी बातचीत विकथा आदि नहीं करनी चाहिये।

4) गुरु वंदन करते समय उत्तरासंग (खेश) अवश्य पहिनना चाहिये।

5) सर्व प्रथम ज्येष्ठ आचार्य आदि मुख्य पदस्थ को वंदन करना चाहिये, उसके बाद क्रमशः पर्यायानुसार अन्य मुनियों को वंदन करना चाहिये।

6) गुरु भगवंत कहीं जा-आ रहे हो तो उन्हें बीच में रोककर कभी वंदन नहीं करना चाहिये।

7) गुरु भगवंत विहार आदि से आने के कारण श्रमित हो तब भी वंदन नहीं करना चाहिये। वे अपने योग्य आसन पर पदासीन हो जाय तभी वंदन करना चाहिये।

8) रात्रि में वंदन नहीं किया जाता है। रात्रि में गुरु भगवंत के पास आने पर 'मत्थण वंदामि' कहना चाहिये और रात्रि प्रतिक्रमण आदि के बाद जाते समय 'त्रिकाल वंदना' कहना चाहिये।

9) गुरु भगवंत का योग न हो तो भी गुरु मूर्ति अथवा अभिषेकयुक्त गुरु भगवंत के फोटों को नित्य वंदन करना चाहिये।

संज्ञा अर्थात् कर्म के उदय अथवा क्षयोपशम से होने वाला अनुभव ! मुख्यतया चार संज्ञाएँ कहलाती हैं आहार, भय, परिग्रह और मैथुन ! अशाता (क्षुधा) वेदनीय के उदय से आहार संज्ञा, भयमोहनीय कर्म के उदय से भय संज्ञा, स्त्रीवेद आदि मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन संज्ञा व लोभ मोहनीय कर्म के उदय से परिग्रह संज्ञा पैदा होती है ।

इन चारों के सिवाय भी अन्य संज्ञाएँ हैं ।

क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय तथा ओघसंज्ञा व लोकसंज्ञा के मिलने पर 10 संज्ञाएँ होती हैं ।

- किसी पर कोप करना क्रोध संज्ञा है ।

- प्राप्त वस्तु का अभिमान करना मान संज्ञा है ।

- धन आदि पाने के लिए छल कपट करना माया संज्ञा है ।

- अधिकाधिक धन प्राप्ति की लालसा लोभ संज्ञा है ।

- ओघ संज्ञा - पूर्व जन्म के संस्कार व सामान्य बोध से जो प्रवृत्ति होती है, उसे ओघ संज्ञा कहते हैं । जैसे - जन्मा हुआ बालक बिना किसी प्रशिक्षण के स्तनपान करता है, लताएँ भूमि को छोड़कर वृक्ष या दिवाल पर ऊपर चढती है ।

इन 10 में मोहसंज्ञा, धर्मसंज्ञा, सुख संज्ञा, दुःख संज्ञा, जुगुप्सा संज्ञा व शोक संज्ञा के मिलने पर 16 संज्ञाएँ भी होती हैं ।

दंडक प्रकरण में अन्य तीन संज्ञाओं का भी वर्णन आता है -

**1) हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा :-** मात्र वर्तमान कालीन इष्ट-अनिष्ट विषय में प्रवृत्ति-निवृत्ति करानेवाले बोध को हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा कहते हैं । भूत और भविष्य के परिणाम का कुछ भी विचार किए बिना मात्र वर्तमान के दुःख को दूर करने की इच्छा और वर्तमानकालीन सुख को पाने की लालसा ।

हेतुवाद अर्थात् वर्तमानकालीन पौद्गलिक इष्ट-अनिष्ट का ही जिसमें उपदेश है उसे हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा कहते हैं । यह संज्ञा एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय व असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को हीती है ।

**2) दीर्घकालिकी संज्ञा :-** भूत और भविष्य काल का विचार जिसमें हो उसे दीर्घकालिकी संज्ञा कहते हैं, यह संज्ञा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को होती है ।

**3) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा :-** सम्यग्दृष्टि या विशिष्ट दृष्टिवाद श्रुतधर का मोक्षोपयोगी हेय-उपादेय ज्ञान को दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कहते हैं ।

मिथ्यात्व व अज्ञानतादि दोषों के कारण यह आत्मा अनादिकाल से आहार आदि संज्ञाओं के अधीन बनी हुई है । सम्यग् बोध, सदगुरु सानिध्य और आत्म जागृति के अभाव में इन संज्ञाओं से बचना अत्यंत ही कठिन कार्य है ।

यद्यपि मोक्ष मार्ग की साधना में ये सभी संज्ञाएँ प्रतिबंधक हैं, अतः उन सब पर विजय पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये, फिर भी भावश्रावक के 7वें गुण के रूप में 'लोकसंज्ञा त्याग' गुण होने से प्रस्तुत में उसी विषय का विचार किया जा रहा है ।

**लोकसंज्ञा** अर्थात् बहुत से लोग जिस प्रकार के धर्म का आचरण करते हो उसी प्रकार के धर्म का आचरण हमें भी करना चाहिये । विधि-अविधि और योग्यता-अयोग्यता का परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है ।

जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा क्या है ? अथवा जिनेश्वर भगवंतो के शास्त्र की क्या आज्ञा है ? इन सब बातों की उपेक्षा कर सिर्फ लोक प्रवाह के अनुसार प्रवृत्ति करना, लोक संज्ञा का ही परिणाम है ।

जिस प्रकार एक अज्ञानी बालक बोर जैसे तुच्छ फल के लोभ में चिंतामणि रत्न को भी गंवा देता है, उसी प्रकार लोक रंजन के लोभ में साधक आत्मा, अपने आत्म हित की साधना को खो देती है ।

बहती नदी के प्रवाह की दिशा में बहने में कोई विशेषता नहीं है, प्रवाह के प्रतिकूल दिशा में आगे बढ़ने में कठिनाई होती है ।

मोह और अज्ञानता के जोर के कारण सारी दुनियाँ भौतिक प्रवाह में बह रही है, तथाकथित साधक भी लोक प्रवाह के अनुसार कार्य करने की फरमाईश करते हैं । युक्ति मार्ग साधक आत्मा तो राजहंस के समान होती है, हंस तो मोती को चुगता है, वह कभी भी घास में अपना मुंह नहीं डालता है, उसी प्रकार साधक आत्मा को लोक प्रवाह की परवाह नहीं होती है । मेरी साधना को देखकर लोक क्या कहेंगे ? इसकी परवाह साधक आत्मा को नहीं होती है ।

बहुमती के आधार पर यदि धर्म की सत्यता का स्वीकार किया जाय, तब तो मिथ्याधर्म ही प्रधान हो जाएगा, क्योंकि जगत् में हमेशा के लिए मिथ्यादृष्टियों की ही बहुलता होती है, सम्यग्दृष्टि तो कम ही होते हैं ।

'अधिकांश लोग जिस मार्ग का अनुसरण करे, उस मार्ग का अनुसरण करना चाहिये' यह मान्यता अज्ञानमूलक ही है । भगवान महावीर के समय में भी भगवान के 14000 ही शिष्य थे जबकि मिथ्यादृष्टि गोशालक के लाखों

अनुयायी थे ।

जिस प्रकार दुनिया में शाक-सब्जी के व्यापारी अत्यधिक प्रमाण में होते हैं किंतु रत्नों के व्यापारी थोड़े ही होते हैं, उसी प्रकार लोकोत्तर मार्ग में आत्म कल्याण की इच्छुक आत्माएं विरल ही होती हैं ।

कई साधक आत्माएं भी लोकसंज्ञा, लोक प्रशंसा के जाल में आबाद फंस जाती हैं ।

'मेरे तप की दुनिया में प्रशंसा हो । मेरे दान धर्म की सर्वत्र प्रशंसा हो । सर्वत्र मेरी विद्वत्ता की प्रशंसा हो ।' इत्यादि लोक प्रशंसा की भूख बढ़ने से साधक आत्मा, अन्तर्मुखी मिटकर बहिर्मुख बन जाती है ।

लोकसंज्ञा के अधीन बनी आत्मा दंभ का भी सेवन करने लग जाती है । जिस प्रकार हाथी के दांत दिखाने के अलग होते हैं और चबाने के अलग होते हैं । उसी प्रकार जिस हृदय में लोक प्रशंसा की भूख रही हुई है, वह आत्मा, बाह्य तप का आचरण भी दिखावे के लिए ही करती है ।

लोक प्रशंसा की जाल में फंसी हुई आत्मा मोक्ष मार्ग की आराधना को भूल जाती है, आत्मा के लक्ष्य से च्युत हो जाती है ।

**आत्मभान न चूके :-**

श्री महानिशीय सूत्र में कहा है 'धम्मो अप्पसक्खिओ ।' धर्म तो आत्मसाक्षिक हैं, वहां लोकसाक्षी की कोई जरूरत नहीं है ।

पू. महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म. ने भी ठीक ही कहा है -

**आतम साखे धर्म जे, तिहां जननुं शुं काम ?**

**जनमन रंजन धर्मनुं, मूल न एक बदाम !**

सत्य धर्म की आराधना में लोक साक्षी की क्या जरूरत है ? आप एकांत में बैठकर भी सच्चे धर्म की आराधना करते हैं तो उस धर्म की आराधना का आपको लाभ मिलता ही है ।

श्री भरत महाराजा बाह्य दृष्टि से आरंभ-समारंभ से युक्त, महापरिग्रही और संसार रसिक दिखाई देते थे, परंतु अंतर से तो वे पूर्णतया निर्लेप ही थे । इसी निर्लेपता के कारण वे छ खंड के अधिपति होने पर भी आरिसा भवन में अंगुली में से अंगुठी के गिरने की सामान्य क्रिया में से ही क्षपक श्रेणी पर आरूढ हो गए और सर्वघाति कर्मों के बंधन में से मुक्त बनकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गए ।

श्री प्रसन्नचन्द्र राजर्षि श्मशान भूमि में मध्याह्न समय में सूर्य के सामने एक पैर पर खड़े रहकर कायोत्सर्ग की साधना कर रहे थे । श्री श्रेणिक

महाराजा ने जब इन महात्मा के दर्शन किए तब वे उनकी बाह्य कठोर साधना को देखकर नतमस्तक हो गए...परंतु वास्तव में तो वे उस समय दुर्ध्यानग्रस्त थे । बाहर से उच्च कोटि के साधक होते हुए भी अंदर से तो रौद्र ध्यान में ही डूबे हुए थे ।...उस रौद्रध्यान के कारण बाहर से आराधक दिखाई देने पर भी अंदर से तो विराधक भाव में ही थे ।

इससे स्पष्ट हैं कि बाह्य आचार या बाह्य परिवेष के आधार पर किसी को साधक या विराधक नहीं कह सकते हैं । भरत महाराजा बाह्य दृष्टि से संसार में डूबे हुए थे, फिर भी वे साधक थे, जब कि प्रसन्नचन्द्र राजर्षि साधक अवस्था में थे, फिर भी अंदर से द्वेषाधीन हो जाने के कारण भयंकर अशुभ कर्म का बंध कर रहे थे ।

सवाल बाह्य साधना का नहीं किंतु अंतरंग परिणति का है । साधक का परिवेष होने पर भी यदि मन, संक्लेश ग्रस्त हो तो वह साधक अशुभ कर्मों का ही बंध करता है ।

लोक संज्ञा का त्याग करने वाला ही साधक, पर ब्रह्म की समाधि में लीन बन सकता है ।

## ❖ डेट होशियार ❖

निरभिमानी अज्ञानी को समझाना सरल है और ज्ञानी को समझाना सरल है, परन्तु जो जानता कुछ नहीं है और जानने का अभिमान करता है, ऐसे डेट होशियार को समझाना कठिन है ।

दुनिया में कुछ लोग डेट होशियार होते हैं, वे किसी की बात को, ...किसी की सलाह को सुनना पसंद नहीं करते हैं, वे तो अपने आपको ही बुद्धि के बेताज बादशाह मानते हैं, इस कारण उन्हें समझाना अत्यंत ही कठिन कार्य है । क्योंकि ऐसे लोग कुछ भी समझने के लिए तैयार ही नहीं होते हैं । वे तो सब जगह अपनी ही मनमानी करते रहते हैं । ऐसे व्यक्ति की तो उपेक्षा करना ही उचित है । डेट होशियार को समझाने में सिर्फ समय व शक्ति का व्यय ही होने वाला है ।

## (सिद्धांत-निष्ठा)

दुनिया में दृश्यमान प्राणि-सृष्टि को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं

1) संज्ञा प्रधान 2) प्रज्ञा प्रधान 3) आज्ञा प्रधान ।

**1) संज्ञा प्रधान :** एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय आदि जीवों की चेष्टाएं **संज्ञा प्रधान** होती है ।

वृक्ष की जड़े पानी वाले भू भाग की ओर शीघ्र आगे बढ़ती है ।

छुईमुई पौधे के पत्तों का स्पर्श करने पर वे पत्ते भय संज्ञा के कारण संकुचित हो जाते हैं ।

जमीन में धन गड़ा हुआ हो, उस भू भाग पर कई वनस्पतियाँ अपनी जड़ें व पत्तें फैला देती है ।

वनस्पति में शब्द ग्रहण की शक्ति भी पाई जाती है, कंदल आदि वनस्पतियाँ मेघ गर्जना और सुमधुर संगीत से विशेष पल्लवित होती है ।

वनस्पति में रोग भी पैदा होते हैं, औषधोपचार द्वारा वे रोग दूर भी हो जाते हैं ।

जहरीली दवाई छान्टने पर कई वनस्पतियाँ समाप्त हो जाती है ।

वनस्पति में मैथुन संज्ञा भी पाई जाती हैं, अशोक, फणस, तिलक, आदि वृक्ष सालंकार नवयौवना स्त्री के पादप्रहार से बढ़ते हैं ।

आहार संज्ञा के कारण ही चिंटी आदि आहार की दिशा में शीघ्र आगे बढ़ती है ।

**2) प्रज्ञा प्रधान :-** अधिकांश संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य आदि अपनी प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि के अनुसार प्रवृत्ति करते हैं, जिनाज्ञा के अनुसार नहीं । अपनी बुद्धि में जो बात बैठ जाय, उसके अनुसार प्रवृत्ति और निवृत्ति करते रहते हैं । दुनिया में ऐसे बुद्धिजीवी मनुष्य बहुत हैं, वे धर्म के विषय में, चक्षु अगोचर पदार्थों के विषय में अपनी बुद्धि के अनुसार चलने वाले होते हैं । जिन वचन पर श्रद्धा व आस्था के अभाव के कारण वे धर्म के विषय में अनेक प्रकार के कुतर्क पैदा करते हैं ।

कंदमूल को काटते हैं, परन्तु उसमें कही जीव तो दिखाई नहीं देते हैं ।

प्राचीन काल में इलेक्ट्रिक लाइटें नहीं थी, अतः रात को दिखता नहीं

था, उस काल में रात्रि भोजन का त्याग उचित था, किंतु आज तो ट्यूब लाइट का जमाना है । बटन दबाते ही चारों ओर प्रकाश-प्रकाश फैल जाता है, फिर रात्रि भोजन करने में क्या आपत्ति है ?

बुद्धिजीवी प्रश्न करता है 'फागुण सुद 13 को भाजीपाला भक्ष्य और एक दिन बाद उसे अभक्ष्य कहना यह कैसा न्याय है ?

'पुण्य और पाप का फल यही मिलता है...स्वर्ग और नरक भी यहीं हैं, क्योंकि न तो स्वर्ग के देव कहीं दिखाई देते हैं और न ही नरक के जीव ! अतः स्वर्ग भी यही हैं और नरक भी यहीं हैं '

यह हैं बुद्धिजीवी की मान्यता !

मरने के बाद यह आत्मा परलोक में जाती हैं और नया जन्म धारण करती है, यह किसने देखा है ? वास्तव में इस जन्म को छोड़ न तो स्वर्ग हैं और न नरक !

कच्चे पानी में कोई जीव तो दिखाई नहीं देता हैं, अतः उसमें असंख्य जीवों की कल्पना करना, अज्ञानता का ही प्रदर्शन है ।

ये सब बुद्धिजीवियों की बुद्धि के प्रदर्शन है ।

**3) आज्ञा प्रधान जीव :-**

महान् पुण्योदय से मानव भव की प्राप्ति होती है और उसमें भी सर्वज्ञ परमात्मा के शासन की प्राप्ति तो अत्यंत ही दुर्लभ है । बाह्य दृष्टि से सर्वज्ञ शासन की प्राप्ति होने पर भी सर्वज्ञ कथित शास्त्र सिद्धांत पर पूर्ण श्रद्धा पैदा होना अत्यंत ही कठिन है ।

मुक्तिमार्ग के साधक मुनि भगवंत एवं भावश्रावक के लिए तो शास्त्र ही चक्षु है, उसी के आधार पर उसे मोक्षमार्ग में आगे कदम उठाना है ।

इस विराट् विश्व में अनेक धर्म प्रचलित हैं, उन धर्मों के प्रणेता भी भिन्न भिन्न हैं । मोक्ष और मोक्ष मार्ग के नाम पर भी अनेक भिन्न भिन्न मान्यताएँ प्रचलित हैं । उन सब में किसको सत्य मानना और किसको असत्य मानना, यह महत्त्व का प्रश्न है ।

इसका समाधान यही है कि जो सर्वज्ञ कथित शास्त्र सिद्धांत हो, उसे सत्य के रूप में स्वीकार करना ।

**प्रश्न - क्या सभी शास्त्र सर्वज्ञ विरचित हैं ?**

उत्तर : नहीं ! सभी शास्त्र सर्वज्ञ रचित नहीं हैं ।

## तो फिर उन्हें प्रमाणभूत कैसे माना जाय ?

उत्तर : सर्वज्ञ कथित मोक्षमार्ग का अनुसरण करने वाले परमज्ञानी, परमगीतार्थ भवभीरु आचार्यों के द्वारा निर्दिष्ट ग्रंथ भी प्रमाणभूत ही हैं, क्योंकि उन्होंने उन ग्रंथों और शास्त्रों की रचना परमात्मा के वचनों को नजर समझ रखकर ही भवभीरु और मुमुक्षु आत्माओं के हित के लिए की हैं, अतः पूर्वाचार्य गीतार्थ गुरु भगवंतो के द्वारा विरचित ग्रंथ भी उतने ही प्रामाणिक माने जाते हैं।

सिद्ध भगवंत केवलज्ञान रूपी चक्षु द्वारा जगत् के स्वरूप को यथार्थ रूप से जानते हैं। देवता गण अवधिज्ञान रूपी चक्षु द्वारा जगत् को देखते हैं, सामान्य मानवी चर्म चक्षु से जगत् को देखता हैं जबकि मोक्षमार्ग साधक आत्मा के लिए तो शास्त्र ही एक मात्र चक्षु हैं।

मुनि भगवंतो के लिए प्रतिदिन 5 प्रहर तक स्वाध्याय करने की आज्ञा है। सतत स्वाध्याय बिना शास्त्र के गर्भित रहस्यों को समझना अत्यंत ही कठिन कार्य है।

साधक आत्मा शास्त्र रूपी चक्षु से ऊर्ध्व, अधो और तिच्छर्ण लोक में रहे पदार्थों के पर्यायों को प्रत्यक्ष जान सकते हैं।

यह संपूर्ण विश्व षड् द्रव्यात्मक हैं। प्रति समय उन द्रव्यों के पर्याय बदलते रहते हैं। चर्मचक्षुवाला इस विराट् दुनिया के एक अंश मात्र को ही प्रत्यक्ष देख सकता हैं, जब कि शास्त्रों के आधार पर जगत् के स्वरूप को प्रत्यक्ष जाना जा सकता है।

जिनेश्वर भगवंत के वचनों के प्रति अनन्य श्रद्धा भाव धारण करने से मोक्ष मार्ग में आत्मा का विकास तीव्रगति से हो सकता है।

पू. हरिभद्रसूरिश्वरजी म. ने षोडशक ग्रंथ में कहा हैं -

**अस्मिन् हृदयस्थे सति, हृदयस्थस्तत्वतो मुनीन्द्र इति ।**

**हृदयस्थिते च तस्मिन् नियमात् सर्वार्थ संसिद्धिः''**

**अर्थ :-** तीर्थंकर भगवंत द्वारा निर्दिष्ट आगम या आज्ञा हृदय में होने पर, वास्तव में तीर्थंकर परमात्मा ही हृदय में है। क्योंकि उस आगम या आज्ञा के प्रणेता तीर्थंकर परमात्मा ही हैं। उस आज्ञा के हृदय में होने पर अवश्य ही सर्व अर्थ की सिद्धि होती है।

लोकोत्तर ऐसे जैन शासन में समस्त क्रिया व अनुष्ठान में 'जिनाज्ञा' की ही प्रधानता है। 'जिनाज्ञा' की उपेक्षा कर यदि कोई उग्र तप भी करे तो भी

वह तप सिर्फ काय कष्ट ही कहलाता है।

आगम का बहुमान, वास्तव में तीर्थंकर परमात्मा का ही बहुमान है।' अतः भगवद् भक्ति के अभिलाषी को हमेशा जिनवचन के परमार्थ को समझने का सदैव प्रयास करना चाहिये।

जो पदार्थ इन्द्रियों से अगोचर हैं, ऐसे आत्मा, परमात्मा पुण्य-पाप, कर्म, परलोक, स्वर्ग, नरक आदि पदार्थोंके विषय में जिन वचन को ही प्रधानता देनी चाहिये।

वो ही सत्य और शंका रहित हैं, जो जिनेश्वर भगवंत के द्वारा कहा गया है। ऐसी दृढ श्रद्धा साधक आत्मा में अवश्य होनी चाहिये। इस प्रकार की दृढ श्रद्धा के अभाव में आत्मा, मुक्ति मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकती है।

शास्त्रों के आधार पर हमें प्रत्यक्ष और परोक्ष पदार्थों के वास्तविक स्वरूप का भान होता है। अतः शास्त्र अध्ययन में खूब प्रयत्नशील रहना चाहिये।

जो हृदय में जिन प्रणीत आगम ग्रंथों के प्रति आदर बहुमान नहीं है, उस व्यक्ति की सभी धर्मक्रियाएँ भी निष्फल है।

जिस प्रकार जल से वस्त्र का मेल दूर होता है, उसी प्रकार शास्त्र से अंतःकरण शुद्ध बनता है।

## **श्रावक का मुख्य कर्तव्य - नियमित शास्त्र श्रवण**

आदर व बहुमान पूर्वक जिन वचन का नियमित श्रवण करने वाला 'श्रावक' कहलाता है। नियमित शास्त्रश्रवण से श्रावक भी प्रवचनदक्ष बन जाता है। नियमित शास्त्र श्रवण से सूत्र और अर्थ, ज्ञान और क्रिया, निश्चय और व्यवहार, उत्सर्ग और अपवाद तथा देश और काल के संबंध में यथार्थ बोध हो जाता है।

तत्त्वार्थाधिगम भाष्य की संबंधकारिका में श्रीमद् उमास्वाति जी. म. ने कहा है -

**'न भवति धर्म श्रोतुः सर्वस्यैकान्ततो हितश्रवणात् ।**

**बुवतोनुग्रह-बुद्धया वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ॥'**

शास्त्र का श्रवण करने पर भी श्रोताओं को एकांत लाभ होता है, ऐसा जरूरी नहीं है, किंतु जो अनुग्रह बुद्धि से धर्म का उपदेश देता हैं, उस धर्मोपदेशक को तो अवश्य लाभ होता है। अतः धर्मोपदेशकों का यह परम

कर्तव्य हैं कि वे एक मात्र परोपकार की बुद्धि से श्रोताओं को जिन वचन का उपदेश सुनाते रहे ।

जिन वचन के हितोपदेश में कहीं पर स्वार्थ की दुर्गाध नहीं होनी चाहिये ।

### **जिन भक्ति भी जिनाज्ञा पालन के लिए हो**

कई पुण्यशाली आत्माएँ हजारों लाखों रुपियों का खर्च करके प्रभु की अपूर्व कोटि की भक्ति करते हैं । उस प्रभु भक्ति के पीछे भी प्रभु की आज्ञा पालन का ध्यय होना चाहिये ।

जगत् के प्राणी मात्र को अभयदान प्रदान करना, यह प्रभु की प्रधान आज्ञा है । मुनि भगवंत उस आज्ञा का अखंडरूप से पालन करते हैं । अतः प्रभु की भक्ति करते समय अपने अन्तर्मन में यह भाव सतत रहना चाहिये कि 'इस भक्ति के प्रभाव से मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो, जिसके फलस्वरूप मैं भी इस जीवन में सर्वविरति धर्म को पाने के लिए समर्थ बनूँ ।'

सच्चे दिल से की गई प्रभु की यह प्रार्थना अवश्य फलीभूत होती है ।

जिनागमों के प्रति अपने हृदय में रहे अपूर्व बहुमान भाव को व्यक्त करते हुए श्रीमद् हरिभद्रसूरि जी म. ने कहा है -

**कथं अम्हारिसा पाणा, दुसमकाल दुसिया ।**

**हा अणाहा कहं हुंतो, जइ न हुंतो जिणागमो ।**

**अर्थ:-** दूषमकाल से दूषित इस पंचमकाल में यदि मुझे जिन आगमों की प्राप्ति नहीं होती तो हमारे जैसे अनार्थों की क्या हालत होती ?

प्रकांड विद्वान् प्रौढ प्रतिभासंपन्न सूरि पुरंदर श्रीमद् हरिभद्रसूरिजी म. जिनागमों की प्राप्ति में अपनी सनाथता के दर्शन कर रहे हैं ।

### **श्रुत भक्त आत्माएँ**

- \* श्रुतधर महर्षि श्रीमद् उमास्वाति जी म. ने अपने जीवनकाल दरम्यान 500 ग्रंथों का सर्जन किया था ।
- \* सूरि पुरंदर श्रीमद् हरिभद्रसूरिजी म. सा ने अपने जीवनकाल दरम्यान 1444 धर्मग्रंथों का सर्जन किया था ।
- \* कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हमेचंद्रसूरिजी म. ने अपने जीवन में 3½ करोड़ श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत धर्मग्रंथों का सर्जन किया था ।

\* कलिकाल में श्रुतकेवली समान उपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म. ने अपने जीवन में सैंकड़ों विद्वद्भोग्य संस्कृत ग्रंथों का तथा बालभोग्य शैली में गुर्जर साहित्य का सर्जन किया था ।

\* कुमारपाल महाराज ने अपने जीवनकाल दरम्यान 21 ज्ञान भंडारों की स्थापना की थी । श्रुतभक्त कुमारपाल ने 70 वर्ष की उम्र में सिद्धहैम व्याकरण का अभ्यास कर संस्कृत भाषा पर प्रभुत्व पाया था, परिणाम स्वरूप उन्होंने संस्कृत भाषा में प्रभु स्तुतियों का सर्जन किया था ।

\* महामंत्री वस्तुपाल और तेजपाल ने लाखों रु. का सद्ब्यय कर पाटण, खंभात और धोलका में विशाल ज्ञान भंडारों का निर्माण किया था ।

\* मांडवगढ के महामंत्री ने गुरु भगवंत के श्रीमुख से भगवती सूत्र का श्रवण किया था और जब जब भगवती सूत्र में **गोयम** शब्द आता था, तब तब वे सुवर्ण मुद्रा द्वारा श्रुत की पूजा करते थे, इस प्रकार 36000 सुवर्ण मुद्राओं से पूजन कर भगवती सूत्र का श्रवण किया था ।

वर्तमान में भी प्राचीन हस्तलिखित ताडपत्र आदि ग्रंथों के अनेक ज्ञानभंडार जैसलमेर, अहमदाबाद, पाटण, खंभात आदि में विद्यमान हैं ।

सद्भावपूर्वक श्रुतज्ञानकी की गई भक्ति केवलज्ञान प्रदान करने में समर्थ है ।

### **मन की महत्ता**

जीवनना आ कुरु क्षेत्रमां, पल पलना संग्राम !

तू कौरव ! तू पांडव मनवा ! तू रावण ! तू राम !

- मन की गति बड़ी विचित्र है, वह कभी आत्मा को सद्गति में ले जाता है तो कभी दुर्गति के गर्त में धकेल देता है ।
- मन चंचल है किंतु सतत अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है ।
- मन जब साथ देता है, तभी इन्द्रियाँ पाप में प्रवृत्त होती हैं ।
- मन का सहयोग न हो तो ये इन्द्रियाँ पाप करने में समर्थ नहीं हैं ।



अनादिकाल से आत्मा में चार संज्ञाएं रही हुई है ।

1) आहार संज्ञा 2) भय संज्ञा 3) मैथुन संज्ञा 4) परिग्रह संज्ञा ।

इन चार संज्ञाओं की आसक्तियों को तोड़ने के लिए जिनेश्वर भगवंतने चार प्रकार के धर्म बतलाए हैं 1) दान धर्म 2) शील धर्म 3) तप धर्म और 4) भाव धर्म ।

- आहार की आसक्ति को तोड़ने के लिए **तप धर्म** है ।
- भय संज्ञा से मुक्त बनने के लिए **भाव धर्म** है ।
- मैथुन की आसक्ति खत्म करने के लिए **शील धर्म** है और
- परिग्रह की संज्ञा को तोड़ने के लिए **दान धर्म** बतलाया है ।

इससे स्पष्ट हैं कि दान धर्म का मुख्य उद्देश्य है आत्मा में अनादिकाल से घर कर गई परिग्रह की आसक्ति को तोड़ना । उस आसक्ति को तोड़ने के लिए ही दान धर्म है । यदि दान के साथ धन की आसक्ति को तोड़ने का उद्देश्य नहीं है तो वह दान, वास्तविक दान नहीं है ।

यश, कीर्ति व नाम की लालसा से किया गया दान वास्तविक दान नहीं है । कीर्ति आदि की लालसाओं से दिए गए दान से यश और कीर्ति भले ही प्राप्त हो जाय, परन्तु उस दान से भवमुक्ति तो कदापि नहीं हो सकती है ।

दान का सामान्य अर्थ देना है, परन्तु जब वह विधि के पालन पूर्वक धन की आसक्ति को तोड़ने के उद्देश्य से सुपात्र में दिया जाता है, तब वह दान, मोक्ष का साधन बनता है ।

धर्म का प्रारंभ दान से ही होता है । कहा भी हैं '**धर्मस्य आदिपदं दानं**' धर्म की प्रथम सीढ़ी दान है ।

दान में दूर रही वस्तु का त्याग करने का है । कोई भी व्यक्ति अपना सब धन चौबीस घंटे साथ में नहीं रखता है । धन तिजोरी आदि में पडा होता है । अतः उसकी आसक्ति को तोड़ना तो भी सरल है । दान से भी शील धर्म का पालन कठिन है, क्योंकि शील में इन्द्रियों के सुखों की आसक्ति को तोड़ने का है । धन को छोड़ना सरल हैं किंतु इन्द्रियों के सुखों को छोड़ना कठिन है ।

शील से भी तप धर्म कठिन हैं, क्योंकि तप में शरीर के सुखों का त्याग रहा हुआ है । तप का सीधा प्रभाव शरीर पर पडता है । तप से भी भाव धर्म कठिन हैं, क्योंकि भाव का सीधा संबंध मन के साथ है । मन की आसक्तियों को तोड़ना भाव धर्म हैं, जो और भी कठिन है ।

गृहस्थ के लिए द्रव्य दान की प्रधानता हैं, क्योंकि वह धन के बीच रहा हुआ है । साधुओं के लिए द्रव्य दान का निषेध हैं, क्योंकि दीक्षा लेने के साथ ही उन्होंने धन का सर्वथा त्याग कर दिया हैं ।

सद्गृहस्थ को प्रतिदिन दान देना चाहियें । कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी ने कहा भी है ।

**'यः सद् बाह्यमनित्यं च क्षेत्रेषु न धनं वपेत् ।  
कथं वराकश्चारित्रं, दुश्चरं स समाचरेत् ॥'**

जो व्यक्ति अपने पास में विद्यमान, बाह्य और अनित्य धन का सात क्षेत्रों में वपन नहीं करता हैं, वह बिचारा कठिन चारित्र का पालन कैसे कर पाएगा ?

जो धन की आसक्ति नहीं छोड़ सकता, वह शरीर की आसक्ति कैसे छोड़ पाएगा ?

## कृपणता दुर्गुण है

सामान्यतया मनुष्य के 10 प्राण कहे गए हैं, परन्तु कृपण व्यक्ति के लिए धन 11 वां प्राण होता है । कृपण व्यक्ति को तो धन प्राणों से भी अधिक प्यारा होता है । वह धन को बचाने के लिए अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करता है ।

कृपण व्यक्ति जीवन पर्यंत धन के संरक्षण में डूबा रहता है । कृपण व्यक्ति को कितना ही धन मिल जाय, वह धन उसे कम ही लगता है । वह धन को बढ़ाने के लिए हिंसा, झूठ, चोरी, अन्याय, अनीति व बेईमानी आदि सभी पाप करने के लिए तैयार हो जाता है । इस प्रकार पापाचरण कर इतना धन इकट्ठा करने पर भी वह धन उसे मौत से बचा नहीं सकता है । ठीक ही कहा हैं

**पिपीलिकार्जितं धान्यं, मक्षिकासंचितं मधु ।  
कृपणेनार्जितं द्रव्यं, परैरेवोपभुज्यते ॥**

चींटियों के द्वारा इकट्ठा किया हुआ मधु और कृपण के द्वारा इकट्ठा किया गया द्रव्य दूसरों के द्वारा ही खाया जाता है ।

कृपण व्यक्ति के लिए व्यंग में कहा गया है कि उसके जैसा दानवीर

अन्य कोई नहीं है, क्योंकि वह अपने खुद के उपभोग में कुछ भी लिए बिना सब कुछ दूसरों के लिए ही छोड़कर मर जाता है।

### **कृपण धन का मालिक नहीं, चोकीदार हैं**

धन का सच्चा मालिक वही कहलाता है, जो अपनी इच्छानुसार धन का सही उपयोग कर सकता है...परंतु जो मात्र प्रतिदिन तिजोरी की नोट ही गिनता रहता है, वह धन का मालिक नहीं किंतु धन का चोकीदार ही कहलाता है। अरे ! रात्रि में बैंक की रक्षा करने वाले चोकीदार को तो कुछ वेतन भी मिलता है, जब कि कृपण व्यक्ति तो मुफ्त में धन की चौकी करता है।

### **कृपण व्यक्ति दान नहीं कर सकता**

जिस प्रकार कामी व्यक्ति के लिए शील का पालन कठिन है, उसी प्रकार कृपण व्यक्ति के लिए दान देना अत्यंत ही दुष्कर कार्य है।

\*कृपण सेठ दुकान पर बैठे हुए थे। भिखारी ने कहा, 'सेठजी ! दो दिन से भूखा हूँ, कुछ खाने को दीजिए।'

सेठ ने कहा, 'यहां खाने के लिए कुछ नहीं है।'

भिखारी ने कहा, 'ठंडी से कांप रहा हूँ, आप फटा पुराना कोई कपडा दे दीजिए।'

सेठ ने कहा, 'यहां कपडा भी नहीं है।'

भिखारी ने कहा, 'सेठजी एक रुपया दे दीजिए, मैं कही से अपना पेट भर लूंगा।'

सेठ ने कहा, 'रुपया भी नहीं है।'

सेठ के इस जवाब को सुनकर भिखारी गिडगिडाया, 'सेठ जी ! आपके पास भी कुछ नहीं है तो आप मेरे साथ चलिए ! एक से दो भले। हम दोनों साथ में भीख मांगेंगे।'

ऐसी स्थिति होती है कृपण व्यक्तियों की।

गाय हमेशा दूध देती रहती है, परन्तु उसका दूध घटता नहीं है। वृक्ष पर नित्य फल-फूल तोड़े जाते हैं और फिर नए पैदा हो जाते हैं। कुएँ में से नित्य पानी निकाला जाता है और वह पुनः बढ जाता है, इसी प्रकार दान देने से लक्ष्मी घटती नहीं है, बल्कि बढती ही है।

□ एक कृपण व्यक्ति ने सोचा एक मास बाद पुत्री की शादी है, मेरी गाय रोज 2 लीटर दूध देती है तो क्यों नहीं एक महिने के बाद ही गाय को

दोहूँ ताकि मुझे 60 लीटर दूध मिल जाएगा। इस आशा से उसने गाय को दुहना बंद कर दिया। परन्तु एक महिने बाद जब उसने गाय को दुहा तो उसे कुछ नहीं मिला।

कुएँ में भी पानी पडा रहे तो नया आना बंद हो जाता है, बस, इसी प्रकार दान से धन का क्षय नहीं होता है, बल्कि धन बढता ही रहता है।

कहा भी है 'दानं दारिद्र्य नाशनम्' दान दारिद्र्य को नष्ट करता है। जो दान देता रहता है, उसके वहां लक्ष्मी स्थिर हो जाती है।

धन को ब्याज पर दिया जाय तो 5-7 वर्ष में वह दुगुना हो जाता है, उसी धन को व्यापार में लगाया जाय तो 5-7 वर्ष में चार छ गुणा हो जाता है और उसी धन को खेती में लगाया जाय तो 100 गुणा हो जाता है। जबकि उसी धन का सुपात्र में वपन करने से अनंत गुणा हो जाता है।

### **जो दान में दिया, वही सच्ची संपत्ति है**

आपकी सच्ची संपत्ति वो ही है, जो आपने दान में दी है। आपके पास 5 करोड रु. हैं, किंतु आपने 5 लाख का ही दान दिया है तो 5 करोड में से 5 लाख ही आपके हैं, शेष रकम तो आपको यहीं छोडकर जाना पडेगा, उस पर आपका कोई अधिकार नहीं रहेगा।

कवि ने ठीक ही कहा है-

**'जो दे गया सो ले गया, खा गया सो खो गया।**

**जोड गया सिर फोड गया, दबा गया झख मार गया।'**

### **दान पुण्यबंध का उपाय**

पुण्य बंध के जो 9 स्थान हैं, वे दान रूप है। भूखें को भोजन देना प्यासे को पानी पिलाना, वस्त्र रहित को वस्त्र देना, जिसके पास रहने के लिए कोई स्थान नहीं है, उसे स्थान देना। जिसके पास शयन की कोई सामग्री नहीं है, उसे सोने की सामग्री देना इत्यादि पुण्यबंध के उपाय है।

### **धन की सफलता दान में है**

ठीक ही कहा है -

**'अर्थस्य सारं किल पात्रदानं'**

बुद्धि की सफलता तत्व के चिंतन में है।

देह की सफलता व्रत धारण करने में है।

उसी प्रकार धन की सफलता दान में ही है।

पुण्य के उदय से धन की प्राप्ति होती है, परन्तु जो दान देकर उस धन का सदुपयोग नहीं करता है, उसका धन पाप मार्ग में ही जाता है।

धन का संग्रह व स्व-उपभोग दोनों पाप बंध के ही कारण हैं, जबकि धन का दान, पुण्य बंध का कारण है।

शास्त्र में धन की तीन गतियाँ बताई गई है - दान, भोग और नाश। धन का श्रेष्ठ उपयोग दान ही है।

### **दान तो मानव जीवन का अलंकार है**

अपने पेट की चिंता तो पशु भी करता है और अपने पेट के लिए पशु भी प्रयत्नशील रहता है। जब कि मानव के पास तो बुद्धि है, उस बुद्धि से वह सोच समझ सकता है। अपने हित की भांति दूसरे के हित का भी विचार कर सकता है। दान तो मानव जीवन का अलंकार है।

मात्र अपना ही विचार करना पशुता है, जबकि दूसरों का विचार करना मानवता है।

पशु मात्र अपना ही पेट भर सकता है, जब कि एक समर्थ मानव, हजारों मानव व पशुओं का भी पेट भर सकता है। इतिहास के पृष्ठों पर उन दानवीरों के नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित हैं, जिन्होंने दिल खोलकर दान दिया था। कर्ण, जगदूशा, भामाशा आदि के नाम से भला कौन अपरिचित है जो दान धर्म के कारण ही जगमशहुर हुए है।

जगत् को दान धर्म का आदर्श बतलाने के लिए ही तारक तीर्थंकर परमात्मा भी दीक्षा अंगीकार करने के पहले गृहस्थ जीवन में 9 वर्ष तक दान देते हैं। वर्ष में वे परमात्मा 388 करोड़ 80 लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करते हैं। धनाढ्य व्यक्ति भी अपने भव्यत्व का निर्णय करने के लिए तीर्थंकर परमात्मा के वरद हस्तों से दान ग्रहण करते हैं, क्योंकि अभव्य आत्मा तीर्थंकर के हाथों से दान नहीं पा सकती है।

### **दानी का स्थान सदैव ऊँचा रहता है**

जो हाथ देता है वह सदैव ऊँचा रहता है और जो लेता है, वह हाथ नीचे रहता है।

सागर के पास जल संपत्ति होती है, फिर भी उसका स्थान नीचा है, किंतु बादल छोटे होने पर भी उनका स्थान ऊँचा रहता है, इसका एक मात्र कारण है, बादल हमेशा दूसरों को बारीश के रूपमें पानी देता है और सागर

उसे संग्रह करता है। पुण्य के उदय से धन की प्राप्ति होती है, परन्तु उस धन के भोग की इच्छा करना पाप ही है। जो पुण्य से प्राप्त धन का सात क्षेत्रों में दान देता है, उसके लिए वह धन पुण्यानुबंधी पुण्य के बंध का कारण बन जाता है।

जैसे शूरवीर के हाथ में रही तलवार रक्षण का काम करती है और बालक के हाथ में रही तलवार उसी के लिए मौत का कारण बन जाती है।

इसी प्रकार सामान्य व्यक्ति के हाथ में रहा जहर मौत का कारण बनता है और वैद्य के पास रहा जहर, औषध का काम करता है। बस, इसी प्रकार कृपण के पास रहा धन उसकी दुर्गति का कारण बनता है, जबकि दानवीर के पास रही लक्ष्मी उसकी सद्गति का कारण बनती है। अतः धन को तारक बनाना या मारक बनाना, यह आपके ही हाथों में है।

### **दान तो हाथ का भूषण है**

'हस्तस्य भूषणं दानं न तु कंकणम्' हाथ का अलंकार दान है किंतु कंकण नहीं। जो हाथ दान करते रहते हैं, वे आदर के पात्र हैं।

### **दान तो दैनिक कर्तव्य है**

जिनेन्द्र पूजा, गुरुसेवा, दया, सुपात्रदान, गुणानुराग और जिनवाणी श्रवण ये श्रावक के लिए दैनिक कर्तव्य है। सुपात्रदान भी श्रावक का दैनिक कर्तव्य है। अतः श्रावक को प्रतिदिन अपनी शक्ति के अनुसार कुछ न कुछ सुपात्रदान करते रहना चाहिये।

**दान का महान् फल** : शलिभद्र की आत्मा ने अपने पूर्व भव में मास क्षमण के तपस्वी मुनिराजश्री को भावपूर्वक खीर का दान दिया था, उस दान के प्रभाव से ही वह गरीब संगम, अपार संपत्ति का मालिक शालिभद्र बन गया। सुपात्रदान के पुण्य प्रभाव से उसके घर पर देवलोक में से 99 पेटिया उतरती थी। जो ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि मगध सम्राट् श्रेणिक के पास भी नहीं थी वह संपत्ति शालिभद्र को प्राप्त हुई थी।

### **दान के पांच भूषण**

सुंदर वस्त्रों के साथ कीमती अलंकार पहिनने से व्यक्ति की शोभा में चार चांद लग जाते हैं, उसी प्रकार दान एक शुभ क्रिया होने पर भी उसे निम्न लिखित पांच भूषणों से अलंकृत किया जाय तो उसकी शोभा अनेक गुणी बढ़ जाती है। दान के पांच भूषणों से विभूषित वह दान मुक्ति का अंग बने बिना नहीं रहेगा। ये रहे दान के पांच भूषण।

1. **आनंद के आंसु** : 'अहो ! मेरा कितना सद्भाग्य ! ऐसे गुरुवर मेरे घर पर !' इस प्रकार दान देते समय आंखों में हर्ष के आंसु आ जाय ।
2. **रोमांच** : दान देते समय सारा देह रोमांचित हो जाय । एक भिखारी को चिंतामणि रत्न की प्राप्ति से होने वाले आश्चर्य से भी बढकर आश्चर्य हो और मन में अपना अहोभाग्य समझे ।
3. **बहुमान** : दान देते समय सुपात्र आत्मा के प्रति हृदय में पूरा पूरा बहुमान आदर भाव हो ।
4. **प्रिय वचन** : 'पधारो ! पधारो !' आपने मुझ पर महान् उपकार किया' इत्यादि प्रिय व मधुर वचनों के साथ भक्ति पूर्वक दान दिया जाय ।
5. **अनुमोदना** : ' आज मेरा कितना सद्भाग्य था कि मुझे सुपात्रदान का अच्छा अवसर मिला' इस प्रकार दान देने के बाद हृदय में बारंबार उस दान की अनुमोदना बनी रहे ।  
भाग्यशालियों ! दान देने के जब भी अवसर मिले तब इन भूषणों को सदैव साथ रखना, तभी तुम्हारा दान मुक्ति का कारण बन सकेगा ।

### दान के पांच दूषण

शुभ क्रिया भी विधिपूर्वक और शुभ भाव पूर्वक की जाय तभी विशेष फलदायी बनती है । शुभ क्रिया के साथ अविधि की जाय अथवा मलीन भाव रखा जाय तो शुभ क्रिया भी लाभ के बजाय नुकसान का कारण बन जाती है ।

दान देना शुभ क्रिया हैं, परन्तु उस दान के साथ पांच या कोई भी एक दूषण जुड़ा हुआ हो तो वह दान मोक्ष का कारण नहीं बन पाता है ।

### दान के ५ दूषण

1. **अनादर** : अनादर पूर्वक दान दिया जाय । सामने योग्य पात्र होने पर भी उनके प्रति आदर सत्कार भाव न होना, अनादर कहलाता है । अनादर से दान दूषित हो जाता है ।
2. **विलंब** : जानबुझकर योग्य पात्र आत्मा को दान देने में विलंब किया जाय ! 'अभी नहीं, बाद में आना' कहकर दान के उपयुक्त अवसर को टाला जाय ।
3. **तिरस्कार** : 'चल पडे ये भिखारी !' इत्यादि कटु शब्द पूर्वक तिरस्कार सहित दान देना ।
4. **अभिमान** : 'मैं कितना बडा दानी हूँ, मेरे द्वार पर कितने याचक आते

हैं !' इत्यादि अभिमान पूर्वक दान देना ।

5. **पश्चात्ताप** : 'अरे ! उनको दान देना बेकार था, मैंने भूल कर दी' दान देने के बाद इत्यादि भाव मन में लाना ।  
विष की एक बुंद दूध के कटोरे को जहर बना देती हैं, बस इसी प्रकार ये दुर्भाव, दान की शुभ क्रिया को दूषित करनेवाले जहर ही है ।  
**दान निष्काम भाव से करे** : प्रतिफल पाने की इच्छा से किया हुआ बडा भी धर्म अल्प फलदायी बनता है, जबकि निष्काम भाव से किया हुआ छोटा सा भी धर्म महान् फलदायी बनता है । दान देते समय किसी प्रकार के बदले की इच्छा न रखें । शालिभद्र ने अपने पूर्व भव में निष्काम भाव से दान दिया था तो उसे अपार संपत्ति मिली और एक दिन उस अपार संपत्ति का त्याग कर वे चारित्र धर्म का स्वीकार कर सके ।  
धर्म के फलस्वरूप किसी भौतिक वस्तु को पाने का संकल्प करने से उस धर्म के फल स्वरूप वह वस्तु मिल तो जाती हैं, परन्तु उससे आत्मा के पतन की संभावना रहती हैं, जब कि निष्काम भाव से किया धर्म, जीव को उत्तरोत्तर आगे बढ़ाता जाता है ।

### दान देने में ही लाभ

संत तुलसीदास ने कहा हैं :-

**'पानी बाढो नाव में, घर में बाढो दाम ।  
दोनों हाथ उलेचीए, यही सयानो काम'**

नाव में पानी भर जाता हैं तो नाविक दोनों हाथों से उसे बाहर निकालने की कोशिश करता हैं, उसी प्रकार घर में धन बढ जाय तो उसे दोनों हाथों से देने की कोशिश करनी चाहिये ।

### दान के तीन प्रकार :

अजैन ग्रंथों में भी दान के तीन प्रकार बताए गए हैं

- 1) **तामसी दान** : जो दान अनादर व तिरस्कार पूर्वक दिया जाता हैं, वह तामसी दान है ।
- 2) **राजसी दान** : यश-कीर्ति-मान-सम्मान आदि प्रतिफल की इच्छा से जो दान दिया जाता हैं, वह राजसी दान है ।
- 3) **सात्विक दान** : किसी भी प्रकार के प्रतिफल की इच्छा किए बिना, उदार दिल से स्व-पर हित के लिए जो दान दिया जाता है, वह सात्विक दान

कहलाता है ।

इन तीनों दानों में सात्विक दान सर्वश्रेष्ठ है । धन आदि के ममत्व को तोड़ने के लिए मुमुक्षु आत्मा को हमेशा सात्विक दान देते रहना चाहिये । सात्विक दान स्व-पर उभय के लिए एकांत लाभकारी है ।

## जीवन का सच्चा सौंदर्य : शील

वर्षा ऋतु का समय था । भगवान नेमिनाथ प्रभु को वंदन कर राजीमती साध्वी गिरनार पर्वत से नीचे उतर रही थी । अचानक आकाश में बादल छा गए...और तत्क्षण वर्षा का प्रारम्भ हो गया ।

राजीमती साध्वी के वस्त्र वर्षा के जल से भीग गए...वे अपनी संयम रक्षा के लिए इधर उधर आश्रय देखने लगी । अचानक उनकी नजर एक गुफा की ओर गई ।

नेमिनाथ प्रभु के चचेरे भाई रथनेमि पहले से ही उस गुफा में कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े थे ।

प्रकाश से अंधकार में प्रवेश करती राजीमती को कुछ पता नहीं चला...अतः गुफा में प्रवेश करने के बाद वे अपने वस्त्रों को सूखाने के लिए शरीर पर से उन वस्त्रों को उतारने लगी ।

अचानक आकाश में बिजली चमक उठी...उस बिजली के प्रकाश में रथनेमि ने राजीमती के अद्भुत रूप सौंदर्य को देख लिया । तत्क्षण वे अपनी आत्म-साधना से च्युत हो गए । उनकी अंतरात्मा में सुषुप्त पडी कामवासना जागृत हो गई और वे राजीमती के पास दैहिक सुख की याचना करने लगे ।

रथनेमि के अस्तित्व का ख्याल आते ही राजीमती एकदम सावधान हो गई । उन्होंने अपने वस्त्रों से शरीर को ठीक कर दिया ।

उसके बाद रथनेमि को संबोधित करती हुई बोली,

**'धिरस्थु ते जसो कामी,**

**जो तं जीवियकारणा ।**

**वंतं इच्छसि आवेउं,**

**सेयं ते मरणं भवे ॥'**

हे यश की इच्छा वाले ! तुझे धिक्कार हो । असंयम रूप जीवन के लिए तू वमित ऐसी मुझे पाने की इच्छा करते हो । कुल और धर्म को कलंकित करके जीना, इसके बजाय तो मर जाना श्रेष्ठ है ।

राजीमती एक पवित्र सती साध्वी थी । गृहस्थ जीवन में नेमिकुमार को वर चुकी थी ।

लग्न के लिए आए हुए नेमिकुमार जब अपने रथ को वापस लौटा देते हैं,...तब राजीमती की सखियां राजीमती को समझाती हुए कहती हैं, 'सखी ! तू चिंता मत कर । व्याकुलता को छोड़ दो । अन्य श्रेष्ठ राजकुमार के साथ तेरा पाणि ग्रहण करा देंगे ।'

सखियों के मुख से इन शब्दों को सुनकर राजीमती अपने कानों को बंद कर देती है । वह कहती हैं, 'ऐसे कटु शब्द मुझे पुनः मत कहना । मैं अपने हृदय से नेमिकुमार को वर चुकी है । यह जीवन तो उन्हीं के चरणों में समर्पित है । इस जीवन में मैं अन्य किसी के साथ संबंध नहीं करूंगी ।'

'यदि मेरे प्रियतम चारित्र अंगीकार करेंगे तो मैं भी चारित्रधर्म स्वीकार करूंगी...इस जीवन में उनके साथ मेरा हस्तमिलाप नहीं हुआ तो अब चारित्र धर्म का स्वीकार करते समय उनका वरद हस्त मेरे मस्तक पर रहेगा ।'

और सचमुच, नेमिनाथ प्रभु की धर्मदेशना का श्रवण कर राजीमती की अंतरात्मा जागृत बन गई ।

**देह का सौंदर्य क्षणिक हैं, विनाशी हैं, जबकि आत्मा का सौंदर्य शाश्वत हैं, अविनाशी है । मानव देह का वास्तविक उपयोग तो आत्मा के शाश्वत सौंदर्य को पाने में रहा हुआ है । इस सत्य की वास्तविक प्रतीति हो जाने के कारण राजीमती ने संसार के भौतिक सुख साधन, वैभव विलासिता का परित्याग कर चारित्र धर्म अंगीकार कर लिया था । चारित्र धर्म की स्वीकृति के बाद राजीमति आत्मा के शाश्वत सौंदर्य को पाने के लिए सतत प्रयत्नशील थी ।**

रत्नत्रयी की अपनी आराधना साधना में कहीं दाग न लग जाय, इसके लिए वह पूर्णतया जागृत थी ।

मोक्षाभिलाषी आत्मा संयम रक्षा के लिए प्रतिपल जागृत रहती है । संयम में कही दोष या अतिचार न लग जाय, इसके लिए वह आत्मा अत्यंत ही सावधान रहती है ।

थोड़ा सा भी प्रमाद चौदह पूर्वधर महर्षि को भी पतन के गर्त में डूबा देता है ।

कर्म के उपशम व क्षयोपशम से जन्य गुणों का अस्तित्व सदाकाल नहीं रहता है, सदा काल तो कर्म के क्षय जन्य क्षायिक गुण रहते हैं । उन क्षायिक भाव की गुण संपदा प्राप्त न हो जाय तब तक संयम जीवन के प्रति जागृत रहना

अत्यंत ही जरूरी है ।

आत्म जागृति के अभाव में अशुभ निमित्त को पाते ही आत्मा का पतन होते देर नहीं लगती है ।

यद्यपि रथनेमि ने भी दीक्षा अंगीकार की थी । वे भी ज्ञान ध्यान की साधना में उद्यमशील थे-परन्तु राजीमती के रूप दर्शन के साथ ही उनकी आत्मा में सुषुप्त काम वासना आदि के संस्कार जागृत हो गए ।

**अनादिकाल के अभ्यास के कारण प्रत्येक आत्मा में काम क्रोध आदि के कुसंस्कार रहे हुए हैं । ज्ञान ध्यान व संयम की साधना के द्वारा उन संस्कारों को निर्मूल करने का होता है । जब तक आत्मा में से इन कुसंस्कारों को मूल सहित नहीं उखाड़े जाएंगे तब तक इन कुसंस्कारों के जागृत होने की पूरी पूरी संभावना रहती है ।**

राजीमती के रूपदर्शन से ज्योहि रथनेमि के हृदय में काम वासना के संस्कार जागृत हुए त्योंहि राजीमती ने उन्हें कठोर शब्दों से धिक्कारते हुए ठपका दिया ।

हर कोई व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन की इच्छा करता है, परन्तु उस स्वादिष्ट भोजन को करने के बाद वमन करे तो उस वमन की हुई वस्तु को खाने की कौन इच्छा करेगा ?

राजीमती कहती हैं, 'नेमिकुमारने मेरा त्याग कर दिया है, उन्होंने मेरा वमन किया है, अब आप मुझे चाहते हो, इसका अर्थ तो यही हुआ कि आप वमन को खाना चाहते हैं ।'

**अहं च भोगरायस्य,  
तं च अंधगवद्विणो ।  
मा कुले गंधणा होमो,  
संजमं निहुओ चर ॥**

मैं भोगराज-उग्रसेन महाराजा की पुत्री हूँ और आप अंधक वृष्णि समुद्र विजय के पुत्र हो । उत्तम कुल में जन्म लिये होने के कारण भी वमित भोग की इच्छा करना उचित नहीं है ।

अगंधन कुल में जन्मे हुए सर्प वमित विष को पुनः नहीं पीते हैं । गारुडिक उन्हें मंत्र-प्रभाव से खींच कर ले आते हैं और फिर वमित विष को पुनः पीने के लिए दबाव करते हैं अथवा अग्नि की ज्वाला में जलकर मर जाने के लिए बाध्य करते हैं ।

अगंधन कुल में जन्में सर्प अग्नि में जलकर मरना पसंद करते हैं, किन्तु वमित विष को पुनः पीना पसंद नहीं करते हैं ।

बस इसी प्रकार सत्वशाली पुरुष कभी भी वमे हुए भोगों को पुनः पाने की लालसा नहीं करते हैं ।

राजीमती के इन कठोर व बोधदायक शब्दों को सुनकर रथनेमि की आत्मा पुनः जागृत हो गई...और परिणामस्वरूप उन्हें अपनी भूल का ख्याल आ गया । उन्होंने क्षमा याचना की । नेमिनाथ प्रभु के पास जाकर अपने पापों की आलोचना की और पुनः अपनी आत्मा का कल्याण किया ।

### **आत्म चिंतन करें**

कोई पुण्य के उदय से सुंदर रूप मिला हो, परन्तु सोचे, इस देह का अस्तित्व कितने समय का है ?

अनुत्तर देव विमानवासी देवताओं का आयुष्य तेतीस सागरोपम का होता है...परन्तु एक दिन उस आयुष्य का भी एक किनारा आ जाता है...और उन्हें भी देवलोक की समृद्धि का त्याग करना पड़ता है ।

देव भव के दीर्घ आयुष्य के आगे तो मनुष्य भव का आयुष्य सिंधु में बिंदु तुल्य ही है ।

किस समय यह जीवन पूरा हो जाएगा कुछ कह नहीं सकते ।

**सुंदर रूप का भी अस्तित्व कब तक ? जब तक देह में आत्मा हैं, तभी तक न ! आतम पंखी इस देह पींजर को छोड़कर ज्योहि विदाई लेगा, त्योंहि यह देह सड़ने लग जाएगा...इसी सुंदर देह में से भयंकर दुर्गंध आने लग जाएगी । इस मृतदेह के पास कोई बैठने के लिए तैयार नहीं होगा ।**

जिस देह को पाने के लिए लोग तलपापड बनते थे...आज उसी देह में से आतम पंखी के निकल जाने के बाद उस देह को घर में रखने के लिए कोई तैयार नहीं है ।

सचमुच, देह का अल्पकालीन सौंदर्य भी तो आत्मा को ही आभारी है न ! शरीर में आत्मा हैं, इसलिए यह शरीर सुंदर लगता है । शरीर में आत्मा हैं इसलिए इस देह की आंखें किसी का मन हर लेती हैं, इस देह में आत्मा है, इसलिए यह जीभ स्वाद ले सकती है ।

वास्तव में देखा जाय तो शरीर तो बारदान है । माल के कारण बारदान की भी कीमत हो जाती है । आत्मा के कारण क्षणिक व नाशवंत देह भी कीमती बन जाता है ।

अपने जीवन के साथ, देह व आत्मा का सह अस्तित्व है। आत्मा के आधार पर ही हमारे जीवन का मूलभूत अस्तित्व होने पर भी हम आत्मा को भूल जाते हैं और नाशवंत इस शरीर के सौंदर्य के पीछे पागल बन जाते हैं।

जब तक आत्मा के शाश्वत सौंदर्य का ज्ञान न हो तब तक देह के क्षणिक सौंदर्य के पीछे कोई पागल बनें तो यह उसकी अज्ञानता है, परन्तु आत्मा के शाश्वत सौंदर्य और देह के क्षणिक सौंदर्य को जानने-समझने के बाद भी हमारी दौड़ यदि उन्हीं क्षण सुंदर और नाशवंत पदार्थों के प्रति रहेगी तो फिर हमारी बुद्धिमत्ता का क्या अर्थ रहेगा ?

### याद करे सुंदरी को !

ऋषभदेव भगवान की पुत्री सुंदरी, नाम से ही सुंदरी नहीं थी, उसका रूप और लावण्य भी अद्भुत था..परन्तु उसने ज्योंही ऋषभदेव प्रभु की धर्मदेशना का अमृत पान किया, त्योंही उसकी देह की मूर्च्छा दूर हो गई। देह के सौंदर्य का आकर्षण समाप्त हो गया ...और उसके मन में आत्मा के शाश्वत सौंदर्य को पाने की तीव्र लालसा जागृत हो गई।

सुंदरी ने अपनी भावना भरत महाराजा को व्यक्त की। परन्तु सुंदरी के रूप में मोहित भरत ने सुंदरी को दीक्षा की अनुमति नहीं दी और स्वयं षट्खंड के विजय के लिए निकल पड़े।

इधर सुंदरी ने सोचा, भरत मेरे देह के बाह्य सौंदर्य पर मुग्ध है न ! तो क्यों न मैं आर्यबिल तप की उत्कृष्ट साधना के द्वारा इस देह के बाह्य सौंदर्य को समाप्त कर दूं और आत्मा के वास्तविक सौंदर्य को प्राप्त कर लूं। बस, मनोमन इस प्रकार संकल्प कर उसने आर्यबिल तप का प्रारंभ किया..और जब तक छ खंड पर विजय प्राप्त कर भरत वापस नहीं लौटा, तब तक उसने आर्यबिल तप नहीं छोड़ा।

60,000 वर्ष के निरंतर आर्यबिल तप के कारण उसकी देह लता एकदम कृश बन चूकी थी। उसने तप धर्म की आराधना व साधना के द्वारा देह के बाह्य सौंदर्य को समाप्त प्रायः कर डाला परन्तु तप धर्म की उसकी दीर्घ साधना के फलस्वरूप उसका आत्मा-सौंदर्य का चांद तो सोलह कलाओं से खिल उठा था।

60,000 वर्ष के बाद छह खंड पर विजय प्राप्त कर जब भरत ने विनीता नगरी में प्रवेश किया, तब वह स्वयं सुंदरी को पहिचान नहीं पाया।

उसने पूछा, 'यह कृश कन्या कौन है ?'

'यह तो सुंदरी है।'

'अरे ! सुंदरी की यह हालत ? क्या उसके शरीर में कोई रोग है ? अथवा वह बराबर भोजन नहीं कर रही है ?'

जवाब मिला, 'न तो उसके शरीर में किसी प्रकार का रोग है और न ही यहां भोजन की किसी प्रकार की कमी है।'

भरत ने कहा, 'सुंदरी ! तो फिर तेरी यह हालत कैसे हो गई ?'

उसने कहा, 'बंधुवर्य ! मैंने जब से ऋषभदेव प्रभु की वाणी सुनी है, तब से मेरे दिल में संयम धर्म को पाने का ही तीव्र मनोरथ है। परन्तु तुम्हारी अनुज्ञा नहीं मिलने से मैंने आर्यबिल तप आरंभ किया है। इस बाह्य सौंदर्य के प्रभाव से मेरी काया कृश बनी है, मेरा बाह्य सौंदर्य समाप्त हुआ है, परन्तु मेरा आंतर तेज तो बढ़ा ही है।'

'प्रभु की धर्म देशना श्रवण के बाद मुझे संसार के समस्त भौतिक सुख निःसार प्रतीत हो रहे हैं। संसार के किसी भी सुख को पाने के लिए मेरे दिल में किसी भी प्रकार की उत्कंठा-अभिलाषा नहीं है। मेरा मन तो आत्मा के चिर सौंदर्य को पाने के लिए ही उल्लसित बना हुआ है..और उस हेतु मुझे आपकी अनुमति की आवश्यकता है।'

तत्क्षण भरत ने हां भर दी...और सुंदरी चारित्र मार्ग पर चल पड़ी।

### जीवन का सच्चा सौंदर्य है शील और सदाचार

महान् पुण्य के उदय से हमें यह मानव जीवन मिला है, जिस जीवन के द्वारा हम शाश्वत जीवन में प्रवेश कर सकते हैं।

क्षणिक जीवन में से शाश्वत जीवन में प्रवेश करने के लिए आवश्यकता है जीवन में शील और सदाचार की।

**यदि मोक्ष सुख पाना है तो क्षणिक व तुच्छ इन ऐहिक सुखों का त्याग करना ही होगा। क्षणिक सुखों की आसक्ति को तोड़े बिना मोक्ष के वास्तविक सुख से नाता नहीं जुड़ सकेगा।**

मोक्ष सुख को पाने के लिए क्षणिक सुखों का त्याग करना ही पड़ेगा...परन्तु दुःख की बात है कि जिस प्रकार सुअर सुंदर पक्वान्न के भोजन की उपेक्षा करके भी विष्टा को ही पाना चाहता है, उसी प्रकार मोहाधीन आत्मा भी मोक्ष के

शाश्वत सुखों की उपेक्षा कर संसार के क्षणिक व तुच्छ सुखों में ही आसक्त बनती है ।

मोक्ष सुख की अभिलाषी आत्मा को विषय जन्य सुखों का परित्याग करना ही चाहिये ।

### **पौद्गलिक सौंदर्य ग्रन्थायी:**

योगीराज आनंदघनजी म.ने ठीक ही कहा हैं -

**'या पुद्गल का क्या विश्वासा,  
है सपनों का वासा,  
चमत्कार बिजली दे जैसा,  
पानी बीच पतासा ॥'**

पानी के भाजन में पतासा डाला जाय तो क्षण भर के लिए उसका अस्तित्व दिखाई देता है, परन्तु उसके अस्तित्व को समाप्त होते कितनी देर लगती हैं ?

क्षण भर में तो उसका अस्तित्व सदा के लिए साफ हो जाता हैं । बस, इसी प्रकार इस पौद्गलिक रूप सौंदर्य का भी क्या गर्व करना ? आज जो सौंदर्य है, कल वह समाप्त हो जाएगा ।

**महापुरुषों का तो स्पष्ट उद्घोष है कि नारी देह का सौंदर्य, रूप नहीं किन्तु शील धर्म ही है ।**

जिस प्रकार अज्ञान से बढ़कर कोई अंधकार नहीं, क्रोध जैसी कोई आग नहीं, तृष्णा से बढ़कर कोई दरिद्रता नहीं और संतोष से बढ़कर सुख नहीं हैं, उसी प्रकार शील से बढ़कर नारी देह का कोई सौंदर्य नहीं है ।

प्रतिदिन प्रातः काल में भरहेसर की सज्झाय द्वारा अनेक सत्वशाली महापुरुषों को और महासतियों को याद करते हैं ।

क्या विशेषता थी उन महासतियों के जीवन में ?

क्या उनके पास रूप और संपत्ति थी, इसलिए याद करते हैं ?

नहीं ! इस आर्य देश में रूप व संपत्ति का कोई विशेष मूल्य नहीं है ।

महासतियों की सबसे बड़ी विशेषता थी उनका शील धर्म ।

भयंकर से भयंकर संकट के बीच भी उन्होंने अपने शील का अखंड रूप से पालन किया था । देह की अपेक्षा उन्हें अपने शील की कीमत थी । उनकी इसी विशेषता के कारण आज भी हम उन्हें पूर्ण सम्मान की दृष्टि से

देखते हैं और उनका आदर करते हैं ।

- अपने जेठ मणिरथ की ओर से अपने शील धर्म के ऊपर आपत्ति को देखकर महासती मदनरेखा ने राज्य के समस्त सुखों की तिलांजलि देकर भी स्वेच्छा से वन की राह स्वीकार की थी । शारीरिक कष्ट स्वीकार करके भी किसी भी संयोग में शील का रक्षण तो होना ही चाहियें यह उस महासतियों की दृढ़ मान्यता थी ।
- महासती मयणासुंदरी के शील को लूटने के लिए कितने भरसक प्रयत्न हुए थे ? फिर भी मरणांत कष्टों के बीच भी उसने अपने शील धर्म का पूर्ण रक्षण किया था ।
- राजरानी ने अपने शील के रक्षण के लिए अपनी खूबसूरत आंखों को चाकू से निकालकर मोहांध अन्य राजा के सामने रख दी थी । निकट भूतकाल में भी ऐसे अनेक दृष्टांत पढ़ने को मिलते हैं ।

### **रामदूलारी ने गौत परसंद की**

ओरंगजेब के समय का प्रसंग है । रामदूलारी एक वेश्या थी...परन्तु धन के लोभ के कारण जब उसकी स्वामिनी ने उसके एक बाल पुत्र की हत्या कर दी...उसके साथ ही रामदूलारी के जीवन में अद्भुत परिवर्तन आ गया । किसी संत के समागम से उसे भगवद् भक्ति का रंग चढ़ गया । वेश्या का व्यवसाय छोड़कर वह भगवद् भक्ति में लीन बन गई ।

एक बार उसके बाह्य रूप सौंदर्य का श्रवण कर ओरंगजेब उसके रूप का पिपासु बन गया । उसने अपनी सत्ता के बल पर रामदूलारी का अपहरण करा दिया ।

तत्पश्चात् रामदूलारी ने कहा, 'आप मेरे लिए शंकर का मंदिर बना दो, उसके बाद मैं आपकी बन जाऊंगी ।'

पहले तो ओरंगजेब उस मांग को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ, परन्तु उसका आग्रह देखकर उसने शंकर का मंदिर बना देने का स्वीकार कर लिया ।

मंदिर निर्माण के बाद रामदूलारी अपने प्रभु के समक्ष नाच करने के लिए मंदिर में चली गई और लयलीन होकर नृत्य करने लगी । नृत्य की समाप्ति के साथ साथ उसने अपने जीवन को भी समाप्त करने का निर्णय ले लिया । बस, अपने शील की शुद्धि की रक्षा के लिए भगवद् भक्ति के नृत्य के साथ साथ उसने हीरों की अंगुठी को चूसकर सदा के लिए उसने अपनी जीवन



की चादर संकेल दी...ओरंगजेब देखता ही रह गया ।

इस प्रकार रामदूलारी ने अपने जीवन को समाप्त करके भी अपने शील का रक्षण किया ।

- अपने रूप सौंदर्य पर मुग्ध छह राजाओं को प्रतिबोध देने के लिए मल्लिकुमारी ने अपने देह के समान ही Moddle तैयार कराया और उस मॉडल में प्रतिदिन अपनी भोजन सामग्री का कुछ अंश डालने लगी ।

एक दिन जैसे ही अलग अलग दिशाओं से छः राजाओं ने मल्लिकुमारी के बैठक खंड में प्रवेश किया...उसकी अद्भूत प्रतिकृति Moddle को देखकर अत्यंत मुग्ध हो गए...परन्तु कुछ ही समय बाद उसने उस मॉडल के ऊपर का ढक्कन हटाया ।

ढक्कन हटने के साथ ही उसमें से भयंकर दुर्गंध आने लगी, जो अत्यंत ही असह्य थी ।

वे राजा जब उस दुर्गंध के कारण अपनी नाक भों सिकोडने लगे, तब मल्लिकुमारी ने कहा, 'इस मॉडल में भी खाने पीने की भी वही सामग्री डाली गई, जिसे मैं खाती हूं, आज बाहर प्रगट हो रही इस दुर्गंध के कारण आप अपनी नाक-मों सिकोड रहे हो...परन्तु यही दुर्गंध इस देह के भीतर भी तो रही हुई है...अतः वास्तव में सौंदर्य पान के पिपासु हो तो आत्मा के शाश्वत सौंदर्य का पान करो । देह का सौंदर्य तो क्षणिक व अस्थायी है ।

मल्लिकुमारी के उपदेश को सुनकर छः राजाओं ने प्रतिबोध प्राप्त किया ।

### **देह-सौंदर्य, क्षणिक एवं विनाशी है**

मानवीय देह औदारिक वर्गणा के पुद्गलों से बना हुआ है । औदारिक वर्गणा के पुद्गल अन्य पुद्गलों की उपेक्षा स्थूल होते हैं । औदारिक वर्गणा की अपेक्षा वैक्रिय वर्गणा के पुद्गल अति सूक्ष्म होते हैं ।

औदारिक वर्गणा के पुद्गलों से बने मानवीय देह में अत्यंत शीघ्रता से परिवर्तन आ जाता है । देवताओं का देह वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से बना हुआ होने से लाखों करोड़ों पत्योपम व सागरोपम जितने वर्ष बीतने पर भी उनमें किसी प्रकार की विकृति पैदा नहीं होती है ।

जन्म से लेकर, आयुष्य पर्यंत उनके देह का सौंदर्य वैसा ही बना रहता है । मात्र छः मास पूर्व उनके आयुष्य का बंध होता है और उस समय उनके गले में रही फूलों की माला कुम्हलाने लगती है । इस प्रकार उनके देह का सौंदर्य

लाखों वर्षों तक भी एक समान बना रहता है ।

जब कि मानवीय देह का सौंदर्य कितना क्षणिक है ?

- कुछ देर पूर्व जिस सनतकुमार चक्रवर्ती के अद्भूत रूप की प्रशंसा इन्द्र महाराजा ने की थी । थोड़ी देर बाद दो देव ब्राह्मण वेष में सनतकुमार चक्रवर्ती के रूप दर्शन के लिए आए । उन्होंने स्नान करते हुए चक्रवर्ती के अद्भूत रूप सौंदर्य को देखा और खुश खुश हो गए । चक्रवर्ती की सूचना से जब वे रूप दर्शन के लिए राजसभा में आए त्योंहि उन्होंने देखा, 'चक्रवर्ती का देह सौंदर्य समाप्त हो चूका है । थोड़ी देर पूर्व जो रूप सभी के आकर्षण का केन्द्र था, वहीं रूप अब घृणा का कारण बन गया ।' मानव देह के रूप की यह कैसी करुण दयनीय स्थिति है !

### **पुण्य बप्पभट्टी सूरिजी का अपूर्व त्याग**

विक्रम संवत् 811 चैत्र कृष्णा अष्टमी का पवित्र दिन !

आचार्य श्री सिद्धसेन सूरिजी ने जिनशासन के अजोड प्रभावक, आम राजा प्रतिबोधक बप्पभट्टी मुनि को आचार्य पद प्रदान करने का निर्णय लिया । उस समय बप्पभट्टी मुनि की उम्र अत्यंत ही छोटी थी ।

आचार्य पद प्रदान की मंगलमय क्रिया चल रही थी, इस बीच आचार्य भगवंत के मुख पर उदासीनता छा गई । वे बप्पभट्टी के भविष्य की चिंता में डूब गए । तुरंत ही बप्पभट्टी मुनि को इस बात का पता चल गया । वे गुरुदेव के निकट आए और बोले, 'गुरुदेव ! आनंद के प्रसंग पर आपके चेहरे पर उदासीनता क्यों ?'

गुरुदेव बोले, 'बप्प ! पद प्रदान की क्रिया के साथ अचानक मुझे तेरे भविष्य की चिंता हो गई ।'

'एक ओर तेरी छोटी उम्र और दूसरी ओर यह राजकीय मान-सम्मान ! ये दोनों चीजें संयम के लिए खतरनाक है ।'

'गुरुदेव ! यही बात है न !... मैं आज से प्रतिज्ञा करता हूं कि भविष्य में भक्त के घर की गोचरी नहीं लूंगा और जीवनभर के लिए छह विगई का त्याग करूंगा ।'

सुनते ही गुरुदेव का चेहरा प्रसन्नता से भर आया ।

उन्होंने बप्पभट्टी को हृदय से आशीर्वाद प्रदान किए और बोले, 'तूं महान् ब्रह्मचारी और शासन प्रभावक बनेगा ।'

सचमुच ! गुरुदेव के आशीर्वाद पूज्य आचार्य भगवंत श्री बप्पभट्टी सूरिजी म. के जीवन में फलीभूत हुए । वे श्रेष्ठ ब्रह्मचारी सिद्ध हुए । उन्होंने अपने जीवन में जिन शासन की अजोड प्रभावनाएं की ।

### **स्थूल-भद्र महामुनि की महानता**

84-84 चोबीसी तक जिनका नाम अमर रहेगा ऐसे महान् ब्रह्मचारी स्थूलभद्र महामुनि संयम स्वीकार के पूर्व कोशा वेश्या में अत्यंत आसक्त थे । वे 12-12 वर्षों तक कोशा वेश्या के वहीं रहे थे ।

परन्तु एक छोटे से निमित्त को पाकर उन्होंने भगवान महावीर प्रभु द्वारा निर्दिष्ट चारित्र धर्म का स्वीकार किया और उसके बाद उन्होंने जिनागमों का गहन अध्ययन किया ।

श्रुतसागर के अवगाहन द्वारा उन्होंने जिन वचन का अमृत पान कर कामवासना के विष को निर्मूल कर दिया, जिसके फलस्वरूप वे महान काम विजेता बनें ।

कोशा वेश्या के भवन में ही चातुर्मास कर उन्होंने कोशा वेश्या को धर्म बोध दिया । कोशा वेश्या ने भी श्रावक जीवन के अलंकार स्वरूप अणुव्रत स्वीकार किए ।

जिन वचन के अमृतपान से स्थूलभद्र महामुनि आत्म सौंदर्य के पिपासु बनें । स्त्री के देह सौंदर्य में उन्हें किसी प्रकार का आकर्षण न रहा । ऋतु, वय, भोजन, स्थान आदि हर तरह से कामोत्तेजक निमित्त का वातावरण होने पर भी वे लेश भी विकारग्रस्त नहीं बने ।

वास्तव में उन्होंने काम के घर में रहकर काम का नाश किया था ।

उनकी ब्रह्मचर्य की इस विशिष्ट साधना के फलस्वरूप ही 84-84 चोबीसी तक उनका नाम अमर रहेगा ।

### **रत्नत्रयी की साधना से ही आत्म सौंदर्य की प्राप्ति**

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ही मोक्षमार्ग है । इस रत्नत्रयी की साधना द्वारा भूतकाल में अनंत आत्माओं ने आत्मा के सच्चे सौंदर्य को प्राप्त किया था । वर्तमान में भी इसी रत्नत्रयी की आराधना-साधना के द्वारा अनेक आत्माएं आत्म सौंदर्य का पान कर रही हैं ।

क्या आप भी सौंदर्य पाना चाहते हैं ?

यदि हां ! तो बाह्य पौद्गलिक भावों में से अपने मन को हटाकर अपने

मन को रत्नत्रयी की आराधना साधना में जोड़ दे ।

रत्नत्रयी की सच्ची आराधना ही आत्मा के सच्चे सौंदर्य को प्राप्त कराएगी ।

सभी पुण्यवंत आत्माएं अपने जीवन में इस रत्नत्रयी की आराधना कर जीवन के सच्चे सौंदर्य को प्राप्त करें यही एक शुभकामना है ।

### **तप**

तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने अंतिम भव में भी इस तप धर्म की उत्कृष्ट आराधना करते हैं । अपने छद्मस्थ काल में तीर्थंकर परमात्मा अपनी तप साधना के द्वारा ही आत्मा पर लगे हुए कर्मों को जलाकर भस्मीभूत करते हैं ।

नंदन ऋषि के भव में भगवान महावीर की आत्माने 11, 80, 645 मास क्षमण की उग्र साधना के द्वारा अपूर्व कर्म निर्जरा की थी...फिर भी बहुत से कर्म आत्मा में सत्ता में पड़े हुए थे...उन सत्तागत कर्मों को समाप्त करने के लिए अपने अंतिम भव में साढ़े बारह वर्ष तक घोरतिघोर तप साधना की थी । साढ़े बारह वर्ष में प्रभु ने सिर्फ 349 दिन ही पारणे, ठाम चोविहार एकासने से किए थे । शेष दिनों में प्रभु ने निर्जल तप किया था । प्रभु ने जघन्य तप छट्ट व उत्कृष्ट तप छः मास उपवास किया था । साढ़े बारह वर्ष में प्रभु का प्रमादकाल मात्र दो घड़ी से कुछ कम अर्थात् अन्तर्मुहुर्त मात्र था । साढ़े बारह वर्ष तक प्रभु अधिकांशतः कायोत्सर्ग ध्यान में ही रहे हैं । प्रभु कभी भी जमीन पर लेटकर आराम से सोए नहीं थे ।

### **मोहराजा की आज्ञा से 12 प्रकार के तप का सेवन**

इस संसार में एक ओर तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा का शासन है तो दूसरी ओर चौदह राज लोक में मोह का भी साम्राज्य है । तीर्थंकर की आज्ञा के पालन से आत्मा कर्म के बंधनों से मुक्त बनकर शाश्वत अजरामर पद प्राप्त करती है और मोह की आज्ञा के पालन से आत्मा इस चौदह राजलोक के मैदान में जहाँ तहाँ भटकती रहती है ।

कर्म के बंधन से मुक्त बनने के लिए तारक परमात्मा ने 12 प्रकार के तप बतलाए हैं । उन तारक परमात्मा की आज्ञानुसार उस तप धर्म का सेवन किया जाय तो आत्मा कर्म से सदा के लिए मुक्त हो सकती है ।

संसारि आत्मा को भी इच्छा-अनिच्छा से भी इन तपो का सेवन तो

करना ही पड़ता है । इच्छा पूर्वक करे तो आत्मा कर्म के बंधन से मुक्त बन सकेगी और अनिच्छा से करेगी तो आत्मा इस संसार में भटकेगी ।

मोहराजा की आज्ञा से आप लोग किस प्रकार इन 12 तपों का पालन करते हैं, उस ओर भी थोड़ी नजर लेते हैं ।

- 1. अनशन तप :** आपके पेट में दर्द हो रहा हो और आप डॉक्टर के पास जाते हो । आपकी **Body Check** करने के बाद डॉक्टर कहता है आपके पेट में गांठ हो गई है, आपको **Operation** कराना पड़ेगा । आपरेशन के पूर्व डॉक्टर कहता है 24 घंटे तक आपको कुछ भी नहीं लेना होगा । आप डॉक्टर की इस बात को स्वीकार करते हो या नहीं ? करते हो ! इसका मतलब है डॉक्टर के कहने से आप उपवास करने के लिए तैयार हो । भयंकर अकाल के समय इन पशुओं को 3-3 दिन घास का एक तृण भी नहीं मिल पाता है । तीन दिन भूखें रहते हैं, परन्तु इच्छा से नहीं ! इस प्रकार मोहराजा जब भी भूखे रहने की आज्ञा करते हैं तब आप अनशन व्रत के लिए तैयार हो जाते हैं ।  
परन्तु आज अष्टमी है, चतुर्दशी है, आज आपको उपवास करना चाहिये... तो जरूर आप बहानेबाजी करोगे, मेरे से भूख सहन नहीं होती है, मुझे आयरबिल का रूखा खुराक भाता नहीं है । मुझे बारबार भूख लग जाती है । इत्यादि ।
- 2. ऊणोदरी :** आपका पाचन तंत्र खराब हो गया है । डॉक्टर कहता है 'आपको खुराक कम कर देना होगा । आपको थोड़ा थोड़ा खाने का है । आप तुरंत ही डॉक्टर की बात स्वीकार कर लेंगे ।'
- 3. वृत्तिसंक्षेप :-**पाचन तंत्र की गड़बड़ी के कारण डॉक्टर कहता है, 'आज दही और चावल ही खाना होगा ।' आपकी थाली में 15 वस्तुएँ हैं । आप क्या करोगे ? 13 को छोड़कर दही चावल ही खाओगे न ? इस प्रकार शरीर के लिए वृत्तिसंक्षेप तप किया न !
- 4. रस त्याग :** दुध, दही, घी, तेल, गुड व तली हुई मिठाई ये छः विगई है । किसी को **Heart Attack** आ गया । डॉक्टर कहता है, आज से आपको घी बंद कर देना होगा । आपको डायबिटीस हो गया है, डॉक्टर कहता है आपको गुड-शक्कर-मीठाई छोड़ देनी होगी । आप क्या करोगे ? तुरंत ही त्याग कर दोगे न !

शरीर के लिए आप रस त्याग करने के लिए तैयार हो ।

- 5. कायक्लेश :** आपकी चर्बी बढ़ गई हो और डॉक्टर कहता है कि आपको रोज 2 Km. Walking के लिए जाना होगा । आप जाते या नहीं ? इस प्रकार शरीर के स्वास्थ्य के लिए आप कायक्लेश भी सहन कर लोंगे ।
- 6. संलीनता :-**Heart attack आने पर डॉक्टर कह दे कि आपको **Complete Bed Rest** करना होगा तो आप करने के लिए तैयार हो जाओगे । आपके पैर में **Facture** हो जाता है और डॉक्टर कहता है दो महिने तक पैर को लंबा ही रखना होगा । आप डॉक्टर की बात मानोंगे या नहीं ? इस प्रकार शरीर के स्वास्थ्य के लिए बाह्य सभी छ तपों का सेवन आप करते हो ।

### **अभ्यंतर तपः**

- 1. प्रायश्चित :** अगले दिन ज्यादा भजीए खा लेने के कारण दस्त लग गई हो और डॉक्टर कहे कि आज भूखा रहना पड़ेगा तो आप डॉक्टर के दिए हुए इस दंड को स्वीकार करते हो न ? इस प्रकार प्रायश्चित तप किया न !
- 2. विनय :** दिन में कितनी ही बार सरकारी आफिसर आदि को सलाम भरते हो न ! ग्राहक आदि के साथ विनय पूर्वक व्यवहार करते हो न !
- 3. वैयावच्च :** घर में बाल बच्चे बिमार हो जाय तो उनकी सेवा-चाकरी-वैयावच्च करते हो न !
- 4. स्वाध्याय :** प्रतिदिन घंटे भर तक अखबार पढ़ते हो न ! दुनिया भर के भाव जानने के लिए रोज अखबार का बराबर स्वाध्याय करते हो न !
- 5. कायोत्सर्ग :** आत्म कल्याण के लिए खड़े खड़े कायोत्सर्ग करना हो तो आप अनेक बहानेबाजी करोगे, परन्तु रेल्वे की टिकिट विन्डो (Ticket Window) पर टिकिट लेने के लिए डेढ़ घंटा कायोत्सर्ग की Position में खड़े रहते हो न !
- 6. ध्यान :** ध्यान तो आपका 24 घंटे चल ही रहा है । यहां बैठे भी दुकान व घर के विचार आ जाते हैं न ! संसारी जीव सतत अर्थ व काम के ध्यान में डूबा हुआ है ।

इस प्रकार मोहराजा की आज्ञा से आप सभी 12 प्रकार के तपो का सेवन करते हो । यदि इन्हीं तपो का प्रभु की आज्ञानुसार सेवन किया जाय तो आत्मा शीघ्र ही कर्मों के बंधन से मुक्त हो सकती है ।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थकर परमात्मा केवल ज्ञान की प्राप्ति के बाद भव्य प्राणियों के कल्याणार्थ धर्म तीर्थ की स्थापना करते हैं। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा प्ररूपित शासन अर्थात् जैन शासन। वीतराग परमात्मा अपने केवल ज्ञान रूप चक्षु के द्वारा जगत् के यथावस्थित स्वरूप को जानकर अशुभ कर्मों से मलिन बनी भव्यात्माओं के हितार्थ कर्म मुक्ति का मार्ग बताते हैं।

वीतराग परमात्मा की इस धर्म देशना में विविध दृष्टिकोण से तप धर्म का विश्लेषण किया गया है जिसके निम्नांकित कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

1. **9 तत्वों में तप धर्म** : परमात्मा ने जगत् के विस्तृत स्वरूप को नौ तत्वों में विभाजित किया है। नौ तत्व :- जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। इन नौ तत्वों में सातवां जो निर्जरा तत्व है, वह तप स्वरूप है अर्थात् निर्जरा और तप एक दूसरे के ही पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रचलित है।  
निर्जरा अर्थात् जिस प्रक्रिया से आत्मा के ऊपर लगे हुए कर्म क्षीण हो ! निर्जरा अर्थात् आत्मा के कर्मफल को धोने की प्रक्रिया। इस प्रकार निर्जरा तत्व से तप धर्म की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।
2. **नवपद में तप** : अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन नवपदों में जैन शासन का अवतरण हुआ है, इनमें अंतिम पद है तप ! प्रतिवर्ष आसो तथा चैत्र मास में सिद्धचक्र की ओली की आराधना की जाती है उनमें इन्हीं नवपदों की आराधना व ध्यान किया जाता है। इस प्रकार तप पद का महत्व स्पष्ट हो जाता है।
3. **आत्मा के चार गुणों में तप** : नवपद अथवा सिद्धचक्र में अंतिम जो चार पद हैं, वे शुद्धात्मा के गुण स्वरूप हैं। अर्थात् सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यग् चारित्र और सम्यग् तप ये शुद्धात्मा के ही गुण हैं। इस प्रकार सम्यग् तप, शुद्ध आत्मा का गुण होने के कारण तप धर्म की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।
4. **धर्म के चार प्रकारों में तप** : वीतराग परमात्मा ने धर्म आराधना के चार प्रकार बताये हैं - दान, शील तप और भाव। इन चार धर्मों में तप का समावेश होने से तप धर्म की महत्ता का स्पष्ट ख्याल आ जाता है।  
इन चार धर्मों में प्रथम तीन धर्म त्याग रूप हैं और चौथा भावनात्मक धर्म है। इन प्रथम तीन धर्मों में क्रमशः, धन, स्त्री व शरीर की मुच्छा का त्याग होता है। अर्थात् दान से धन की मुच्छा का त्याग, शील से स्त्री की मुच्छा का

त्याग तथा तप से देह की मुच्छा का त्याग किया जाता है। सामान्यतः जीवन में धन के प्रति मुच्छा होती है, परन्तु धन से भी अधिक मुच्छा स्वदेह में होती है। व्यक्ति अपने देह के रक्षण के लिए धन और स्त्री का भी त्याग करता है।

इसलिए तो पाँच इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय को जीतना अत्यंत कठिन कहा गया है। कहा भी है, 'जिसने रसनेन्द्रिय को जीत लिया, उसने जगत को जीत लिया है।' रसनेन्द्रिय पर विजय पाए बिना देह की ममता का त्याग असंभव है और इसी विजय के लिए तो तप धर्म का निर्देश है। इस प्रकार तीन धर्मों में तप धर्म की मुख्यता स्पष्ट हो जाती है।

5. **धर्म के तीन प्रकारों में तप** : दशवैकालिक सूत्र की गाथा में जिस धर्म को मंगल रूप कहा गया है उसके मुख्य तीन भेद बतलाये हैं, अहिंसा, संयम और तप। इन तीनों में अहिंसा मुख्य है, परन्तु उसका पालन, संयम और तप धर्म के सेवन से ही संभव है। संयम और तप का पालन अहिंसा को पुष्ट करता है। इस प्रकार तप की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।
6. **दैनिक आवश्यकों में तप** : मुक्ति के आराधक साधु और श्रावक को छः क्रियाएँ अवश्य करने योग्य हैं। वे हैं सामायिक-चतुर्विंशति-स्तव, गुरु वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान। प्रत्याख्यान अर्थात् उपवास आदि तप धर्म का सेवन। साधु और श्रावक को प्रतिदिन सुबह और शाम न्युनाधिक पचकखाण का सेवन करना ही पड़ता है। प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग तो अभ्यंतर तप स्वरूप हैं ही। इससे भी तप की मुख्यता स्पष्ट हो जाती है।
7. **साधु जीवन में तपधर्म** : श्रमण के आचारों का वर्णन करते हुए दशवैकालिक में श्रमण के लिए 'एगभत्तं च भोयणं' कहा गया है, अर्थात् श्रमण नित्य तप एकाशना का सेवन करे। इससे भी तप की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।  
उपरोक्त चिंतन से स्पष्ट हो जाता है कि जैन शासन में तप धर्म का कितना अधिक महत्व रहा हुआ है।

### तप का सेवन क्यों ?

एक सहज प्रश्न उठता है कि जैनशासन में तप का जो इतना अधिक महत्व है, उसके पीछे क्या रहस्य होगा ?

इस प्रश्न का समाधान करते हुए वीतराग परमात्मा फरमाते हैं कि तप

के सेवन से देह की ममता का त्याग, रसना-जय तथा कषायों पर विजय प्राप्त होती है।

देह ममत्व त्याग, रसना-जय तथा कषाय जय से कर्म क्षय होता है और कर्म क्षय से आत्मा शुद्धात्मा बन, अजरामर मुक्ति पद प्राप्त करती है।

### तप सेवन के 3 हेतु

**1. देह ममत्व त्याग :** अनादिकाल से संसारी आत्मा को स्वदेह पर अत्यंत ममत्व रहा हुआ है। स्वदेह पर रहे अत्यंत राग के कारण ही आत्मा अनेक विध पापों का आचरण करती हैं।

स्वदेह में ही आत्म बुद्धि के कारण मिथ्यात्व से ग्रस्त आत्मा, देह की पुष्टि के लिए हिंसा-अहिंसा का विचार नहीं करती हैं, पुण्य पाप का विवेक नहीं करती है। मात्र स्वदेह में ही आसक्त दूसरे के सुख-दुःख का लेश भी विचार नहीं करती है। इस प्रकार अनेकविध पापों के आचरण द्वारा आत्मा नयें नयें कर्मों का अर्जन करती है और संसार के बंधनों में गिरकर अनेकविध दुःखों का अनुभव करती है।

जब सदगुरु के समागम से सन्मार्ग की प्राप्ति होती है और आत्म-स्वरूप का ज्ञान होता है, तब आत्मा मिथ्यात्व रोग से मुक्त बनती है। इस प्रकार आत्मा के शुद्धात्म स्वरूप के बोध से देह और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान होता है। इस प्रकार देह से भिन्न आत्मा के बोध से आत्मा, देह की ममता के त्याग के लिए तप धर्म का आसेवन करती है। तप धर्म के निरन्तर अभ्यास से आत्मा, देह के भयंकर दुःखों में भी दृष्टा मात्र बनकर रहती है। इस प्रकार सम्यग् तप के आसेवन से आत्मा, देह के नाश में लेश भी दुःख का अनुभव नहीं करती है।

देह-ममता के त्याग बिना आत्म सुख का संवेदन शक्य नहीं है और सम्यग् तप के आसेवन बिना देह की ममता का त्याग भी शक्य नहीं है।

तप धर्म के निरन्तर अभ्यास से व्यक्ति धीरे धीरे सहनशील बनता है और देह के दुःखों को हंसते हंसते सहन करता है।

**2. इन्द्रिय जय :** तपधर्म के सेवन का दूसरा मुख्य उद्देश्य है, इन्द्रिय जय। अनादिकाल से संसारी आत्मा आहार, भय, परिग्रह और मैथुन इन चार संज्ञाओं के पराधीन बनी हुई है। इन चार संज्ञाओं को तोड़ने के लिए भगवान ने चार प्रकार के धर्मों का उपदेश दिया है। आहार की आसक्ति

के त्याग के लिए तपधर्म का उपदेश है, भय की भ्रमणा के त्याग के लिए भाव-धर्म, परिग्रह की मुक्ति के लिए दानधर्म और मैथुन के त्याग के लिए शीलधर्म का उपदेश है।

पांच इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय सबसे अधिक बलवान् है। रसनेन्द्रिय के पोषण से ही अन्य इन्द्रियों की पुष्टि होती है। रसनेन्द्रिय के पराधीन व्यक्ति अन्य इन्द्रियों का भी गुलाम बनता है। इन्द्रियाधीन पुरुष नानाविध दुःखों का अनुभव करता है।

इन्द्रिय-जय के लिए तप का सेवन अनिवार्य है। विविध प्रकार के तपों के आसेवन द्वारा साधक भोजन के विविध रसों का त्याग करता है। इस प्रकार रस त्याग के क्रमशः अभ्यास से साधक धीरे धीरे रसनेन्द्रिय को अपने वश कर लेता है। आहार की आसक्ति के त्याग बिना इन्द्रिय जय शक्य नहीं है और तप के निरन्तर आसेवन बिना आहार की आसक्ति का त्याग शक्य नहीं है। इस प्रकार इन्द्रिय जय के लिए तप का आसेवन अनिवार्य हो जाता है।

**3. कषाय जय :** क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय आत्मा के अंतरंग शत्रु हैं। तप का मूलभूत उद्देश्य कषायों का जय है। कषायों के जय में ही तप की सार्थकता है।

ज्ञानसार में कहा गया है...**कषायाणां च तथा हतिः...तत्तपः शुद्धमिष्यते।** जहाँ कषायों की हानि होती है, वहीं तप शुद्ध कहलाता है।

तप का सेवन कषायों की हानि के लिए ही है अर्थात् कषायों की हानि को लक्ष्य बिंदु बनाकर ही तप का आसेवन करने का है। जिस क्रिया अथवा कष्ट में कषायों के क्षय करने का ध्येय नहीं है अथवा लेश भी कषायों की हानि नहीं है, वह क्रिया अथवा कष्ट, तप रूप नहीं कहला सकता है। वह मात्र कायकष्ट ही है। तप के बाह्य आडंबर के भीतर आहार की आसक्ति को ही पुष्ट करना और कषायों में लेश भी कमी न करना, यह तो तप का ढोंग ही है। ऐसे ढोंग-ढकोसले से व्यक्ति अपने स्वार्थ को सिद्ध कर देता है, परन्तु अपने वास्तविक परमार्थ को खो बैठता है।

तप का फल समता है। यदि कोई तपस्वी दीर्घकालीन तप करने के बाद भी उतना ही तपता है, उतना ही धमधमता है, उतना ही क्रोध करता है तो वास्तव में ज्ञानियों की दृष्टि में उसने तप का आसेवन किया ही नहीं है। बाह्यतप की साधना, अभ्यंतर तप की पुष्टि के लिए ही है। अभ्यंतर तप की

पुष्टि में ही बाह्य तप की सफलता है। कषायों की हानि बिना अभ्यंतर तप का सेवन शक्य नहीं है। तप के सेवन में समतादि अभ्यंतर गुणों का अभ्यास करने का है।

इस प्रकार देह ममत्व त्याग, इन्द्रिय जय और कषायों की हानि, इन तीनों की पूर्ति तप के सेवन से होती है और तपस्वी को भी चाहियें कि वह भी इन तीनों को लक्ष्य में रखकर ही अपनी शक्ति के अनुसार तप का आचरण करें। यदि अपनी शक्ति के अनुसार तथा लक्ष्य को ध्यान में रखकर निरन्तर तपधर्म का आसेवन किया जाय तो आत्मा अवश्य ही अशुभकर्मों से मुक्त बनकर परमपद प्राप्त कर सकती है।

### तप के भेद-प्रभेद :

जैनशासन में मुक्तिमार्ग की आराधना की व्यवस्था इतनी सुगम, सरस और लचीली है कि आबाल-वृद्ध अपनी अपनी योग्यता व शक्ति के अनुसार सुंदर आराधना कर सकते हैं और क्रमशः आत्मा मुक्ति के पथ पर आगे बढ़ सकती हैं। तप के विषय में इसी प्रकार की सुगमताएँ जैनशासन में रही हुई है। तप के विभिन्न भेद इस प्रकार बताये गए हैं कि एक छोटा सा बालक भी आसानी से तपधर्म का आसेवन कर सकता है।

### तप के मुख्य दो भेद

#### 1. बाह्यतप 2. अभ्यंतर तप ।

1. **बाह्यतप** : इस तप में बाह्य पदार्थों का त्याग किया जाता है। इस तप के सेवन में देह को कष्ट होता है, जो अन्य व्यक्तियों के द्वारा प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। इस तप में बाह्य द्रव्य (भौतिक) पदार्थों का त्याग होने के कारण इसे बाह्यतप कहते हैं अथवा दूसरों को प्रत्यक्ष होने के कारण और अजैन के द्वारा भी किया जाने के कारण बाह्यतप कहते हैं।

### इस तप के निम्न छः भेद हैं ।

- 1) **अनशन** : जिस तप में चार प्रकार के आहार का सर्वथा त्याग किया जाता है, उसको अनशन कहते हैं। चार प्रकार के आहार निम्न है।
  - **अशन** : जिस पदार्थ के खाने से क्षुधा की तृप्ति हो, उसे अशन कहते हैं। उदाहरण धान्य से बनी रोटी, चावल आदि पदार्थ, दूध-दही आदि सभी प्रकार के मिष्ठान्न आदि।
  - **पान** : पान अर्थात् पानी, जिससे तृषा शांत हो।

- **खादिम** : क्षुधा तृप्ति नहीं होती हैं किंतु कुछ संतोष होता है। जैसे खजुर, खारेक, सेका हुआ धान्य आदि
- **स्वादिम** : जिन वस्तुओं के खाने से क्षुधा तृप्ति नहीं होती हो बल्कि कुछ स्वाद मिलता हो। उदाहरण सूठ, जीरा, अजमा, आदि। अनशन तप में उपरोक्त चारों प्रकार के आहारों का त्याग होता है। काल की अपेक्षा से अनशन तप के दो भेद है।
- **इत्वर अनशन** : जिसमें मर्यादित काल के लिए चार प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है, उसे इत्वर अनशन कहते हैं। इसमें न्यूनतम नवकारसी का पचवक्खाण होता है, और अधिकतम छ मास तक किया जाता है।
- **यावज्जीविक अनशन** : जिसमें जीवन पर्यंत चार प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है, उसे यावज्जीविक अनशन कहते हैं।

2. **ऊणोदरी** : भूख से कुछ कवल कम भोजन करना, ऊणोदरी तप कहलाता है। सामान्यतः पुरुष का भोजन बत्तीस कवल का तथा स्त्री का भोजन अट्ठाइस कवल होता है, इस प्रकार क्षुधा से कम भोजन होने से यह ऊणोदरी (ऊण न्यून, उदर-पेट) कहलाता है। यह तप अनशन (इत्वर) पूर्वक भी किया जा सकता है और अनशन (इत्वर) रहित भी किया जा सकता है। स्थूल दृष्टि से यह तप अनशन की अपेक्षा सामान्य लगता है, परन्तु इसका पालन अनशन से भी कठिन है। जो अनुभव सिद्ध है।
3. **वृत्तिसंक्षेप** : भोजन के पदार्थों की संख्या कम करना, वृत्तिसंक्षेप तप है। साधुओं की अपेक्षा वृत्ति अर्थात् गोचरी और उसका संक्षेप अर्थात् द्रव्य क्षेत्र तथा कालादि को ध्यान में रखकर विविध अभिग्रह धारण करना। इस प्रकार यह तप, पूर्व के तप की अपेक्षा और भी कठिन है। विविध प्रकार के भोजन तैयार हो और स्वयं खाने में शक्तिमान हो फिर भी भोजन के पदार्थों की संख्या कम करके जो त्याग किया जाता है, वह वास्तव में अत्यंत कठिन है।
4. **रस त्याग** : रस अर्थात् विगई। भक्ष्य विगई छः है। 1. दूध, 2. दही, 3. घी, 4. तेल, 5. गुड़, 6. पक्वान्न। इन छः विगइयों में से सभी का अथवा एक-दो का त्याग करना रस त्याग तप है। विगइयों के सेवन से आहार की आसक्ति बढ़ती है, इसलिए विगई को विकृति-जनक ओर विगति (दुर्गति) का कारण भी कहा गया है।

इस तप के सेवन से आहार की आसक्ति घटती है अतः मुमुक्षु आत्माओं को अवश्य ही इस तप का प्रतिदिन सेवन करना चाहिये ।

5. **काय-क्लेश** : जिस तप में काया को इच्छा पूर्वक कष्ट दिया जाता है, उसे कायक्लेश तप कहते हैं । उदाहरण केश लुंचन करना, पादविहार करना, शरीर की शुश्रूषा का त्याग करना, विविध प्रकार के आसन करना इत्यादि । इस तप के नियमित आसेवन से सहनशीलता बढ़ती है और व्यक्ति अधिकाधिक कष्ट सहन करने में समर्थ बनता है ।

6. **संलीनता** : जिस तप में अंग-उपांग का संकोच किया जाता है, उसे संलीनता तप कहते हैं । एक ही आसन पर घंटों तक बैठना, एकांत व श्मशान भूमि आदि में कायोत्सर्ग आदि में खड़े रहना आदि संलीनता तप है ।

2) **अभ्यंतर तप** : जिस तप में आत्मगुणों का विकास मुख्य है । जो तप अभ्यंतर साधना रूप है तथा जिसका आसेवन करने पर भी, बाहर से न दिखने के कारण कोई तपस्वी नहीं कहता है अथवा यह तप गुप्त तथा अंतरंग होने के कारण अभ्यंतर तप कहलाता है । इसके छः भेद होते हैं ।

1. **प्रायश्चित** : मूलगुण अथवा उत्तर गुण, महाव्रत अथवा अणुव्रत आदि के पालन में जो कोई भी जान बुझकर अथवा अनजान में स्खलना हुई हो, उसको गुरु समक्ष प्रगट कर उस पाप की शुद्धि करना प्रायश्चित कहलाता है । प्रायश्चित का अर्थ है जिससे बहुलतया चित्त की शुद्धि हो । इस प्रायश्चित के आलोचन, प्रतिक्रमण, मिश्र, विवेक, कायोत्सर्ग, तप, पर्याय-छेद, मूल छेद, अनवस्थाप्यता तथा पारांचित ये दस भेद हैं ।

2. **विनय** : गुरु, ज्येष्ठ आचार्य तथा लौकिक उपकारी माता पिता आदि का विनय बहुमान करना । विनय से आत्मा के कर्म का विनयन (विगमन) होता है । मोक्ष के साधनभूत ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र के उपकरण तथा उनके धारक का बहुमान करना, विनय तप है ।

3. **वैयावच्च** : निराशंस भाव से तथा कर्म क्षय के निमित्त साधु समुदाय की सेवा भक्ति करना वैयावच्च तप है । वैयावच्च एक अप्रतिपाती गुण है । इस तप की साधना अत्यंत कठिन है । अपने उपकारी गुरुदेव, आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, बाल ग्लान, साधर्मिक तथा कुल व गण के साधुओं की सेवा भक्ति करने से महान् कर्म निर्जरा होती है ।

4. **स्वाध्याय** : ज्ञानाचार के नियमों के पालन पूर्वक शास्त्रीय ग्रंथों का पठन-पाठन करना, स्वाध्याय नाम का चौथा अभ्यंतर तप है । स्वाध्याय से ज्ञान वृद्धि होती है, और ज्ञान से सन्मार्ग का बोध होता है । स्वाध्याय के 5 भेद है ।

● **वाचना** : गुरु मुख से पाठ ग्रहण करना ।

● **पृच्छना** : शंकास्पद पदार्थों का स्पष्टीकरण करना ।

● **परावर्तना** : किये हुए अभ्यास का पुनः आवर्तन करना ।

● **अनुप्रेक्षा** : ग्रहण किये पाठ के विषय में तत्त्व चिंतन, मनन करना ।

● **धर्मकथा** : तत्त्व की चर्चा करना, विचार विमर्श करना, उपदेश देना आदि ।

6. **ध्यान** : ध्यान अर्थात् मन को एकाग्र करना । यहां ध्यान तप से तात्पर्य आत्म हितकर शुभपदार्थों में मन को एकाग्र करना ।

शुभ ध्यान के दो भेद हैं धर्म ध्यान और शुक्लध्यान ।

● **धर्म ध्यान के पुनः चार भेद हैं ।**

● **आज्ञा विचय** : परमात्मा की आज्ञा तथा उसके माहात्म्य का चिंतन करना ।

● **अपाय विचय** : राग द्वेष से होने वाले अनर्थों का चिंतन करना ।

● **विपाक विचय** : कर्म के शुभ तथा अशुभ फल का चिंतन करना ।

● **संस्थान विचय** : विश्व के स्वरूप का चिंतन करना ।

### **शुक्लध्यान के भी चार भेद होते हैं ।**

1. **पृथक्त्व वितर्क सविचार** : श्रुतज्ञान के आलंबन द्वारा जड तथा चेतन के विभिन्न पर्यायों का विचार करना ।

2. **एकत्व वितर्क निर्विचार** : श्रुत ज्ञान के आलंबन द्वारा आत्मादि द्रव्य के एक ही पर्याय का चिंतन करना । इस ध्यान की पूर्णाहूति के साथ ही आत्मा घाति कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त करती है ।

3. **सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती** : मन वचन तथा काया की सर्व प्रवृत्तियों का निरोध करना ।

4. **समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्ति** : आत्म प्रदेश के सर्वथा निष्कंप होने पर यह ध्यान होता है इस ध्यान का काल पाँच हस्ताक्षर (अ इ उ ऋ लृ) के उच्चारण जितना ही है । इस ध्यान के साथ ही आत्मा सर्व कर्मों का क्षय कर अजरामर पद प्राप्त करती है ।

5. **कायोत्सर्ग** : काय + उत्सर्ग अर्थात् काया की ममता का त्याग । अनादिकाल से जो देह की ममता रही हुई है, उसके त्याग का अभ्यास कायोत्सर्ग तप के द्वारा किया जाता है । प्रारम्भिक अवस्था में साधक मर्यादित श्वासोच्छ्वास पर्यंत (काया की ममता के त्याग के लिए) कायोत्सर्ग करता है और धीरे धीरे उसमें वृद्धि कर सकता है । कायोत्सर्ग में शुभध्यान ही किया जाता है ।

जीव बिना शरीर (कलेवर) का कोई मूल्य नहीं ।  
सुगंध बिना फूल की कोई कीमत नहीं ।  
जड बिना वृक्ष का अस्तित्व नहीं,  
बस, इसी प्रकार भाव बिना धर्म नहीं ।

दान आदि क्रियाएँ अपनैँ वास्तविक फल को देने में तभी समर्थ बनती हैं, जब उनके साथ भाव जुड़ा हुआ हो !

ठीक ही कहा है

**यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशुन्याः ।**

भाव रहित चाहे कितनी ही क्रियाएँ की जाय, वे क्रियाएँ कभी भी मोक्ष नहीं दे सकती ।

दान भी दानधर्म तभी बनता है, जब उसके साथ भाव जुड़ा हुआ हो । शील और तप भी धर्मरूप तभी बनते हैं, जब उनके साथ भाव जुड़ा हुआ हो ।

जिनेश्वर भगवंतो ने धन की आसक्ति तोड़ने के लिए दान धर्म बतलाया है, अतः यदि दान देते समय दाता के दिल में यह भाव हो कि इस दान के प्रभाव से मेरी अन्तरात्मा में रही हुई धन की मूर्च्छा दूर हो, तब वह दान, दानधर्म कहलाता है । नाम, यश, कीर्ति आदि की इच्छा से या परलोक में देवदेवेन्द्र या चक्रवर्तीपद पाने की लालसा से कोई अनुष्ठान किया जाय तो वह अनुष्ठान क्रमशः विष और गरल अनुष्ठान बन जाता है, अतः प्रत्येक धर्मानुष्ठान के पीछे मुक्ति की तीव्र अभिलाषा का भाव अवश्य होना चाहिये ।

कहा भी है

**'भावे भावना भाविए, भावे दीजे दीज दान ।**

**भावे जिनवर पूजिए, भावे केवल ज्ञान ॥'**

भाव धर्म में तो केवलज्ञान प्रदान करने की ताकत है-

i श्रेष्ठीपुत्र गुणसागर लग्न मंडप में बैठे हुए थे । आठ-आठ श्रेष्ठी कन्याओं के साथ पाणि-ग्रहण की क्रियाएँ चल रही थीं । चारों ओर लग्न के गीत गाए जा रहे थे । सभी लग्नोत्सव की मस्ती में डूब रहे थे । परन्तु गुणसागर तो भाव धर्म की मस्ती में चढ गए थे । वे सोच रहे थे -

**'संयम लइ सदगुरु कने, श्रुत भणशुं सुखकारी रे ।**

**समता रसमां झीलशुं, काम कषाय ने वारी रे ॥'**

ओहो !

**'मेरे जीवन में सोने का सुरज कब उगेगा, जब मैं मोह माया के बंधनों को तोड़कर सदगुरु के पास संयम धर्म स्वीकार करूँगा...और उसके बाद जिनवचन रूप श्रुत का अध्ययन करूँगा...फिर काम-क्रोध आदि अंतरंग शत्रुओं को उखाड़कर समतारस में स्नान कर अपनी आत्मा को पावन बनाऊँगा ।'**

मोह माया के जाल स्वरूप लग्न मंडप में भी गुणसागर के कैसे ये अद्भूत विचार थे ?

लग्न की क्रियाएँ चल रही थी, परन्तु उन क्रियाओं से उन्हें कुछ भी लेना-देना नहीं था, वे तो मस्त बन गए थे-भावी में श्रमण जीवन को स्वीकार करने के ध्यान में !

बस, इसी भावधर्म की धारा में आगे बढ़ते गुणसागर को उसी लग्नमंडप में केवल ज्ञान हो गया ।

यह है भाव धर्म का अद्भूत चमत्कार ! ...और उसके बाद तो परिणाम की धारा में चढते चढते उन आठ श्रेष्ठी कन्याओं को भी केवलज्ञान हो गया । ओहो ! यह लग्न मंडप ही केवलज्ञान मंडप में बदल गया ।

i भगवान महावीर प्रभु के रोग निवारण के लिए सिंह अणगार मुनि, रेवति श्राविका के वहा औषध लेने के लिए पधारे है ।

रेवती श्राविका अत्यंत ही उत्त्लासपूर्वक गद्गद् होकर सिंहमुनि को कोलापाक बहोरा रही थी...और उसी समय रेवती श्राविका के भावों में ऐसी वृद्धि हुई कि इसके फल स्वरूप उसने तीर्थकर नाम कर्म उपार्जित कर लिया ।

i भगवान महावीर प्रभु वैशाली नगरी के कामदेव के आयतन में चातुर्मास हेतु रहे । मेरु की तरह निष्प्रकंप परमात्मा चार महिने के उपवास कर प्रतिमा में स्थिर रहे ।

परमात्मा के इस स्वरूप को देखकर जीर्णश्रेष्ठी के दिल में प्रभु के प्रति अपूर्व भक्ति भाव जागृत हुआ ।

चातुर्मास की पूर्णाहुति के दिन जीर्णश्रेष्ठ के दिल में एक शुभ भाव उत्पन्न हुआ कि यदि प्रभु आज मेरे घर गोचरी के लिए पधारे तो मेरा जन्म सफल हो जाय । इस प्रकार की भाव धारा में वह आगे बढ़ने लगा ।

इधर भगवान अभिनव श्रेष्ठी के घर पधारे और उसने यथोचित दान देकर प्रभु को पारणा कराया । उसी समय जृम्भक देवताओं ने स्वर्ण की वृष्टि की और आकाश में देव दुंदुभि का नाद हुआ । इस देव दुंदुभि के नाद को सुनते ही जीर्णश्रेष्ठी को ख्याल आ गया कि प्रभु का पारणा हो गया...अब प्रभु मेरे घर नहीं पधारेंगे । उसके परिणाम की धारा रुक गई । कहते हैं कि यदि उसे उस



समय देव दुंदुभि का नाद सुनाई नहीं देता तो उसे केवलज्ञान हो जाता ।

फिर भी उस परिणाम की धारा के फलस्वरूप उसने 12वें देवलोक के आयुष्य का बंध किया ।

इस प्रसंग से हमें भावधर्म के महत्व का ख्याल आ जाता है ।

i एक सेठ के घर एक ज्ञानी गुरुभगवंत गोचरी के लिए पधारें । वह सेठ अत्यंत ही भाव से मुनि को घी बहोराने लगा । मुनि का पात्र घी से भरने लगा . . . फिर भी मुनि ने मना नहीं किया । यह देख सेठ के मन के परिणाम गिरने लगे, वे सोचने लगे, ये मुनि इतना घी क्या करेंगे ? इस विचार के साथ घी बहोराने की गति धीमी हो गई । यह दृश्य देख मुनि बोले 'गिरो मत ! गिरो मत !'

मुनि के इन वचनों को सुनकर सेठ को आश्चर्य हुआ, वे बोले, 'मैं कहां गिर रहा हूँ ?'

मुनि ने कहा, 'द्रव्य से नहीं, भाव से गिर रहे हो । घी बहोराने बहोराने तुम्हारे मन के परिणाम इतने चढ गए थे कि तुम 12वें देवलोक के आयुष्य का बंध कर सकते थे, किंतु मन के परिणाम टूटने से तुम नीचे गिरते गए और अब पहले देवलोक के आयुष्य का बंध हो, ऐसे परिणाम हैं, इसलिए मैं कह रहा हूँ कि तुम गिरो मत ।

मुनि की इस बात को सुनकर सेठ को पश्चात्ताप हुआ परन्तु अब क्या हो सकता था ?

इस छोटे से प्रसंग से ख्याल आ जाता है कि भाव से जुड़ा हुआ धर्म ही महान् फल देने में समर्थ बनता है । भाव रहित होकर कुछ भी किया जाय, उसका इतना फल नहीं मिल सकता ।

i सुव्रत मुनि महातपस्वी थे ।

वे मासक्षमण के पारणों मासक्षमण करते थे ।

ज्ञानियों का वचन है - काया को जीतना सरल है परन्तु रसना को जीतना कठिन है ।

महिनें महिनें के उपवास करने वाले सुव्रत मुनि एक बार रसना के आगे हार खा गए ।

एक बार मासक्षमण के पारणों में किसी श्रावक ने उन्हें 'सिंह केसरिया मोदक' बहोराया । मोदक तो उन्होंने वापर (खा) लिया, किंतु उसका स्वाद उनकी दाढ़ों में रह गया । महिनें के उपवास चालू हो गए . . . परन्तु उसकी याद

उन्हें पुनः पुनः सताने लगी । याद ही याद में महिना पूरा हो गया और एक सुबह वे भिक्षा के लिए निकल पड़े ।

सिंह केसरिया की याद में वे 'धर्मलाभ' कहना भी भूल गए । वे जिस घर में जाते 'सिंह केसरिया' बोलने लगे और जब उन्हें सिंह केसरिया नहीं मिलता तो वे वापस लौट जाते । इस प्रकार घूमते घूमते उन्हें सुबह से शाम हो गई । सूर्य अस्त हो गया . . . परन्तु उनका घूमना चालू ही रहा । सिंह केसरिया के पीछे रहे पागलपन को एक श्रावक समझ गया । उसने मुनिवर को अपने घर बुलाया और उनके पात्र में सिंह केसरियां बहोराने लगा ।

सिंह केसरिया मोदक को देख मुनिवर प्रसन्न हो गए । परन्तु उन्हें यह ख्याल नहीं रहा कि पारणों की वेला बीत चुकी है और अभी रात हो चुकी है ।

सिंह केसरिया मोदक को पाकर खुश हुए मुनिवर को उस श्रावक ने पूछा, 'भगवंत ! नवकारशी का पचवक्खाण दोगे ।'

'क्यों नहीं ?'

तत्क्षण मुनिवर ने उस श्रावक को नवकारशी का पचवक्खाण दिया ।

उसके बाद उस श्रावक ने कहा, 'भगवंत ! नवकारशी के पचवक्खाण में अभी कितनी देरी है ?'

नवकारशी का समय जानने के लिए होश में आए मुनिवर ने आकाश की ओर नजर की । आकाश में टिमटिमाते हुए तारों को देखकर वे एकदम शर्मिंदा हो गए . . . तत्क्षण उन्हें अपनी भूल ख्याल में आ गई । वे पश्चात्ताप की आग में अपनी आत्मा को सेकने लगे ।

मोदक लेकर वे निर्जीव भूमि में गए और वहा मोदक को परठते परठते आत्मा के शुद्ध स्वरूप के ध्यान में तल्लीन बन गए । वहीं पर वे क्षपक श्रेणि पर आरूढ हो गए . . . और तत्क्षण केवली बन गए ।

सुव्रत मुनि के इस छोटे से किंतु महत्वपूर्ण प्रसंग से ज्ञात होता है कि जब वे भाव धर्म से जुड़े तो मोदक परठने की क्रिया से भी उन्हें केवल ज्ञान हो गया और जब तक सिंह केसरिया मोदक की आसक्ति से जुड़े थे, तब तक मासक्षमण जैसी उग्र तपश्चर्या करने पर भी उन्हें केवलज्ञान नहीं हुआ ।

भाव श्रावक इन चार प्रकार के धर्मों की आराधना करने के लिए सदैव उद्यमशील रहता है ।

भावश्रावक के 17 गुणों में 12 वें नंबर का गुण है - धर्म गौरव ! धर्म गौरव अर्थात् वीतराग प्ररूपित सद्धर्म की प्राप्ति की अपूर्व खुमारी ! इस अपूर्व खुमारी के कारण भावश्रावक को श्रावक जीवन के आचार पालन में कही भी शर्म या संकोच का अनुभव नहीं होता है ।

जहां इस प्रकार के धर्म गौरव का अभाव होता है, वहां झूठी लोक लज्जा के भय से श्रावकोचित बाह्य आचारों के पालन में संकोच का अनुभव होता है ।

देवाधिदेव वीतराग परमात्मा की पूजा में श्रावक के लिए धोती और खेश, अखंड वस्त्र का ही शास्त्रीय विधान है, किंतु जब जीवन में स्वधर्म की खुमारी नहीं होती है, तभी ऐसे व्यक्ति को धर्मगौरव के अभाव में परमात्मा की पूजा में धोती और खेश पहिनते समय शर्म का अनुभव होता है और इसी शर्म के कारण ऐसे व्यक्ति पाजामें और शर्ट का उपयोग करते हैं ।

दुःख की बात तो यह है कि वर्ष दरम्यान एक ही बार संवत्सरी का प्रतिक्रमण करने वाले कई जैनों के दिल में 'धर्म गौरव' का अभाव होने के कारण ही संवत्सरी प्रतिक्रमण के लिए घर से निकलते समय प्रतिक्रमण के मुख्य उपकरण रूप चरवला ले जाने में संकोच का अनुभव होता है -

संवत्सरी प्रतिक्रमण करनेवाले सैकड़ों की संख्या में होते हैं किंतु लगभग 50% लोग न तो चरवला लेकर आते हैं और न ही धोती पहिनते हैं । वे पेंट-पाजामा पहिनकर के ही कटासने पर बैठ जाते हैं...और खडे होकर विधिपूर्वक प्रतिक्रमण करने की शक्ति होने पर भी बैठे बैठे ही प्रतिक्रमण करते हैं ।  
...कइयों को मंदिर में पंचांग प्रणिपात खमासमण देते हुए भी संकोच का अनुभव होता है ।

हजारों रुपयों का दान करनेवाले व्यक्ति को भी जिनमंदिर में दर्शन व पूजन के लिए जाते समय, पूजा की पेटी या चावल का बटुआ लेकर जाने में संकोच का अनुभव होता है ।

कई जैन नवयुवक, 'अपने मित्रों को बुरा न लग जाय' इस हेतु वे हॉटल में भी चले जाते हैं और वहां शराब, मांसाहार व कंदमूल का भक्षण भी कर लेते हैं ।

जो लघुता की ग्रंथि Inferiority Complex से पीडित है, ऐसे व्यक्तियों

में लगभग धर्म गौरव कम ही देखने को मिलता है ।

लोक व्यवहार में टी.वी., विडियों, फ्रीज, फोन, फर्नीचर आदि समृद्धि के स्टेटस् कहलाते हैं । परंतु ये सभी साधन हिंसा व विलासता को ही प्रोत्साहन देने वाले हैं । यदि जीवन में 'धर्म गौरव' नहीं होगा तो 'मेरे घर में टी.वी. नहीं है...तो लोग क्या कहेंगे ?' ...इस प्रकार सोचकर व्यक्ति अपने घर में टी.वी. बसा देगा ।

लोक प्रवाह में आकर जो व्यक्ति धर्म के आचारों को अथवा सिद्धांतों को खूटी पर टांग देता है, ऐसे व्यक्ति दृढतापूर्वक मोक्षमार्ग में आगे बढ़ नहीं पाते हैं ।

आत्मकल्याण की सच्ची भूख जिसे लगी हो, ऐसे व्यक्ति तो हर संयोग व हर परिस्थिति में जिनाज्ञा को ही आगे करके चलता है । साधक आत्मा के लिए जिनाज्ञा ही मुख्य प्राण होती है । जिनाज्ञा को ही आगे करके वह आत्मा अपनी जीवन व्यवस्था सेट करती है । जो व्यक्ति अवसरवादी है, अर्थात् अवसर देखकर सिद्धांत को बदलने के लिए तैयार हो जाते हैं, ऐसे व्यक्ति कभी भी मुक्ति मार्ग में आगे बढ़ नहीं पाते हैं ।

गलत कार्य करने में लज्जा शर्म आती हो तो उसे अवश्य गुण रूप मान सकते हैं । गलत कार्य करते समय लज्जा आनी ही चाहियें ।

वर्तमान में बाह्य धर्म का आचरण करनेवाले तथाकथित धर्मियों के जीवन में इस प्रकार की विसंवादिता अवश्य देखने को मिलती हैं वे लोग, लोकरंजन के लिए बहुत कुछ त्याग व बहुत कुछ दान भी कर देंगे जब कि वास्तविक त्याग की बात आएगी, वहां थोड़े से भी दान के लिए आनाकानी कर देंगे ।

बाह्य धर्माचरण/ क्रिया कांड और वास्तविक धर्म में बहुत बड़ा अंतर है । आंतरिक परिणति के अभाव में जो धर्मक्रियाएं की जाती हैं, उनमें लोकरंजन की प्रधानता अधिक होती है ।

उदाहरण के तौर पर पुण्य के उदय से मधुरकंठ मिला हो ऐसे व्यक्ति में आंतरिक परिणति का अभाव होगा तो वह व्यक्ति लोगों को खुश करने के लिए प्रभु भक्ति का दिखावा कर प्रभु के सामने मधुरकंठ से घंटों तक एक ही गीत को दोहराएगा...जिसे सुनकर श्रोतागण भावविभोर हो जाएंगे...जबकि उसी व्यक्ति को एकांत में प्रभुभक्ति के गीतगान का अवसर आएगा तो दो पांच मिनट में ही स्तवन पूरा कर देगा ।

जनरंजन अलग वस्तु हैं और आत्मरंजन अलग वस्तु है ।

धर्म की सभी क्रियाएं यदि आत्मरंजन के लिए होती हो तो वे क्रियाएं अत्यंत

ही मूल्यवान हैं, जबकि आत्मरंजन के अभाव में सिर्फ जनरंजन के लिए जो क्रियाएं होती हैं, उन दानादि क्रियाओं का आध्यात्मिक जगत् में कोई मूल्य नहीं है।

दुनिया तो दो रंगीली हैं, आज जिसे वह फूलों का ताज पहिनाती हैं, कल उसे कांटों का हार पहिना सकती है। आज जिसके ऊपर प्रशंसा के फूल बरसा रही होती है, कल उसके ऊपर गालियों की बौछार भी कर सकती है।

### महासती सीता का संदेश

जिस सीता को पाने के लिए रामचंद्रजी ने रावण के साथ भयंकर युद्ध खेला था..उस सीता को प्राप्त कर रामचन्द्रजी ने अयोध्या में प्रवेश किया। महासती सीता गर्भवती बनी..और उस समय अचानक ही रामचन्द्रजी के हृदय में महासती सीता के पवित्र चरित्र के विषय में संदेह उत्पन्न हुआ और सीता को कुछ भी पूछताछ किए बिना सीता को भयंकर जंगल में भिजवा दिया।

भयंकर जंगल में पहुँचने के बाद सारथी ने सीता को रथ में से नीचे उतरने की आज्ञा की...यह सुनकर सीता स्तब्ध हो गई। उसके आश्चर्य का पार न रहा।

'अहो यह क्या ? मेरे हृदय मंदिर में राम के सिवाय अन्य किसी की प्रतिष्ठा नहीं है, फिर यह सजा क्यों ? सीता सोचती है लेकिन कोई समाधान नहीं मिल पाता है।

कुछ समय बाद जब सारथी अपने रथ को वापस अयोध्या की ओर लौटाने लगा तब सारथी ने सीता को कहा, 'सीताजी ! मैं वापस अयोध्या जा रहा हूँ, वहाँ रामचन्द्रजी को कुछ संदेश कहलाना है ?'

सीता ने कहा, 'सारथी ! तू अयोध्या जा रहा है तो मेरे स्वामीनाथ को मेरा संदेश कहना, 'आपने मेरी कुछ भी परीक्षा किए बिना सिर्फ लोकप्रवाह में आकर मेरा त्याग कर दिया, खैर सीता के त्याग से आपको कोई विशेष नुकसान नहीं होगा, परंतु मेरी एक विनम्र विनंति है कि लोकप्रवाह में आकर जिनधर्म का त्याग मत करना, क्योंकि दुनिया दो रंगीली हैं, उसके वचन का कोई भरोसा नहीं है।'

कितनी मार्मिक बात कही है सीताजी ने !

### लोकप्रवाह में न बहे

सद्धर्म के आचारों के पालन में श्रावक को दृढ मनोबली बनना चाहिये ! अज्ञानी व्यक्तियों की निंदा के भय से अपने बाह्य आचारों में पालन में शिथिल नहीं बनना चाहिये।

बहिर्भाव-पौद्गलिक भाव का त्याग कर जब आत्मा समता रस में निमग्न बनती है, तब उसके द्वारा अनुभव किए गए आनन्द का वर्णन वाणी से शक्य नहीं है।

एक चक्रवर्ती और इन्द्र भी जिस सुख का अनुभव नहीं कर सकते, उस सुख का अनुभव समता रस में निमग्न साधक कर सकता है।

अन्य सब रसों के विषय पार्थिव पदार्थ है। हास्यादि रस की प्राप्ति भी पराधीन है और उससे जन्य आनन्द भी क्षणिक है जबकि शान्तरस में बाह्य पदार्थों का त्याग होता है, इस रस की प्राप्ति स्वाधीन है और इसकी प्राप्ति के लिए किसी भी प्रकार का धन व्यय नहीं करना पड़ता है।

भगवान महावीर परमात्मा ने इसी रसाधिराज समता रस के द्वारा अन्तरंग क्रोधादि शत्रुओं का नाश कर विजयश्री प्राप्त की थी।

सर्व मंगलों के निधान समान शान्त रस जिसके हृदय में स्थान पाता है, वह निरुपम सुख को प्राप्त करता है और मुक्ति का सुख उसके एकदम अधीन बन जाता है। हे विद्वज्जनो ! ऐसे शान्त रस का तुम सेवन करो।

केवल पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त कर लेने मात्र से कोई व्यक्ति पण्डित नहीं बन जाता। पण्डित तो उसी को कहते हैं जिसके पास बुद्धि है, विवेक है, सोचने और समझने की शक्ति है। ऐसे पण्डितजन ही सन्मार्ग को ग्रहण करने और पालन करने में समर्थ बनते हैं। इसीलिए पण्डित/ बुधजनों को सम्बोधित करके ही उपदेश दिया जाता है। मूर्ख को दिया गया उपदेश तो 'भैंस के आगे भागवत' की तरह एकदम निष्फल ही जाता है।

**समता रस सर्व मंगलों का निधान है। विघ्नों का नाश करे, उसे मंगल कहते हैं। दुनिया में मंगल तो बहुत कहलाते हैं परन्तु उनसे एकान्ततः विघ्नों का नाश नहीं होता है, जबकि रसाधिराज समता रस विघ्नों का समूलतः नाश करने में समर्थ है।**

विघ्नों का मुख्य कारण पापकर्म का उदय है। पापोदय से ही जीवन में दुःख, संकट और विघ्न आते हैं।

जहाँ समता है, वहाँ नये कर्मों का बन्ध नहीं है, इतना ही नहीं, समता से पूर्वकृत कर्म भी क्षीण हो जाते हैं।

अत्यन्त निकाचित कर्म के उदय से कदाचित् जीवन में भयंकर दुःख आ जाय तो भी समतावान् आत्मा उन कष्टों को अत्यन्त समाधिपूर्वक सहन कर

लेती है ।

जहाँ समता का वास होता है, वहाँ कर्मों का जोर भी घट जाता है । समता और कर्म का संघर्ष चलता है और इस संघर्ष में अन्त में समता ही विजयी बनती है ।

जिसके हृदय में समता का वास है, वह आत्मा अनुपम सुख का अनुभव करती है । दुनिया के अन्य भौतिक व सांसारिक सुखों की अन्य के साथ तुलना की जा सकती है, जबकि समताजन्य सुख की तुलना किसी के साथ सम्भव नहीं है ।

समताधारी आत्मा के लिए तो मोक्ष हथैली पर है ।

- याद करें - गजसुकुमालमुनि को ! खंधकमुनि को !!
- याद करें - समरादित्य केवली को ! मेतारजमुनि को !!
- याद करें - कमठ के भयंकर उपसर्गों में अपूर्व समता को धारण करने वाले पार्श्वनाथ प्रभु को !
- याद करें - संगमदेव के मरणान्त व भयंकर 20 उपसर्गों को समतापूर्वक सहन करने वाले महावीर प्रभु को !

जिसके पास समता है, उसके लिए मुक्तिरूपी मंजिल दूर नहीं है ।

हे मुमुक्षु ! तू समता में तल्लीन चित्त वाला बन । स्त्री, पुत्र और अपने देह की ममता का त्याग कर दे । विषयों और कषायों के अधीन मत बन । शास्त्र रूपी लगाम के द्वारा अपने चित्त को वश कर । वैराग्यपूर्वक शुद्ध धर्म वाला बन । देव आदि के शुद्ध स्वरूप का ज्ञाता बन । विरति को धारण कर । संवर वाला बन । अपनी चित्तवृत्तियों को शुभ बना और समता के रहस्य को जान ।

हे भव्यात्मन् ! सर्व प्रथम तुम अपने मन को समता भाव में जोड़ दो । समता के साथ यदि मन को जोड़ दोगे तो तुम्हारी अध्यात्म साधना निरन्तर आगे बढ़ती जाएगी ।

समता को दृढ बनाने के लिए ममता का त्याग जरूरी है । ममता से समता का नाश होता है । अतः समता के रक्षण और पोषण के लिए स्त्री, पुत्र, धन और देह की ममता का त्याग करना अत्यन्त जरूरी है । स्त्री, पुत्र आदि राग के बाह्य साधन हैं, उनके संग से राग की अभिवृद्धि होती है । अतः उनकी ममता का त्याग करो ।

बाह्य पदार्थों की ममता के विसर्जन के लिए इन्द्रिय जय भी अनिवार्य है । पाँचों इन्द्रियों के अनुकूल विषयों के सेवन से ही स्त्री, पुत्र-धन और देह पर राग पैदा होता है, अतः अपने चित्त में से राग की मलिनता दूर करने के लिए

विषय प्रमाद का त्याग करना चाहिये ।

विषय और कषाय दोनों संसारवर्धक हैं । अतः विषय के त्याग के साथ साथ कषाय का भी त्याग करना चाहिये ।

जहाँ कषाय जीवित हैं, वहाँ समता का अस्तित्व संकटग्रस्त बन जाता है । अतः समता के रक्षण के लिए जीवन में से क्रोध-मान-माया और लोभ रूप कषायों का भी त्याग करना चाहिये ।

अपने मन-वचन और काया को विषय-कषाय से मुक्त बनाने के लिए सतत शास्त्र स्वाध्याय भी जरूरी है । मन को वश में रखने के लिए स्वाध्याय लगाम समान है । अतः वह लगाम भी सदैव हाथ में रखनी चाहिये ।

मन ही मनुष्य के उत्थान और पतन का कारण है । निरंकुश मन पतन में और अंकुशयुक्त मन उत्थान में कारण बनता है । अतः आत्म साधना के लिए मनोनिग्रह अत्यन्त ही जरूरी है । मन को वश में करने के लिए स्वाध्याय-जाप-ध्यान और भावना श्रेष्ठ उपाय है । शुभ ध्यान में मन को जोड़े रखने से वह मन आत्मोत्थान का कारण बनता है...और आत्मा तीव्रगति से विकास के पथ पर आगे बढ़ सकती है ।

राग-द्वेष-मोह आदि आत्मा के रोग हैं । जब तक आत्मा इन रोगों से सर्वथा मुक्त न बन जाय तब तक वैराग्य की भावनारूपी औषधि से आत्मा को भावित बनाए रखना अत्यन्त ही जरूरी है । क्योंकि दुर्ध्यान का भय सतत रहा हुआ है । मोहराजा के दुर्ध्यान रूपी प्रेत चारों ओर घूम रहे हैं, अतः अवसर पाते ही ये प्रेत/पिशाच आत्मा को हैरान करने लग जाते हैं ।

जीवन की हर प्रवृत्ति के साथ भावना का सम्बन्ध होना चाहिये । जैसे सुन्दर पक्वान्न / मिष्ठान्न का भोजन कर रहे हो तब मन में सोचे- 'आज इस भोजन के सुन्दर पर्याय को देखकर आनन्द आता है, किन्तु दूसरे दिन तो यह दुर्गन्धित विष्टा में ही परिवर्तित होने वाला है । अरे ! दूसरे दिन की तो बात ही जानें दें । एक बार मुँह में डालने के बाद पुनः उस भोजन को बाहर निकाला जाय तो भी उसके प्रति कौन प्रेम करता है ?' इस प्रकार भोजन के भावी पर्याय का विचार कर मन को समझाएं कि इस भोजन में राग करने की आवश्यकता नहीं है ।

नवयौवना स्त्री के रूप को देखकर राग पैदा हो तो सोचें - 'अरे ! गौरी चमड़ी के बारदान में क्या पड़ा है ? इसके भीतर तो मल-मूत्र व दुर्गन्धित पदार्थ भरे हुए हैं और यह सुन्दर रूप का पर्याय भी कहाँ स्थिर हैं ? आज सुन्दर दिखाई देने वाला रूप क्षण भर बाद अत्यन्त कुरूप बन जानेवाला है ।

कुष्ठ रोग, कैंसर आदि इसी देह के भीतर सुषुप्त रूप से पड़े हुए हैं, अतः इस देह से क्या राग करना ?'

राजा, चक्रवर्ती और देवेन्द्र को सभी इन्द्रियों के पदार्थों द्वारा जिस सुख का अनुभव होता है, वह समता रूपी अमृत सागर के आगे बिन्दु तुल्य भी नहीं है, अतः तुम उसका आदर करो ।

सामान्य प्रजाजन की अपेक्षा एक राजा के पास भौतिक सुख सामग्री अधिक होती है, अतः वह सामान्य मानव की अपेक्षा अधिक सुख का अनुभव करता है । सामान्य राजा की अपेक्षा एक चक्रवर्ती के पास अत्यधिक भौतिक सुख सामग्री होती है । चक्रवर्ती छह खण्ड का अधिपति होता है । देवांगनाओं जैसी 64000 स्त्रियों का वह स्वामी होता है । 32000 मुकुटबद्ध राजा उसके चरणों में नमस्कार करते हैं । नौ निधियाँ और आठ सिद्धियाँ उसके पास होती हैं ।

ऐसे चक्रवर्ती की अपेक्षा एक इन्द्र की ऋद्धि अपरम्पार है । इन्द्र का आयुष्य भी पत्योपम और सागरोपम प्रमाण होता है । वह क्षण भर में अपने अभीष्ट को सिद्ध कर सकता है । इन्द्र की भौतिक ऋद्धि सिद्धि व सम्पत्ति का कोई पार नहीं है ।

राजा, चक्री व इन्द्र के पास अमाप भौतिक सुख सम्पत्ति होते हुए भी, एक समता में लीन योगी जिस अन्तरंग सुख का अनुभव करता है उसके सामने राजा आदि का सुख एक बिन्दु तुल्य भी नहीं है ।

कहाँ एक विराट् महासागर और कहाँ एक बिन्दु ! समता का सुख केवल अनुभवगम्य है । ममता में डूबे हुए व्यक्ति को उसकी कल्पना भी कैसे हो सकती है !

**पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः,**

**क्षारं जलं जलनिधेरशितुं क इच्छेत् ।**

अरे ! जिसने चन्द्रमा की कान्ति समान समुज्ज्वल क्षीरसागर के जल का आस्वादन किया हो, ऐसा कौन व्यक्ति लवण समुद्र के खारे जल को पीने की इच्छा करेगा ?

बस ! जिसने जीवन में एक बार भी समता रूपी अमृत सागर के जल बिन्दुओं का स्वाद चख लिया हो, फिर वह कौन मूर्ख होगा जो ममता के विषपान के लिए प्रयत्न करेगा ?

जहर के भरे हुए कटोरे से जो तृप्ति और आनन्द नहीं मिलता है, वह आनन्द अमृत की एक बिन्दु के आस्वाद से प्राप्त हो जाता है ।

अतः हे भव्यात्मन् ! बाह्य पौद्गलिक पदार्थों के भोगजन्य सुख में आकर्षित होने के बजाय तू समता रूपी अमृत के पान के लिए प्रयत्न कर ।

संसार में सभी आत्माएँ कर्माधीन हैं । कर्म के दो भेद हैं - शुभ और अशुभ । शुभकर्म के उदय से सुख-अनुकूलता आदि की प्राप्ति होती है और अशुभ कर्म के उदय से दुःख प्रतिकूलता आदि की प्राप्ति होती है । शुभाशुभ कर्म का उदय सतत चलता रहता है, जिसके फलस्वरूप आत्मा कभी सुख का अनुभव करती है तो कभी दुःख का अनुभव करती है । कर्म की विचित्रता के कारण आत्मा कभी राजा का पात्र भजती है तो कभी रंक का । कभी शूरवीर बनती है तो कभी कायर, कभी स्वामी बनती है तो कभी सेवक ।

संसार में जीवात्मा को स्वकृत कर्म के अनुसार ही जन्म धारण करना पड़ता है । यदि हर व्यक्ति को अपनी अपनी इच्छा के अनुसार ही जन्म मिलता हो तब तो इस संसार में कौन दुःखी रहता ? परन्तु नहीं, जीवात्मा का जन्म स्वैच्छिक नहीं, किन्तु कर्म प्रेरित है ।

जीवन में प्राप्त होने वाली सभी अनुकूलताएँ-प्रतिकूलताएँ कर्मप्रेरित होते हुए भी कर्म-फलभोक्ता की विचारधारा के अनुसार प्राप्त सुख-दुःख के संवेदन में काफी अन्तर पड़ जाता है ।

अनुकूलता और प्रतिकूलता इन दोनों के बीच मोहाधीन आत्मा विह्वल और अस्थिर बनी हुई होती है । अनुकूलता में वह आसक्त बनती है तो प्रतिकूलता में दीन । सुख को पाकर वह हर्षित बनती है तो दुःख को पाकर शोकातुर ।

सुख व अनुकूलता को पाकर जो व्यक्ति जितना अधिक हर्षित बनता है, वह व्यक्ति सुख के चले जाने पर उतना ही अधिक दुःखी बनता है ।

परन्तु माध्स्थ्य भाव को जिन्होंने अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया है अर्थात् जिनकी चित्तवृत्ति समत्व की प्राप्ति के कारण एकदम स्थिर बनी हुई है, ऐसे समत्वधारी मुनि सुख-दुःख की उत्कटता को पाकर अस्थिर नहीं बनते हैं । उनका हृदय गहरे सागर की भांति अत्यन्त ही गम्भीर और स्थिर होता है ।

जहाँ स्थिरता है...चंचलता का सर्वथा अभाव है, वहीं अन्तरंग सुख का अनुभव/ संवेदन हो पाता है । ठीक ही कहा है -

**सुखं स्वसन्निधावेव, स्थिरता दर्शयिष्यसि ।**

'हे आत्मन् ! सुख तो तेरे पास है । तू स्थिर बन । तुझे अवश्य ही सुख की प्राप्ति होगी ।'

विश्व के प्राणियों के विषय में आप एक क्षण भर के लिए भी समतापूर्वक

परहितचिन्ता रूप मानस मैत्री को धारण करोगे तो इस लोक और परलोक में ऐसा सुख मिलेगा जिसका कभी आपने अनुभव नहीं किया है ।

समताजन्य सुख का कितना गुणगान करें ? एक क्षण भर के लिए यदि आत्मा इस समता रस में निमग्न बन जाय तो उसे ऐसे सुख का अनुभव होगा जिसका उसे भूतकाल में कभी अनुभव नहीं हुआ है ।

समता का स्वरूप बताते हुए कहते हैं 'जगत् के समस्त प्राणियों के विषय में मैत्रीभाव धारण करो ।'

मैत्री अर्थात् परहितचिन्ता । अन्य के हित की चिन्ता करना । जहाँ स्वार्थ होता है, वहाँ तो मैत्री भाव हर प्राणी धारण करता है । अपनी सन्तान के प्रति मैत्री भाव तो क्रूर में क्रूर हिंसक प्राणी भी धारण करते हैं ।

कुतिया चूहे को देखकर उसे इतने जोर से दबोच लेती है कि चूहे के प्राण उसी वक्त निकल जाते हैं..परन्तु वही कुतिया जब अपने बच्चे को मुंह से उठाती है तब देखिए, वह कुतिया अपने बच्चे को एक दाँत भी लगाने नहीं देती । आखिर ऐसा क्यों ?

एक ही जवाब हैं - 'स्व-संतान के प्रति उसके दिल में ममत्व का भाव है । अर्थात् वह मोहजन्य मैत्री के कारण अपनी संतान की रक्षा करती है, उसका पालन और पोषण करती है । ऐसे मोहजन्य/स्वार्थजन्य मैत्री भाव को तो हमने अनेक बार आत्मसात् किया है और उस स्वार्थजन्य मैत्री भाव के कारण हमें आत्मा के वास्तविक सुख का अनुभव नहीं हो पाया है ।'

परन्तु जब जगत् के सभी प्राणियों के विषय में किसी भी प्रकार के भेदभाव को धारण किए बिना समदृष्टि से हित चिन्ता रूप मैत्री भाव धारण किया जाय तो उससे कल्पनातीत सुख का अनुभव होता है ।

मैत्री भाव के विषय में बोलना जितना सुकर है उतनी ही उसकी साधना कठिन है । मैत्री भाव के अन्तर्गत अपने शत्रु की भी हितचिन्ता का समावेश हो जाता है और यह तभी बन सकता है जब हृदय में से शत्रुता खत्म हो जाय ।

सचमुच, शत्रु को मिटाने के लिए 'शत्रु' को मारने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु उसके प्रति दिल में रही शत्रुता को खत्म करने की आवश्यकता है । शत्रुता के मिट जाने पर शत्रु तो स्वतः मिट जाएगा । वह शत्रु ही आपका मित्र बन जाएगा ।

जब तक हमारे शत्रु का अस्तित्व रहता है, तब तक हमारे दिल में भय बन रहता है, परन्तु मैत्री भाव से शत्रु का ही अभाव हो जाता है, तब शत्रुजन्य

भय कैसे रहेगा ?

जिसका न कोई मित्र है न कोई शत्रु । जिसका न कोई अपना हैं न कोई पराया । कषायरहित होने से जिसका मन इन्द्रियों के विषयों में रमण नहीं करता है । वास्तव में, वही परमयोगी है ।

सुख के साधन रूप दिखाई देने वाले उन धनादि के द्वारा सुख-प्राप्ति की इच्छा से तुम प्रतिसमय उन विषयों में मुग्ध बन जाते हो और समता रूपी तत्त्व में प्रीति नहीं करते हो ।

हे चेतन ! तू धन-पुत्र-परिवार आदि के द्वारा जीवन में सुख पाने की इच्छा करता है । तुझे धन आदि सुख के साधन दिखाई देते हैं, परन्तु यह तेरी निजी कल्पना ही है ।

जिस धन में तू सुख देने की कल्पना करता है, वह तेरी एकमात्र भ्रांति ही है । धन से मात्र बाह्य सुख के साधन खरीदे जा सकता हैं, परन्तु सुख नहीं ।

धन (अर्थ) तो अनर्थ का मूल है । एक धन के कारण तो अनेक समस्याएँ खड़ी होती हुई देखी गई हैं ।

शास्त्र में दृष्टांत आता है - सोने की एक पाट को पाने में दस व्यक्तियों की मौत हो जाती है, परन्तु पाट वहीं की वहीं रहती है ।

भाई-भाई के बीच अनेक संघर्षों का कारण भी धन ही रहा है । अतः धन में सुख देने की कल्पना करना अज्ञानता ही है ।

इसी प्रकार कोई व्यक्ति पुत्र-परिवार और स्वजन के द्वारा सुख पाने की कल्पना करता है, परन्तु सचमुच वहाँ भी कोई सुख नहीं है ।

आगम में कहा है- **''खाणी अणत्थाण उ कामभोगा''** कामभोग तो अनेक अनर्थों की खान है । काम में आसक्त बनी अनेक आत्माओं के घोर पतन की बातें इतिहास के पन्नों में हमें पढ़ने/सुनने को मिलती हैं ।

हे चेतन ! यदि तुझे आत्म-हित की चिन्ता है तो तू पाँच इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त बन और समता के साथ प्रीति कर ।

पाँचो इन्द्रियों के अनुकूल भोगों से जो सुख मिलता है, वह सुख तो समता के सुख के आगे नगण्य ही है । अतः हे चेतन ! तू समता के सुख को पाने के लिए प्रयत्नशील बन ।

हे आत्मन् ! कुछ प्राणियों पर मानसिक शत्रुबुद्धि धारण करके अपने आपको ही कषाय से क्लुषित क्यों करते हो ? क्योंकि वे भी अनन्त भवों में माता पितादि के रूप में प्रीति को प्राप्त हो चुके हैं ।

अनन्त पुद्गलपरावर्तकाल में अपनी आत्मा ने जगत् के समस्त जीवों के साथ नाना प्रकार के सम्बन्ध किए हैं। हर आत्मा के साथ माता का, भाई का, पिता का, चाचा का, चाची का सम्बन्ध भूतकाल में हो चुका है, अतः उनमें से किसी पर शत्रुता की बुद्धि से गुस्सा करना उपयुक्त नहीं है। परन्तु व्यक्ति इस सत्य के सामने अपनी आँख मिचौनी करता है और अपनी इच्छा या कामना की पूर्ति में बाधक बनने वाले व्यक्ति के प्रति तुरन्त नाराज हो जाता है।

जिस प्रकार तालाब में कंकड़ फेंकने से तालाब का पानी आन्दोलित हो उठता है, उसी प्रकार ज्यों ही तेरे हृदय में क्रोध का कंकड़ गिरता है, तेरी समता भंग हो जाती है। क्रोधादि कषाय आत्मा को कलुषित/मलिन कर देते हैं।

कषायों का सेवन इस लोक में भी दुःखदायी है और परलोक में भी दुःखदायी है।

हे चेतन ! आज तू जिन पर क्रोध कर रहा है, वे तो गत भवों में तेरे माता-पिता भी रहे होंगे। अतः उनके प्रति कोप करना क्या उचित है ?

आज तू जिन पर गुस्सा कर रहा है, गत भव के वे तेरे उपकारी भी हो सकते हैं। उन उपकारियों के प्रति कोप करना, क्या शोभास्पद है ?

शास्त्रकार महर्षि फरमाते हैं कि अनन्त भवों में हमारी आत्मा ने जगत् के समस्त जीवों के साथ माता-पिता आदि के सम्बन्ध भी किए हैं और उन सम्बन्धों को जोड़कर पुनः तोड़ा भी है। इस संसार में रही सभी आत्माएँ किसी-न-किसी भव की अपेक्षा से अपनी स्वजन न रही हों तो भी उनके प्रति कोप करना उचित नहीं है। अतः हे चेतन ! इस दृष्टि से विचार कर और क्रोधादि कषायों से निवृत्त हो।

'हे आत्मन् ! अरे ! वे मेरे स्नेही सम्बन्धी चले गए।' इस प्रकार व्याकुल होकर जिनके लिए तू शोक करता है, उनके द्वारा तो तू अनन्त भवों में मारा गया है और वे भी तेरे द्वारा मारे गए हैं।

संसार में मोहाधीन आत्मा किसी के जन्म पर हर्ष का अनुभव करती है तो किसी की मृत्यु पर शोक का। जब तक आत्मा कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त नहीं बनती है तब तक उसे संसार में जन्म धारण करना ही पड़ता है। जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु अनिवार्य है। जन्म के साथ ही मृत्यु जुड़ी हुई है। परन्तु मोह और अज्ञानता के कारण अपने संबंधीजन के वियोग में शोक करती है और विह्वल बनकर भयंकर पापकर्मों का बंध करती है।

हे चेतन ! आज तू जिनके वियोग में तड़फ रहा है, क्या वे सदा के लिए तेरे स्वजन रहे हुए थे ? 'नहीं, नहीं,' यही तो तेरी भूल है। तू इस सत्य

को भूल चुका है। आज तू जिनके वियोग में शोक कर रहा है, सम्भव है गत भवों में वे तेरे दुश्मन भी हों और उन्हीं के हाथों से तू अनेक बार मरा भी होगा। इतना ही नहीं, आज तू जिनको प्रेम कर रहा है, गत भवों में तूने ही उनको खत्म किया होगा।

अरे ! संसार के ये सम्बन्ध तो एक जीवन तक मर्यादित है। देह बदलने के साथ ही इस जीवन के सब सम्बन्ध पूरे हो जाते हैं और इसके साथ ही नए सम्बन्धों का सर्जन ही जाता है।

किसी महान् ज्ञानी आत्मा से भेंट हो जाय तो तू अपनी आत्मा के भूतकाल के इतिहास को पूछ लेना।

मुझे लगता है उसे सुनकर तुझे इस संसार के प्रति धिक्कार भाव ही पैदा होगा। तू एक क्षण भी इस संसार में नहीं रह सकेगा। तुझे यह संसार अत्यन्त स्वार्थी, अत्यन्त रौद्र और भयानक ही प्रतीत होगा।

मरना और मारना सदैव से इस संसार में यह क्रम चला आ रहा है। ऐसे विचित्र संसार के प्रति क्या राग करना ? इसका निर्णय तू स्वयं ही अपनी बुद्धि से कर सकता है।

जिनको तुम संसार के दुःखों से बचाने में समर्थ नहीं हो और जो तुम्हें भव-दुःख से बचाने में समर्थ नहीं हैं, उनके विषय में ममत्व धारण कर हे मूढ़ आत्मा ! तू कदम-कदम पर शोक क्यों करती है ?

विवेचन-इस संसार में आत्मा अपने रक्षण के लिए अपने कुटुम्बीजन के प्रति प्रेम और राग भाव धारण करती है। हर व्यक्ति की अपनी यह कल्पना होती है कि ये सम्बन्धी मुझे आपत्ति से बचा देंगे। परन्तु हे चेतन ! इस संसार में कोई भी व्यक्ति किसी को मृत्यु आदि के दुःख से बचा नहीं पाया है। ठीक ही कहा है -

**हजारों ऐश के सामान, मुल्को के मालिक थे।**

**सिकन्दर जब गया दुनिया से, दोनों हाथ खाली थे ॥**

सम्राट् सिकन्दर ने अपनी जीवन में सम्पत्ति इकट्ठी की थी परन्तु वह सम्पत्ति उसे मृत्यु से न बचा सकी।

पत्नी पति से आत्म-रक्षण की कल्पना करती है। पिता पुत्र से और पुत्र पिता से अपने रक्षण का उपाय पूछता है, परन्तु इस संसार में वे कोई भी सम्बन्धी एक दूसरे का रक्षण करने में समर्थ नहीं बन पाते हैं।

मृत्यु के बाद हर आत्मा अपने-अपने कर्म के अनुसार जहाँ-तहाँ जन्म धारण कर लेती है। उस समय आपत्ति से छुड़ाने के लिए उसके पूर्व के

सम्बन्धी कोई भी काम नहीं आते हैं ।

हे चेतन ! न तो तुम किसी का रक्षण करने में समर्थ हो और न ही कोई तुम्हारा रक्षण करने में समर्थ है । अतः व्यर्थ ही उन सम्बन्धों में गाढ़ ममत्व को धारण कर व्यर्थ पापबन्ध क्यों करते हो ?

ममत्व तो पापबन्ध का कारण है । ममत्व से समत्व का नाश होता है । समत्व-नाश से आत्मा अपने भावी संसार का सर्जन करती है ।

पुद्गलपिण्ड से युक्त जीव सचेतन है और परमाणुमय अचेतन पदार्थ है । वे दोनों अनन्त परिणाम/पर्याय भाव को प्राप्त करते हैं, अतः उनमें राग और द्वेष करने के लिए कौन योग्य है ?

इस विराट् संसार में दो ही तत्त्व रहे हुए हैं - जड़ और चेतन । जड़ और चेतन के संयोग से ही इस संसार का अस्तित्व टिका हुआ है । जिस दिन अपनी आत्मा का सर्वतः/सम्पूर्ण रूप से जड़ तत्त्व के साथ सम्बन्ध टूट जाता है उनके साथ ही आत्मा अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेती है ।

हे चेतन ! इस संसार में तू जिन-जिन व्यक्तियों और पदार्थों के प्रति राग और द्वेष करता है, वे-वे पदार्थ तो प्रतिक्षण बदलते ही रहते हैं । जो पर्याय स्वयं स्थिर नहीं है, उस पदार्थ के प्रति क्या राग करना, क्या द्वेष करना ? क्षणजीवी पर्यायों के प्रति राग अथवा द्वेष करना, केवल अज्ञानता ही है ।

वस्तु के एक पर्याय को देखकर हमें राग पैदा होता है, कुछ समय बाद उसी वस्तु का वही पर्याय अत्यन्त विकृत हो जाता है और हमारे दिल में उसके प्रति घृणा और तिरस्कार के भाव जागृत हो जाते हैं ।

आज जिस पदार्थ के जिस पर्याय के प्रति हमारे दिल में घृणा और तिरस्कार का भाव है, समय बदलते उसी वस्तु का पर्याय बदल जाता है और हम उस पर्याय के प्रति राग कर बैठते हैं ।

जड़ और चेतन दोनों द्रव्यों की पर्यायें सतत बदल रही हैं, परिवर्तन पा रही हैं, उनमें राग-द्वेष कर तुझे अन्य कुछ फायदा तो होने वाला नहीं है बल्कि रागद्वेष के इन अध्यवसायों के द्वारा भयंकर कर्मों का बन्ध कर तू अपने हाथों ही अपना विनाश कर रहा है ।



आत्मा की मुख्य तीन दशाएं हैं-

- 1) **बहिरात्म दशा** : देह में आत्मा बुद्धि कर, देह के सुख में तीव्र राग और देह के दुःख में तीव्र द्वेष भाव धारण करना ।
- 2) **अंतरात्म दशा** :-आत्मा में आत्म बुद्धि धारण कर जो आत्मा के मूलभूत स्वभाव को पाने के लिए प्रयत्नशील है ।
- 3) **परमात्म दशा** : कर्म मल से सर्वथा मुक्त आत्मा के विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त आत्मा । इस दशा में आत्मा में वीतरागता, सर्वज्ञता गुण प्रगट हुए होते हैं ।

बहिरात्म दशा यह आत्मा की अज्ञानभरी दशा है । इस दशा में आत्मा को मोक्ष मार्ग की साधना के प्रति लेश भी अभिरुचि नहीं होती है ।

कर्म स्थिति की लघुता प्राप्त होने पर जब सद्गुरु का समागम होता है, तब आत्मा बहिर्भाव का त्याग कर अन्तर्मुख बनती है । उस अंतरात्म दशा में ही आत्मा में सच्चा वैराग्य (विरागभाव) प्रगट होता है, जो आत्मा को अंत में वीतराग भाव की ओर ले जाता है ।

मुक्ति का अभिलाषी, भावश्रावक वैराग्यरस में लयलीन होता है, अतः उसके दिल में सच्चा माध्यस्थ्य भाव प्रगट होता है । माध्यस्थ्य अर्थात् तटस्थता, निष्पक्ष वृत्ति न राग करना और न द्वेष करना यह सच्ची माध्यस्थ्यता है ।

तराजु के दोनों पलडे सम होते हैं । परंतु एक भी पलडे में कुछ भी वस्तु डालने पर दूसरा पलडा स्वतः ऊपर हो जाएगा । बस, इसी प्रकार जब किसी वस्तु के अनुकूल पर्याय पर राग होगा तो उसके विपरीत पदार्थ पर द्वेष पैदा हुए बिना नहीं रहेगा ।

इन्द्रिय जन्य सुखों में आसक्ति ही राग को पैदा करती है, जहां राग होगा, वहां द्वेष होगा ही ! जहां राग और द्वेष होंगे, वहां माध्यस्थ्यता टिक नहीं सकती है ।

बाह्य पौद्गलिक पदार्थों के अनुकूल पर्यायों पर राग और प्रतिकूल पर्यायों पर द्वेष के त्याग की अपेक्षा मिथ्या-कुमत की मान्यता के कदाग्रह का त्याग करना अत्यंत कठिन है ।

\*बाह्य संसार का संपूर्ण त्याग होने पर भी जमालि के जीवन में माध्यस्थ्य भाव नहीं था, उसके दिल में अपनी झूठी मान्यता के प्रति तीव्र आग्रह था । अनेक युक्ति-प्रयुक्तियों के द्वारा समझाने पर भी वह अपनी पकड़ी

हुई झूठी मान्यता को छोड़ने के लिए राजी नहीं था ।

माध्यस्थ्य पुरुष का स्वरूप बतलाते हुए पू.यशोविजयजी म.ने कहा हैं '**मध्यस्थ पुरुष का मन बछडा हैं और युक्ति गाय है । गाय के पीछे बछडा दौडता हैं, जबकि मिथ्याग्रही मनुष्य का मन बंदर के समान है और युक्ति गाय हैं । बंदर गाय को पूंछ पकडकर खींचता हैं ।**'

मध्यस्थ पुरुष युक्ति की ओर आकर्षित होता हैं, जबकि दुराग्रही मनुष्य युक्ति को अपनी ओर खींचता हैं ।

आग्रही व्यक्ति अपनी मति के अनुसार युक्ति को ले जाता है । पक्षपात रहित पुरुष जहां युक्ति होती है, वहां मति को ले जाता है ।

युक्तियाँ दो प्रकार की होती है 1) सुतर्क और 2) कुतर्क / दुनिया में जितने भी मत-कुमत-कुपंथ निकले हैं, वे कुतर्क में से ही पैदा हुए हैं ।

अज्ञानी जीव कुतर्क के जाल में फंस जाते है और इस प्रकार कुमत का जाल चारों ओर फैल जाता है ।

प्रत्येक नय अपनं दृष्टिबिंदु से सत्य होता है, परंतु जब वह नय एक दूसरे के दृष्टिबिंदु का खंडन करता हो, तब नय, कुनय बन जाता है ।

सन्मति तर्क में कहा हैं :-

सभी नय अपनं अपनं वक्तव्य में सत्य हैं, परन्तु दूसरे नय का वक्तव्य करने में झूठे हैं ।

किसी अपेक्षा से संसारी जीवों के तीन भेद कर सकते हैं ।

1) गुणवान् 2) दुःखी और 3) पापी

\*गुणवान जीवों के प्रति अपने हृदय में प्रमोद भावना होनी चाहिये । गुणवान् के गुणों को देखकर मन प्रसन्नता से भर जाना चाहिये ।

\*जो जीव अपनं अशुभ कर्म / अशाता वेदनीय आदि कर्म के कारण दुःखी हैं, उन जीवों के प्रति अपने हृदय में करुणा भावना होनी चाहिये । करुणा अर्थात् दुःखी प्राणी को देखकर हृदय द्रवित हो जाना ।

\*जो जीव अत्यंत पापी है, जिनको उपदेश देना, सांप को दूध पिलाने के समान हो ऐसे पापी व अधम जीवों के प्रति अपने हृदय में माध्यस्थ्य भाव होना चाहिये अर्थात् उन जीवों के प्रति न राग करना हैं और न द्वेष ।

अध्यात्मसार ग्रंथ में पू.उपा.श्री यशोविजयजी म. ने कहा हैं -

**'निन्दो न कोपि लोके, पापिष्वपि भवस्थितिश्चिन्त्या ।'**

लोक में किसी की भी निंदा नहीं करनी चाहिये । पापी आत्माओं की भी भवस्थिति का विचार करना चाहिये ।

पापी आत्माएं भी कर्माधीन है। वे भारी कर्मी होने के कारण पापकार्य में प्रवृत्ति कर रही हैं, अतः उन जीवों के प्रति भी द्वेषभाव धारण करने के बजाय, उनके प्रति माध्यस्थ्य भाव धारण करना चाहिये।

कोई अपनी स्तुति करे तो उससे प्रसन्न होने जैसा नहीं है और कोई अपनी निंदा करे तो उससे नाराज होने जैसा नहीं है, क्योंकि जो भी अपनी प्रशंसा कर रहा है, वह भी अपने स्वयं के कर्म से प्रेरित होकर कर रहा है और कोई निंदा करता है तो भी अपने स्वयं के कर्म से प्रेरित होकर।

### मध्यस्थ बनो

मुमुक्षु आत्मा के हृदय में अपार करुणा होती है, उसके हृदय में सभी दुःखी आत्माओं के प्रति करुणा होती है। वह उन सब आत्माओं को मोक्ष की अनुरागीणी देखना चाहती है। परन्तु दुनिया में ऐसी भी आत्माएँ हैं जो अपने तीव्र पापोदय के कारण मोक्षमार्ग से दूर रहती है, इतना ही नहीं यदि उन्हें धर्म का उपदेश दिया जाय तो भी वह उनके क्रोधादि की अभिवृद्धि का ही कारण बनता है। जिस प्रकार सर्प को पिलाया गया दूध भी विष में रूपान्तरित हो जाता है, उसी प्रकार अत्यन्त पापी, क्रूर और निष्ठूर आत्माओं को दिया गया हितोपदेश भी अनर्थ की परम्परा का सर्जन करता है।

\*पंचतंत्र में सुघरी पक्षी और बन्दर की कथा इस बात की साक्षी है। भयंकर वर्षा की टण्डी लहरों से टिटुरते हुए बन्दर को देख, उस पक्षी ने कहा, "अरे ! तुम इस प्रकार टण्डी से टिटुर रहे हो ? तुमने अपने रहने के लिए घोंसला क्यों नहीं बनाया ?"

उस पक्षी ने तो बन्दर को अच्छी सलाह दी थी, किन्तु इस सलाह को सुनकर बन्दर को गुस्सा आ गया और उसने कहा - "अरे ! तू कौन है, मुझे कहने वाली ?" इतना कहकर उसने एक छलांग लगाई और उस पक्षी के घोंसले को ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

दुनिया में ऐसी क्रूर वृत्तिवाले बहुत से लोग होते हैं, जिन्हें भले ही अच्छी सलाह दी जाय, फिर भी परिणाम बुरा ही आता है।

इस दुनिया में निष्कारण उपकारीजन बहुत कम मिलते हैं। अपने उपकारी के प्रति उपकार करने वाले जन कुछ मिल जाएंगे। इसके साथ दुनिया में कुछ ऐसे भी लोग होते हैं, जिन्हें दूसरे का अहित करने में ही आनन्द आता है। यदि कोई उन पर उपकार भी करे तो वे इस उपकार का बदला अपकार से ही देते हैं।

ऐसे क्रूर, हिंसक, व्यभिचारी, पापी, शराबी, शिकारी जीवों को देखकर

हमारे हृदय में उनके प्रति द्वेष अथवा दुर्भावना पैदा न हो जाय, इसके लिए तीर्थंकर भगवन्तों ने यह 'माध्यस्थ भावना' बतलाई है, अर्थात् उन जीवों के प्रति हमारे हृदय में द्वेष भाव नहीं आना चाहिये, बल्कि उनके प्रति हमें मध्यस्थ रहना चाहिये।

राग और द्वेष से मुक्त बनना, यही मुक्ति का मार्ग है। संसार में रहते हुए हमें अनेकविध जीवों के सम्पर्क में आना पड़ता है, अतः पापी व क्रूर जीवों को देखकर, हमारे हृदय में द्वेष की भावना पैदा नहीं होनी चाहिये। उन जीवों की कर्म परिणति का विचार कर हमें मात्र उदासीन रह जाना है। यहाँ उदासीनता से तात्पर्य खेदग्रस्त बनना नहीं है, बल्कि उन क्रूर जीवों के प्रति उपेक्षा भाव, तटस्थ भाव, मौन भाव, मध्यस्थ भाव धारण करना है।

इस माध्यस्थ्य भाव की प्राप्ति राग और द्वेष के निरोध से होती है।

राग और द्वेष के परिणामों से अपना मन चंचल हो जाता है, आत्म स्थिरता समाप्त हो जाती है। राग-द्वेष की उपस्थिति में मध्यस्थ रहना शक्य नहीं है। राग द्वेष के निरोध से ही आत्मा मध्यस्थ बन सकती है।

जिस प्रकार भयंकर गर्मी में लम्बी पद यात्रा करने से व्यक्ति थककर चूर हो जाता है, बदन में से पसीना छूटने लगता है और सम्पूर्ण देह श्रमित हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि मार्ग में छायादार वृक्ष और ठण्डा जल मिल जाय तो व्यक्ति का श्रम दूर हो जाता है और उसका चित्त प्रसन्न हो जाता है इसी प्रकार इस संसार में अनन्त काल से परिभ्रमण करने के कारण हमारी आत्मा श्रमित बन चुकी है। माध्यस्थ्य भावना के भावन से उसकी वह थकावट दूर हो जाती है।

रोगी व्यक्ति को औषधि मिलने पर जैसा आनन्द आता है, वैसा ही आनन्द मुमुक्षु आत्मा को इस माध्यस्थ्य भावना से आता है।

यह माध्यस्थ्य भावना राग-द्वेष रूपी रोगों का सुन्दर इलाज है, इसके सेवन से आत्मा की थकावट दूर होती है और वह परमानन्द की अनुभूति करती है।

### जगत् की विचित्र स्थिति

इस विराट् संसार में अनन्तानन्त आत्माएँ हैं। वे सब कर्माधीन है। अपने अपने कर्म के अनुसार सभी जीवात्माएँ सुख दुःख आदि प्राप्त करती हैं।

सभी जीवात्माओं के कर्मों में तरतमता है, इस तरतमता के कारण ही सभी जीवों की स्थिति समान नहीं है।

किसी आत्मा को मोहनीय कर्म का तीव्र उदय होने से वह रागान्ध/ कामान्ध बन गया। वह अपने छोटे भाई की पत्नी के प्रति मोहित बन गया। परन्तु छोटे भाई की पत्नी एक सती सन्नारी है, वह अपने ज्येष्ठ से हितकर बात करती है, परन्तु वह कामान्ध व्यक्ति भाई की पत्नी को पाने के लिए अपने हाथों से ही भाई की हत्या कर देता है। वह सती सन्नारी अपने शील के रक्षण के लिए जंगल में पलायन हो जाती है, इधर उस कामान्ध व्यक्ति की भी सर्पदश से मृत्यु हो जाती है और वह मरकर नरक में चला जाता है।

...और देखो उस तापस को। कितना उग्र तप कर रहा है। मासक्षमण के पारणे मासक्षमण ! लाखों वर्षों से वह यह तपस्या कर रहा है ...परन्तु आज वह क्रोध के आधीन बन गया है। तप से शरीर को कृश कर दिया है, परन्तु कषायों को कृश नहीं कर पाया। अहो ! उस हृदय में क्रोध की ज्वालाएँ कितनी भड़क रही हैं ? वह तापस उस राजा को हर भव में अपने हाथों से मारने का निदान कर रहा है।

...और वह मम्मण सेठ ! अहो ! अपार धन सम्पत्ति उसके पास है, किन्तु उसके लोभ की सीमा नहीं है। भयंकर बाढ़ में भी नदों में बह रहे लकड़ों को वह खींच रहा है। इस प्रकार धन में आसक्त बना वह न दान देता है और न ही उस धन का उपभोग करता है। यह कैसी लोभान्धता है।

जरा सूर्यकान्ता महारानी को देखें। कुछ समय पूर्व उसके हृदय में अपने पति के प्रति कितना अधिक राग था। किन्तु आज वही महारानी अपने स्वामी को जहर का प्याला पिला रही है और गला दबोचकर पति की हत्या कर रही है।

बड़ा ही विचित्र है यह संसार। कोई रागान्ध है तो कोई क्रोधान्ध है। कोई दीनता कर रहा है तो कोई अभिमान कर रहा है। कोई माया में लीन है तो कोई अत्यन्त ही सरल है। कोई अत्यन्त ही सन्तोषी है तो किसी के लोभ की सीमा नहीं है।

इस विचित्रता से परिपूर्ण संसार में सभी जीव अपने अपने शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार नाना प्रकार के वेष परिधान कर रहे हैं।

इस प्रकार संसार की विचित्रता के दर्शन कर हे भव्यात्मन् ! तू राग और द्वेष का त्याग कर दे।

सभी जीव अपने अपने कर्मों के अधीन हैं और कर्म के अनुसार ही प्रवृत्ति-निवृत्ति कर रहे हैं, अतः किसकी स्तुति करें ? और किसकी निन्दा करें ? अर्थात् अन्य जीवों की वृत्ति-प्रवृत्ति को देखने के बजाय आत्म निरीक्षण

करना ही लाभकारी है। क्योंकि आत्म निरीक्षण कर सत् में प्रवृत्ति और असत् से निवृत्ति लेना ही श्रेयस्कर है।

## उदासीनता ही आत्महितकर है

हे भव्यात्मन् ! तेरी यह इच्छा है कि 'मैं सबको सुधार दूँ।' और इसी भावना से प्रेरित होकर तू उपदेश देता है और अन्य को बारबार प्रेरणा करता रहता है। परन्तु यह जरूरी नहीं है कि सभी तुम्हारी प्रेरणाओं को स्वीकार कर लें। सभी तुम्हारे उपदेश का अनुसरण कर लें। क्योंकि सभी जीव अपने अपने कर्म के अधीन हैं, सभी जीवों की भवितव्यता भिन्न-भिन्न है। सभी जीवों की योग्यता में अन्तर है, अतः कोई जीव जल्दी प्रतिबोध पा जाता है और कोई भारी कर्मी जीव प्रतिबोध देने पर भी प्रतिबोध नहीं पाता है। सांसारिक जीवों की इस विचित्र स्थिति को देखकर, यदि कोई आत्मा बोध न पाए तो भी तू खेद मत कर, बल्कि माध्यस्थ्य भावना से अपनी आत्मा को भावित कर।

तू याद कर, भगवान महावीर और उनके शिष्य जमाली को। उनका कितना घनिष्ठ सम्बन्ध था ? सांसारिक दृष्टि से जमाली, प्रभु महावीर के दामाद थे और धार्मिक दृष्टि से भगवान महावीर गुरु थे और जमाली उनके शिष्य।

..परन्तु कर्म की विचित्रता के कारण जमाली ने भगवान महावीर के एक वचन को स्वीकार नहीं किया। भगवान महावीर के 'कड़ेमाणे कड़े' वचन को असिद्ध करने के लिए जमाली अनेक कुतर्क करने लगा। भगवान महावीर तो सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे, उनके वचनों में किसी प्रकार की संदिग्धता नहीं थी, उनके वचन असंदिग्ध थे। परन्तु मोह की विचित्र गति है। भगवान महावीर के शिष्यों ने जमाली को समझाने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह नही समझा उसने अपना कदाग्रह/हठाग्रह नहीं छोड़ा। हे भव्यात्मन् ! इस घटना पर तू कुछ विचार कर।

भगवान महावीर सर्वज्ञ थे, अनन्त शक्ति के पुत्र थे, फिर भी उन्होंने जबरन जमाली को नहीं समझाया, तो फिर यदि कोई आत्मा तेरे हितकारी मार्गदर्शन को स्वीकार नहीं करती है, तो इसमें तुझे रोष करने की क्या आवश्यकता है ? अथवा निराश होने की भी क्या आवश्यकता है। तू उसकी भवितव्यता का विचार कर, उसके प्रति उदासीन बन जा। यही तेरे लिए हितकर मार्ग है।

## धर्म का ग्रहण स्वैच्छिक होता है

अरिहन्त परमात्मा अनन्तशक्ति के तेजस्वी पुत्र होते हैं। उनके पास

अनन्त शक्तियाँ होती हैं। फिर भी वे किसी को धर्म स्वीकार करने के लिए दबाव Force नहीं करते हैं। उनके हृदय में समस्त जीवों के प्रति करुणा होते हुए भी वे बलात्कार से किसी को धर्म नहीं देते हैं, बल्कि सहज भाव से शुद्ध धर्म का उपदेश देते हैं। इस प्रकार के धर्मोपदेश में न तो उनके हृदय में किसी प्रकार की महत्वाकांक्षा होती है, न ही उन्हें अपने तीर्थ का राग।

उनका विहार भी सहज भाव से होता है, उन्हें न द्रव्य का बन्धन है और न क्षेत्र का, उन्हें न काल का बन्धन है और न ही भाव का। वे सहज भाव से विचरते हैं...सहज भाव से धर्मोपदेश देते हैं...और सहज भाव से जीते हैं।

इस प्रकार उनके साहजिक और विशुद्ध उपदेश का भावपूर्वक श्रवण करने से अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबोध होता है और वे संसार का त्याग कर अपना जीवन समर्पित कर देती हैं।

धर्म कोई बलात्कार से देने की वस्तु नहीं है। धर्म कोई जैसे-तैसे वितरण करने की वस्तु नहीं है। धर्म तो घी के समान है। घी सबको नहीं पिलाया जाता है, जिसमें घी पचाने की ताकत हो, उसी के लिए घी लाभकारी है। जो व्यक्ति छाछ और दूध भी नहीं पचा सकता है, उसको घी पिला देने से तो नुकसान की ही सम्भावना रहती है।

अतः धर्म भी योग्य और पात्र जीवों को ही देने का है। अपात्र जीव, धर्म को प्राप्त कर भी अपना अहित ही करता है।

जिस प्रकार आग जिलाती भी है और जलाती भी है। जो आग का सदुपयोग करना जानता है, उसके लिए आग जीवन का अंग है और जिसे आग का उपयोग करना नहीं आता है, उस व्यक्ति को आग जलाकर समाप्त कर देती है।

इसी प्रकार जो धर्म को बराबर समझता है, उसके लिए धर्म तारक है और जो धर्म को बराबर न समझकर, उसका स्वेच्छानुसार उपयोग करता है, उसके लिए धर्म घातक भी सिद्ध हो जाता है।

अतः मात्र 'धर्मप्रचार' के एकांगी विचार को नहीं पकड़ना चाहिये, बल्कि पात्रता देखकर ही धर्म का दान करना चाहिये।

### माध्यस्थ्य भाव अमृत तुल्य है

यह माध्यस्थ्य भाव सारभूत अमृत तुल्य है। संत पुरुष इस अमृत का बारबार पान करते हैं। जिसे यह संसार बन्धन रूप लगा हो और जो आत्मा संसार के बन्धनों में से मुक्त बनना चाहती है, उसी आत्मा को यह भावना अमृत तुल्य लगती है। क्योंकि यह औदासीन्य भावना आत्मा को मध्यस्थ व

तटस्थ बनाती है।

हमारी आत्मा का झुकाव कभी राग की ओर होता है, तो कभी द्वेष की ओर। इस औदासीन्य भावना के अभ्यास से हमारी आत्मा मध्यस्थ-तटस्थ बनने लगती है, फिर हमारी आत्मा का झुकाव न राग की ओर होगा और न ही द्वेष की ओर। ऐसी स्थिति आने पर आत्मा प्रशम रस के महासागर में निमग्न हो जाएगी। प्रशम रस का सुख अनुपम सुख है, उस सुख का एक बार भी स्वाद आ जाय... तो फिर सांसारिक सुख की इच्छा समाप्त हो जाती है। जिस सुख का अनुभव देव, देवेन्द्र और चक्रवर्ती के लिए भी दुर्लभ है, उस सुख का अनुभव प्रशमरस में निमग्न आत्मा कर लेती है।

मोक्ष का सुख परोक्ष और दुर्लभ है, किन्तु प्रशम का सुख तो सुलभ है। हे भव्यात्मन् ! तू इस सुख का आस्वादन कर। हाँ, इस सुख के आस्वादन के लिए एक शर्त है, - 'तुझे औदासीन्य भावना के अमृत का आस्वादन करना होगा।'

उदासीनता से व्यक्ति मध्यस्थ बनता है - न राग की ओर झुकाव और न द्वेष की ओर झुकाव।

इस आनन्द का अनुभव सन्त पुरुष करते हैं। एक बार इस आनन्द की अनुभूति हो जाने के बाद क्रमशः यह आनन्द दिनदूना रात चौगुना बढ़ता ही जाता है और अन्त में आत्मा मुक्ति के परम सुख का अनुभव करती है, आत्मा शाश्वत सुख की भोक्ता बन जाती है।

बस, एक मात्र शुद्ध, बुद्ध और परमानन्द स्वरूप को आत्मा प्राप्त कर लेती है। आनन्द, आनन्द और आनन्द ही एक मात्र आत्मा का स्वरूप बन जाता है।

### माध्यस्थ्य भाव कल्पवृक्ष है

पूज्यपाद विनयविजयजी म. आत्मसम्बोधन करते हुए फरमाते हैं कि हे विनय ! हे आत्मन् ! तू उदासीनता के नित्य सुख का अनुभव कर।

क्षणिक पदार्थों के राग भाव को दूर करने के लिए महापुरुषों ने अनित्य आदि भावनाओं का निर्देश किया है, जबकि जीवत्व के द्वेष को दूर करने के लिए महापुरुषों ने मैत्री आदि चार भावनाएँ बतलाई हैं।

इस संसार में ऐसे अनेक प्राणी हैं, जिनको हितकर बात भी अत्यन्त कटु लगती है। वे अपने आत्म हित के प्रति पूर्णतया बेपरवाह होते हैं। उन्हें तो इस जीवन के क्षणिक सुखों में ही आनन्द आता है और येन केन प्रकारेण उन सुखों को पाने के लिए दौड़धूप करते हैं, भले ही इसके लिए उन्हें भयंकर पाप कर्म करने पड़ें। भयंकर पापप्रवृत्ति करते हुए भी उनके हृदय में लेश भी पीड़ा

नहीं होती है। साग और तरकारी की तरह वे बड़े बड़े पशुओं को और मनुष्यों को भी चीर डालते हैं। किसी की हत्या करने में उन्हें तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती है। उन्हें पाप से भय नहीं होता है, बल्कि वे उसमें पूर्णतया आसक्त होते हैं। किसी जीव को मरते हुए-तड़फते हुए देखने में ही उन्हें आनन्द आता है।

ऐसी क्रूरवृत्ति वाले लोगों के प्रति हमारे मन में (अनादि के द्वेष भाव के संस्कारों के कारण) घृणा का भाव आना स्वाभाविक है, परन्तु वह घृणा का भाव हमारी आत्मा के लिए हितकर नहीं है, अतः ऐसी परिस्थिति में हमें उदासीन व तटस्थ रहना है और इस माध्यस्थ-औदासीन्य भावना से आत्मा को भावित करना है।

यह उदासीनता परम आनन्ददायी है और आत्मा के शाश्वत सुख के साथ हमारा सम्बन्ध करानेवाली है। इष्टफल को देने में यह कल्पवृक्ष के समान है।

यह औदासीन्य वृत्ति जिनागमों का सार है। उपशम भाव यह तो प्रवचन का सार है। जो आत्मा औदासीन्यभाव को आत्मसात् कर लेती है, उस आत्मा ने जिनागम के सारभूत तत्त्व को ग्रहण कर लिया है। वह आत्मा क्रमशः अपने इष्ट फल को पाने में तत्पर बनती जाती है।

पर-पुद्गल की चिन्ता का तू त्याग कर दे और आत्मा के अविकारी आत्मस्वरूप का चिन्तन कर। कोई मुख से बड़ी बड़ी बातें ही करते हैं, किन्तु वे केरड़ा ही पाते हैं जबकि परिश्रम करनेवाले आम की प्राप्ति करते हैं।

### आत्मा का चिन्तन करो

हे आत्मन् ! तू अन्य की चिन्ता का त्याग कर दे और अपनी आत्मा के अविकारी स्वरूप में लीन बन जा।

एक ही पंक्ति में विनयविजयजी म. ने हमें आनन्द की चाबी दे दी है। इस संसार में आत्मा दुःखी बनती है पर-भाव में रमणता से। जो अपना नहीं है, उसे अपना मानकर, उसकी प्राप्ति, उसके संरक्षण आदि की चिन्ता में व्यग्र बनना परभाव रमणता है। धन, धान्य, पत्नी, पुत्र, परिवार, मकान, दुकान, जायदाद, सम्पत्ति व यह देह अपने नहीं है। परन्तु हमने इन सबको अपना मान लिया है। विनाशी देह में हमने आत्मबुद्धि कर ली है। 'मैं आत्मा हूँ' और 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र मेरी आत्म सम्पत्ति है' इस बात को हम सर्वथा भूल गए हैं। सतत बहिर्भाव में जी रहे हैं। इसके परिणाम स्वरूप हम सतत पौद्गलिक चीजों की चिन्ता से ग्रस्त बने हैं। हमें धनार्जन की चिन्ता है... अर्जित धन के रक्षण की चिन्ता है... पुत्र परिवार की चिन्ता है... उन्हें

कोई तकलीफ न आ जाय, इसके लिए हम पूर्ण जागरूक हैं... परन्तु दूसरी ओर हमारी आत्मसम्पत्ति सतत लूटी जा रही है और हम दरिद्र-कंगाल सी स्थिति में आ चुके हैं, इस बात की हमें लेश भी परवाह नहीं है।

हे आत्मन् ! तू इन पर-भावों की चिन्ता छोड़ दे, क्योंकि इन चिन्ताओं से तुझे कुछ भी फायदा होने वाला नहीं है, तू अपने अविनाशी आत्म स्वरूप का चिन्तन कर। तू अजर है, अमर है. अविनाशी है। आग तुझे जला नहीं सकती है, पवन तुझे उड़ा नहीं सकता है... शस्त्र तुझे छेद नहीं सकता है। तू आनन्दमय है... ज्ञानमय है... सुखमय है।

'तू निरंजन निराकार ज्योतिस्वरूप है।' इस प्रकार तू अपने स्वरूप का चिन्तन कर, आत्मानुभूति के लिए प्रयत्नशील बन और अन्य सब झंझट छोड़ दे। अन्य व्यक्ति क्या प्रवृत्ति करते हैं ? उस प्रवृत्ति के क्या क्या परिणाम आएं ? इत्यादि विचार करने की तुझे आवश्यकता नहीं है। तुझे तो उसके प्रति मध्यस्थ हो जाना है।

### क्रोध न करो

'हे आत्मन् ! तू एक क्रोधी आत्मा को देखकर उसे शान्त बनाना चाहती है और इस हेतु तू उसे उपदेश देती है... उसे योग्य सलाह देती है, परन्तु सम्भव है... वह तेरी बात स्वीकार न भी करे, वह तेरी हितकारी बात की भी उपेक्षा कर दे... शायद वह तेरी बात सुनने के लिए भी तैयार न हो।' ऐसी परिस्थिति में भी हे आत्मन् ! तुझे उस पर क्रोध करने का अधिकार नहीं है।

उन्मार्गागामी को मार्ग बतलाना तेरा कर्तव्य है। उन्मार्गागामी को मार्ग दिखलाकर तूने अपने कर्तव्य का पालन कर लिया है... अब तू उस पर व्यर्थ ही गुस्सा क्यों करता है ? इस प्रकार गुस्सा करने से क्या वह सुधर जाएगा ? शायद तू शान्त रहेगा तो भविष्य में उचित समय पर तू उसे सुधार भी सकेगा... परन्तु आज और अब घड़ी ही उसे सुधारने की बात करना व्यर्थ ही है।

'वह न सुधरे... तो उसकी भवितव्यता।' तू गुस्सा करके अपनी शान्ति को नष्ट मत कर। क्रोध करने से मन चंचल / अस्थिर बनता है और अस्थिर मन अशान्त हो जाता है।

हे आत्मन् ! तू अपने मित्रजन को, स्वजन को, पुत्र आदि को सुधारना चाहती है और इसके लिए तू बहुत मेहनत भी करती है... परन्तु संयोगवश तुझे सफलता न मिले, फिर भी तुझे सन्ताप करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसी परिस्थिति में भी तुझे अपनी स्थिरता बनाए रखनी है।

कई जड़ बुद्धि वाले शास्त्र वचन का त्याग कर मिथ्या (शास्त्रविरुद्ध)

भाषण करते हैं, वे मूढ़ जीव निर्मल जल का त्याग कर मूत्र का पान करते हैं, तो इसमें हम क्या करें ?

### मूढ़जन पर भी गुस्सा मत करो

इस दुनिया में ऐसे अनेक जड़ बुद्धि वाले कदाग्रही पुरुष होते हैं, जो मन्दमति वाले होने पर भी अपने आपको महान् बुद्धिमान् समझते हैं, और मतिकल्पना के अनुसार शास्त्र से विपरीत अर्थ कर बैठते हैं। उनकी बुद्धि शास्त्र परिकर्मित न होने से वे शास्त्र-पंक्तियों का भी अपनी इच्छानुसार अर्थ कर लेते हैं।

सर्वप्रथम ऐसे व्यक्तियों को समझाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये। प्रेम से समझ जाए तो ठीक बात है, अन्यथा उनके साथ वाद भी कर सकते हैं। यह 'वाद' भी आत्महित की बुद्धि से ही होना चाहिये, किसी को नीचा दिखाने की कुदृष्टि नहीं होनी चाहिये।

इस प्रकार समझाने पर भी...वाद करने पर भी...सत्य तत्व को बतलाने पर भी वह न समझे तो भी उस पर गुस्सा न कर, उसके प्रति माध्यस्थ भाव धारण करना चाहिये। यही सोचना चाहिये कि एक व्यक्ति पवित्र दूध का त्याग करके यदि मूत्र पीने की दुश्चेष्टा करता है, तो उसका और क्या उपाय है ?

सूअर के सामने एक ओर क्षीर और दूसरी ओर विष्टा मलमूत्र रखा जाय तो वह विष्टा में ही मुँह डालेगा, उसे क्षीरान्न का भोजन पसन्द नहीं आता है। मधुर क्षीरान्न का त्याग कर वह विष्टा में अपना मुँह डालता है तो इसमें हमारा क्या दोष है ? इसी प्रकार शास्त्र तो सन्मार्ग के प्रकाशक हैं, उनके आलम्बन से हम भवसागर पार कर सकते हैं, परन्तु उन शास्त्रों के शब्दों को पकड़कर जो उनके रहस्यार्थ/ऐदंपर्यार्थ को जानने का प्रयत्न नहीं करते हैं और शास्त्र प्रवचन विरुद्ध ही देशना देते हैं और शास्त्रविरुद्ध ही प्रवृत्ति करते हैं, तो आगे हम क्या कर सकते हैं ?

चंचल बादल के विलास की तरह यह मनुष्य देह क्षणभंगुर है। यह शरीर यौवन के कारण वज्रवत् अक्कड़ बना हुआ है। ऐसा शरीर विद्वज्जन के महा-उदय के लिए कैसे हो सकता है ?

### क्षणविनश्वर देह !!

मानव का देह आकाश में रहे बादलों की भाँति अत्यन्त चपल है। शरदऋतु में बादलों से छाये हुए आकाशमंडल को देखा ही होगा ? क्षणभर में सम्पूर्ण आकाश बादलों से व्याप्त हो जाता है। किन्तु उनका अस्तित्व ? पवन का एक झोंका आते ही वे कहीं बिखर जाते हैं और क्षण भर में उनका अस्तित्व नामशेष हो जाता है। बस ! यही हालत मानव शरीर की है। आयुष्य कर्म की समाप्ति रूप पवन के एक झोंके से ही यह शरीर नष्ट हो जाता है।

शांतसुधारस ग्रंथ में पूज्य उपाध्यायजी महाराज सर्वप्रथम देह की अनित्यता बतलाते हैं, इसका मुख्य कारण है...देह की अत्यधिक ममता।

आहार से अधिक धन पर मूर्च्छा, धन से अधिक पुत्र पर, पुत्र से अधिक पत्नी पर और पत्नी से भी अधिक मूर्च्छा देह पर होती है।

● बम्बई में चंपकभाई का एक समृद्ध छोटा सा परिवार रहता था। परिवार में कुल चार ही सदस्य थे। पति पत्नी और एक पुत्र व एक पुत्री। उस युगल को शादी किये चार ही वर्ष हुए थे।

एक दिन चंपकभाई ने अपने मित्रों को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रण दिया। उसने वातानुकूलित कमरे में सभी मित्रों को सोफे पर बिठाया। थोड़ी ही देर में नाश्ते की प्लेटें आने लगीं। सभी मित्रों के साथ चंपकभाई नाश्ता चालू कर रहे थे, तभी दुकान से मुनीम का फोन आया, "आप शीघ्र पधारिये, बाजार में भावों में बड़ी तेजी आ गई है। लाखों का मुनाफा हो सकता है।"

मुनाफा और वह भी लाखों का...सुनते ही चंपक भाई ने मित्रों को कहा- "मैं दो मिनट में दुकान जाकर आता हूँ। अनिवार्य (Urgent) काम आ पड़ा है, आप नाश्ता कीजिए।" चंपकभाई उठकर तत्काल दुकान पहुँच गए।

दुकान से घर लौटे रात को आठ बजे। दिन भर कुछ खाया भी नहीं। क्यों ? लाखों के चक्कर में।

स्पष्ट है, आहार से धन अधिक प्यारा है।

एक दिन चंपकभाई दुकान पर हजारों का सौदा कर रहे थे, तभी उनकी पत्नी का फोन आया- 'बच्चा पहली मंजिल से नीचे गिर पड़ा है, तुरन्त घर आ जाओ।

चंपकभाई सौदे को बीच में ही छोड़कर घर आ गए और बच्चे को लेकर इलाज के लिए अस्पताल पहुँचे।

चंपकभाई ने सौदे में लाभ की उपेक्षा की। क्यों? धन से पुत्र अधिक प्यारा था, इसीलिए न!

कुछ ही दिनों के बाद चंपकभाई की पत्नी गर्भवती बनी। प्रसूति का समय सन्निकट था और अचानक पत्नी की स्थिति गंभीर (Serious) हो गई। चंपकभाई तुरन्त अपनी पत्नी को अस्पताल ले गए।

डॉक्टर चंपकभाई की पत्नी का उपचार करने लगे। स्थिति गम्भीर थी। डॉक्टर ने बाहर आकर चंपकभाई को कहा- 'दो में से एक बच सकता है - पत्नी या पुत्र। बोलो किसे बचाना है?'

चंपकभाई ने सोचा- 'पुत्र तो भविष्य में भी मिल सकेगा।' अतः बोला- 'पत्नी को बचा दो' और पत्नी के रक्षण के लिए गर्भस्थ पुत्र को समाप्त कर दिया गया। क्यों? पुत्र से भी पत्नी पर अधिक प्रेम था, इसीलिए न?

एक दिन चंपकभाई की पत्नी रसोईघर में रसोई बना रही थी। चंपकभाई ने घर में प्रवेश किया। तभी चारों ओर से कोलाहल सुनाई दिया, 'भागो! भागो! चारों ओर आग लग गई है।' पुलिस आ चुकी थी और इस विशाल इमारत में से लोगों को बाहर निकालने के लिए इतला दे रही थी। तभी चंपकभाई को पुलिस ने कहा- 'जल्दी कूद पड़ो यहाँ से, अन्यथा मर जाओगे।'

अपने प्राण (शरीर को) बचाने के लिए चंपकभाई कूद पड़े। पत्नी झुलस कर समाप्त हो गई।

चंपकभाई ने पत्नी के आने की इंतजारी न कर स्वयं का रक्षण कर लिया। क्यों? पत्नी से भी अधिक उन्हें अपने प्राण प्यारे थे, इसीलिए न!

ज्ञानियों का कथन है कि संसारी आत्मा को अपने देह पर अत्यधिक ममत्व होता है। इसीलिए तो दान, शील, तप और भाव में आगे आगे का धर्म अत्यधिक कठिन है। दान से शील कठिन है और शील से तप कठिन है। दान में दूरस्थ धन की मूर्च्छा के त्याग का पुरुषार्थ है। शील में कुछ निकट रही स्त्री के त्याग का पुरुषार्थ है, जबकि तप में 24 घंटे साथ में रहने वाले देह की मूर्च्छा के त्याग का पुरुषार्थ है। अतः देह की मूर्च्छा का त्याग अधिक कठिन होने से

कविवर बादलों की उपमा द्वारा देह के क्षणिक अस्तित्व का सर्वप्रथम वर्णन करते हैं।

पूज्य उपाध्यायजी म. फरमाते हैं कि इस देह के साथ क्या परिचय करें? इसका अस्तित्व तो अत्यन्त ही क्षणभंगुर है। यह कब धोखा देगा, इसका पता नहीं।

ओहो! यह क्षणभंगुर देह भी यौवन से कितना उन्मत्त बना हुआ है? यौवन के आवेग-आवेश में वह अपने क्षणिक अस्तित्व में भी कितने भयंकर पाप कर्म कर बैठता है।

याद आ जाती है आनन्दघनजी की ये पंक्तियाँ-

**क्या तन मांजता रे, एक दिन मिट्टी में मिल जाना।**

**मिट्टी में मिल जाना बंदे, खाक में खप जाना। क्या० ॥**

कितनी बोधदायी और प्रेरणादायी हैं ये पंक्तियाँ!

और एक पंक्ति दिल-दिमाग में गूँज रही है

**'प्रेम से अति पुष्ट किया, तन जलाया जाएगा।'**

ओहो! इस देह के सौन्दर्य वृद्धि के लिए कितने-कितने पाप किए, लेकिन आखिर में इसने धोखा ही दिया।

ऐसा यह क्षणभंगुर देह एक बुद्धिमान् पुरुष के महोदय का कारण कैसे बन सकता है?

पवन से चंचल बनी तरंगों के समान आयुष्य अत्यन्त चंचल है। सभी सम्पत्तियाँ, आपत्तियों से जुड़ी हुई हैं। समस्त इन्द्रियों के विषय संध्या के आकाशीय रंग की तरह चंचल हैं। मित्र, स्त्री तथा स्वजन आदि का संगम स्वप्न अथवा इन्द्रजाल के समान है। अतः इस संसार में सज्जन के लिए कौनसी वस्तु आलम्बन रूप बन सकती है?

**सभी संयोग विनाशी हैं**

'अरे! यह किसकी श्मशान यात्रा निकल रही हैं?' दूर खड़े उस व्यक्ति ने अपने मित्र से पूछा।

'ओह! तुम्हें पता नहीं, सेठ रामलालजी का एकाकी पुत्र कल रात में हृदयगति रुक जाने से मर गया।'

'क्या कहा? सेठ रामलालजी का पुत्र अमरचन्द! गजब हो गया। गत वर्ष ही तो उसका विवाह हुआ था और उसका शरीर भी कितना हृष्ट पुष्ट था? कल सुबह ही तो मैंने उसके साथ नाश्ता किया था..और उसकी मृत्यु

हो गई ।” ऐसे और इस प्रकार के वार्तालाप हमें प्रतिदिन सुनाई देते हैं । ज्ञानियों के वचन कितने सत्य हैं । आयुष्य वायु से युक्त तरंग के समान अत्यन्त चपल है । कितना क्षणिक और नश्वर हैं यह जीवन !

इस संसार की सम्पत्तियाँ विपत्तियों से भरी हुई हैं । प्रत्येक संपत्ति के पीछे विपत्ति खड़ी है । यदि आपके पास धन सम्पत्ति है तो आपको चोरों का सतत भय रहेगा । चोर का भय, राजकीय भय, ठगे जाने का भय आदि भय संपत्तिवान् व्यक्ति को ही सतत सताते रहते हैं ।

और ये इन्द्रियाँ ! संध्या के आकाशीय रंग की तरह कितनी चपल और चंचल है । प्रति समय प्रत्येक इन्द्रिय अपने अपने विषय को पाने के लिए घूमती रहती है । इष्ट विषय मिलते ही उसमें आसक्त बन जाती है और प्रतिकूल विषय मिलते ही निराश बन जाती है । संध्या के समय आकाश में विविध रंग छा जाते हैं, किन्तु उनका अस्तित्व कब तक ? थोड़ी ही देर में वह रंग समाप्त हो जाता है । उसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के प्रत्येक विषय भी अत्यन्त ही चपल हैं ।

इस संसार में मित्र स्वजन और स्त्री के सम्बन्ध भी स्वप्नवत् नाशवन्त हैं । कई बार स्वप्न में अपनी विविध प्रकार की अवस्थाओं को देखते हैं । कई बार राजा बन जाते हैं तो कई बार सेठ-साहूकार । परन्तु आँख खुलते ही सब गायब ।

बस ! यही हालत है संसार के सम्बन्धों की । आँख बन्द होते ही (श्वास निकलते ही) सभी सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं । जीवनभर सैकड़ों व्यक्तियों से सम्बन्ध जोड़े किन्तु एक मृत्यु, कैची बनकर उन समस्त सम्बन्धों को काट देती है । प्राण निकल जाने के बाद कौन सा सम्बन्ध साथ रहता है ?

ओहो ! इस संसार में ऐसी एक भी वस्तु नहीं है, जो आत्मा के उत्थान के लिए आलम्बनभूत बन सके ? फिर भी आश्चर्य है कि इसी संसार में लीन रहने की वृत्ति प्रवृत्ति क्यों रहती है ?

प्रातः काल में (इस संसार में) चेतन अथवा अचेतन पदार्थ के जो स्वतः सुन्दर भाव, अत्यन्त रुचि को उत्पन्न करने वाले और लोगों के मन को प्रमोद देने वाले हैं, वे ही भाव परिपाक दशा को प्राप्त कर उसी दिन विरस होकर नष्ट हो जाते हैं, फिर भी आश्चर्य है कि प्रेत से नष्ट हुआ यह मन संसार-प्रेम के अनुबन्ध को नहीं छोड़ता है ।

## सुबह खिले ! शाम को मुरझाये !!

ओ भाई ! जरा रुको । संसार के इन नश्वर पदार्थों में इतने आसक्त मत बनो । इन पदार्थों के वास्तविक स्वरूप का जरा चिन्तन करो । सुबह खिले हुए गुलाब के फूल को देखकर उसके सौन्दर्य में तुम मुग्ध बन जाते हो । किन्तु यह बात क्यों भूल जाते हो कि शाम होते ही इस गुलाब का सौन्दर्य समाप्त हो जाएगा ।

तुम नवीन वस्त्रों को देखकर इतने मोहित बन रहे हो, किन्तु जरा विचार तो करो, इनकी शोभा कब तक ? कुछ ही दिनों के बाद ये ही वस्त्र तुम्हारे लिए अप्रीति का कारण बन जायेंगे ।

ओहो ! जिस डिजाइन वाले वस्त्र को लाने के लिए तुमने अपने माता-पिता से झगड़ा किया, जिस वस्त्र की सिलाई के लिए तुमने मुँहमां रुपये दिये, जिस फैन्सी वस्त्र को पहनकर तुमने अपने शारीरिक सौन्दर्य को बढ़ाया, किन्तु कुछ ही दिनों के बाद कोई नई डिजाइन आ गई और अब तुम्हें उस नवीन डिजाइन वाले वस्त्र को पाने की लालसा हुई । नवीन डिजाइन वाले वस्त्र को पाने की लालसा ने उस पुरानी डिजाइन के वस्त्र की कीमत घटा दी । अब उस वस्त्र की तुम्हारे लिए कोई कीमत नहीं ।

संसार के समस्त पौद्गलिक पदार्थ प्रतिक्षण परिवर्तनशील हैं । कुछ ही दिनों पूर्व बम्बई में घटी यह घटना याद आ जाती है -

● लक्ष्मीचंद सेठ का पुत्र महेश बम्बई के एक कॉलेज में पढ़ता था । कॉलेज में पढ़ने वाली एक रूपवती कन्या के प्रति वह मोहित हो गया । किसी भी प्रकार से वह उस युवती से विवाह करना चाहता था, परन्तु उसे सफलता नहीं मिल पा रही थी । आखिर दो वर्ष के बाद उन दोनों की Court marriage हो गई । श्रेष्ठिपुत्र महेश के आनन्द का पार नहीं था । विवाह सम्बन्ध के दो वर्ष व्यतीत हुए । एक दिन वे दोनों टैक्सी में बैठकर घूमने के लिए जा रहे थे और अचानक टैक्सी का भयंकर एक्सीडेंट हो गया । भाग्यवश महेश की जान बच गई किन्तु उसकी पत्नी अत्यन्त घायल हो गई थी । तुरन्त वह अपनी प्राणप्यारी पत्नी को अस्पताल ले गया । डॉक्टर की दवाई से उसकी पत्नी होश में आई । उसके चेहरे पर काच के बहुत से टुकड़े चुभे हुए थे । उन सब को सावधानी से निकाला गया और उसकी पत्नी मौत के मुख में जाने से बच गई ।

आठ दिन बाद महेश अस्पताल में अपनी पत्नी को देखने के लिए आया । किंतु अब उसका आकर्षण समाप्त हो चुका था । जो चेहरा पहले



अत्यन्त आकर्षक और सौन्दर्य से भरा हुआ था, अब उसका आकर्षण समाप्त हो चुका था, अतः महेश ने डॉक्टर की जेब भर दी और अपनी प्राण प्यारी (?) पत्नी को जहर का इंजेक्शन देकर मौत के घाट सुला दिया।

यह है इस संसार की हालत। ऐसी अनेक घटनाएँ आए दिन पढ़ने सुनने को मिलती हैं।

कुछ ही समय बाद अपने सौंदर्य और चमक को खोने वाले ऐसे क्षणिक पदार्थों में क्या राग करें ?

परन्तु आश्चर्य है कि प्रेत से ग्रस्त व्यक्ति की तरह सांसारिक क्षणिक पदार्थों का राग छूटता भाव श्रावक प्रति दिन अपनी आत्मा को अनित्य भावना से भावित करता रहता है, इस कारण उसके अन्तर्मन में सांसारिक क्षणिक पदार्थों का लेश भी आकर्षण नहीं होता है। जिस प्रकार प्रेताधीन व्यक्ति स्वतंत्र रूप से कोई प्रवृत्ति नहीं कर पाता है, उसी प्रकार राग से अंधी बनी आत्मा भी विवेकभ्रष्ट होने से स्वतंत्र रूप से स्व-हित की प्रवृत्ति नहीं कर पाती है।

## यह कैसी विडम्बना ?

अहिंसा के बलबूते पर आजादी प्राप्त करने की बात करने वाले इस भारत देश में अब क्या हो रहा है ?

सत्ता के सिंहासन पर अहिंसा देवी की प्रतिष्ठा होने के बजाय हिंसा-क्रूरता की प्रतिष्ठा हो रही है।

आज देश में क्रूरता शैतान की भांति मुंह फाड़े खडी है, जब कि अहिंसा के आंसु थम नहीं रहे हैं।

आज विश्व में हथियार के बाजार में बड़ी तेजी है। आहे एक आदमी पर प्रतिदिन १२ रुपये ८९ पैसे हथियार के पीछे खर्च हो रहा है।

भारत देश में क्या हो रहा है, कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

## अनासक्ति

१६

सरोवर में कमल खिला होता है, उस सरोवर में कीचड व जल दोनों होते हैं, किंतु कमल उन दोनों से अलिप्त रहता है। बस, इसी प्रकार भावश्रावक इस गृह संसार में रहता है, किंतु उस गृह संसार से ऊपर उठा हुआ होता है अर्थात् संसार में रहते हुए भी वह संसार में आसक्त नहीं होता है।

मिथ्यादृष्टि जीवों के पास भौतिक सुख सामग्री नहीं हो तो भी उन्हें उन सुखों में अत्यंत आसक्ति होती है, जबकि समकित्ती आत्मा को ढेर सारी सुख की सामग्री मिली हो, फिर भी वह आत्मा उन सुखों में आसक्त नहीं होती है।

इस अनासक्ति के कारण ही भावश्रावक के पास संसार के सर्वोच्च सुखों की सामग्री हो, उन सुखों का उपभोग हो, फिर भी वह आत्मा कर्मों का बंध नहीं करती है, जबकि मिथ्यादृष्टि आत्मा को अल्प भी सुख सामग्री मिली हो, फिर भी वह आत्मा उन सुखों में अत्यन्त आसक्त बन जाती है।

भरत महाराजा छ खंड के अधिपति थे, परंतु उस साम्राज्य के बीच भी वे अनासक्त योगी थे, इस अनासक्ति के कारण ही भरत महाराजा को आरीसा भवन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था, जब कि आहार की आसक्ति के पाप के कारण कंडरीक मुनि मरकर 7वीं नरक में चले गए।

\*चरम तीर्थपति भगवान महावीर परमात्मा पृथ्वीतल को पावन करते हुए राजगृही नगरी में पधारें। देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की। श्रेणिक महाराजा को प्रभु के आगमन के समाचार मिले, अत्यंत ही आडंबर के साथ वे समवसरण में पधारें। परमात्मा ने मेघ गंभीर ध्वनि से धर्मदेशना दी। देशना की समाप्ति के बाद श्रेणिक ने प्रश्न किया।

‘हे प्रभो ! आपके 14000 शिष्यों में ऐसे कौन से महात्मा हैं जो चढते परिणामी हैं ?

प्रभु ने कहा, ‘काकंदी के धन्ना अणगार !

हे श्रेणिक ! वे हमेंशा छट्ट के पारणे छट्ट करते हैं और पारणे में अत्यंत ही निरस, अंत-प्रांत आहार से आर्यबिल का तप करते हैं। वे महात्मा जंगल में एकांत स्थल में कायोत्सर्ग ध्यान में रहते हैं।’

धन्ना अणगार का नाम सुनकर श्रेणिक महाराजा के दिल में उन महात्मा के दर्शन की तीव्र अभिलाषा पैदा हुई। वे उस वन में गए जहां धन्ना अणगार ध्यान मग्न थे। श्रेणिक महाराजा ने उन महात्मा के दर्शन किए। वे

भाव विभोर बन गए। उनका शरीर अस्थिपंजर मात्र अवशिष्ट था। उत्कृष्ट तप के कारण उनके शरीर में रक्त व मांस सूख चुका था। उनका देह कोयले के समान अत्यंत श्याम बन चूका था, उनकी आंखें अंदर चली गई थी। हाथ पैर वृक्ष की सूखी डाल की तरह दिखाई दे रहे थे।

शरीर क्षीण हो चूका था किंतु उनकी आत्मा बलवान् थी।

वे गृहस्थावस्था में काकंदी नगरी के धनकुबेर थे। वे अपनी भद्रा माता के इकलौते बेटे थे।

अपार संपत्ति के मालिक थे। देवांगना जैसी 32 कन्याओं के साथ जिनका पाणिग्रहण हुआ था।

एक बार भगवान महावीर प्रभु काकंदी नगरी में पधारें और उनकी एक ही धर्मदेशना के प्रभाव से संसार से विरक्त हो गए...और चारित्र धर्म स्वीकार करने के लिए तैयार हो गए।

भद्रा माता और पत्नियों ने खूब समझाया, किंतु अन्तर से विरक्त बने धन्नाजी पर उनका कुछ भी प्रभाव न पडा...आखिर एक शुभ दिन अपार सम्पत्ति, माता व 32 पत्नियों का त्याग कर प्रभु के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया।

दीक्षा लेने के बाद धन्नाजी ने छट्ट के पारणं छट्ट और पारणं में आयंबिल तप करने की प्रतिज्ञा की।

अत्यंत ही चढते हुए परिणाम के फलस्वरूप मात्र 9 मास की अवधि में अंत में 9 मास की संलेखना कर कालधर्म को प्राप्त होकर सर्वार्थ सिद्ध नामक पांचवें अनुत्तर विमान में देव बने। वहां से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर अंत में दीक्षा अंगीकार कर सर्व कर्मों से मुक्त बनकर शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

आसक्ति यह सबसे बडा पाप हैं, जो इस पाप से मुक्त बन गए, वे उसी भव में अथवा अल्पभवों में ही मोक्ष में चले गए...और जो इस पाप के अधीन बन गए, उन्होंने अपनी आत्मा का अनंत संसार खडा कर दिया।

सावधान रहे इस आसक्ति के पाप से।

## गृह विराग

१७

भावश्रावक का यह अंतिम गुण, अति महत्त्व का है। वह कभी भी अपने घर को 'अपना' मानकर नहीं चलता है। वह घर में रहता है, लेकिन घर में रमणता नहीं करता है।

वह घर में हो सकता है, लेकिन उसके हृदय में घर नहीं होता है।

**महल नहीं, धर्मशाला !!**

एक बार एक संन्यासी महात्मा घूमते हुए किसी नगर में पहुँचे ! क्रमशः आगे बढ़ते हुए वे राजा के महल के पास पहुँचे ! राजमहल के द्वार पर द्वारपाल खडा था। संन्यासी ने उस चौकीदार को कहा, 'मुझे इस धर्मशाला में ठहरने के लिए जगह दो।'।

चौकीदार ने कहा, 'यह तो राजा का महल हैं, आपको धर्मशाला में ठहरना है तो आगे जाइए, वहां धर्मशाला है।'।

संन्यासी ने कहा, 'यह राजमहल नहीं, धर्मशाला ही है।'।

संन्यासी और चौकीदार के बीच की चर्चा को सुनकर राजा स्वयं वहां आ गया।

राजा ने कहा, 'बाबाजी ! आपको जितनी जगह चाहिये, उतनी देने के लिए तैयार हूँ, परंतु ध्यान रहे यह धर्मशाला नहीं, किंतु राजमहल है।'।

बाबाजी ने कहा, 'राजन् ! यह राजमहल नहीं, किंतु धर्मशाला ही है और मुझे धर्मशाला में जगह चाहिये।'।

राजा ने कहा, 'बाबाजी ! यह राजमहल है, धर्मशाला कैसे ?'

बाबाजी ने कहा, 'आज से 40 वर्ष पूर्व यहां आया था, उस समय आपके दादा राजा थे, मैंने उन्हें यही बात कही थी कि इस धर्मशाला में उतरने के लिए जगह चाहिये। उस समय आपके दादाजी का वो ही जवाब था, जो आपका है। मैंने उन्हें बहुत समझाया किंतु वे माने नहीं, मैं यहां से चला गया ! उसके बाद 20 वर्ष बाद वापस यहां आया था, उस समय आपके पिता राजा थे, मैंने उनको इसी धर्मशाला में ठहरने के लिए जगह देने के लिए कहा परंतु उनका भी यही जवाब था, 'यह धर्मशाला नहीं राजमहल है। मैं यहां से चला गया।'।

20 वर्ष बाद आज यहां वापस आया हूँ। आज भी मैं यही कह रहा हूँ कि इस धर्मशाला में उतरने के लिए जगह दो।' जबकि आपका वो ही जवाब है 'यह धर्मशाला नहीं, राजमहल हैं।'।

**धर्मशाला का अर्थ हैं, समय समय पर जिसके मालिक बदलते**

रहते हैं ।

**राजमहल का अर्थ है - 'राजा का महल ।'**

यह महल यदि आपके दादा का होता तो वे जब यह संसार छोड़कर गए, तब इस महल को भी साथ में लेकर जाते, जबकि वे इस महल को छोड़कर ही गए हैं ।

वास्तव में जो चीज अपनी ही होती है, वह वस्तु हमेशा अपने साथ रहती है, जो वस्तु अपनी नहीं होती है, उसी को छोड़कर हमें जाना होता है ।

संन्यासी की बात राजा को समझ में आ गई । सचमुच, भावश्रावक अपने घर को धर्मशाला या जेल ही समझता है ।

धर्मशाला में कुछ दिनों के लिए ही स्थिरता होती है, हमेशा के लिए नहीं ! धर्मशाला में ठहरने वाला समझता ही है कि यहां मेरा कुछ दिनों के लिए ही पडाव है ।

कोई भी व्यक्ति जेल Jail में रहना पसंद नहीं करता है स्वतंत्र जीवन चाहता है ।

आत्मा के लिए स्वतंत्र व स्थायी जीवन सिर्फ मोक्ष में है ।

मोक्ष के अपने शाश्वत घर को पाने के लिए श्रावक अपने घर में विरक्त भाव से रहता है ।

संसार से जिसका मन उठ गया है और जो मुक्ति को पाने के लिए उत्कंठित बना है, ऐसे श्रावक का मन संसार में कैसे रम सकता है ?

पानी से भरे ग्लास में जब हम शक्कर डालते हैं तो वह शक्कर पानी में घुल जाती है, जबकि उसी ग्लास में जब कंकड डालते हैं तो वे कंकड घंटों तक ऐसे के ऐसे ही पडे रहते हैं ।

समकित्ती आत्मा पानी में पडे कंकड की तरह संसार में रहती है जबकि मिथ्यादृष्टि आत्मा संसार में पानी में गिरी शक्कर की भांति होता है ।

मिथ्यात्वी आत्मा संसार के सुखों में आसक्त बनकर रहती है, जबकि समकित्ती आत्मा को यह घर ही Jail की भांति लगता है, अतः उस घर में आनंद मस्ती से रहने का सवाल ही नहीं रहता है ?

जिस घर में आग लगी हो उस घर में व्यक्ति स्वस्थता से कैसे रह सकता है ?

समकित्ती आत्मा को तो यह संसार ही दावानल की भांति प्रतीत होता है, अतः उस संसार में वह मस्ती से नहीं रह पाती है ।

समकित्ती आत्मा को संसार में सुख कहाँ से ? छ खंड का आधिपत्य भी मिला जाय तो भी समकित्ती आत्मा को उसमें प्रसन्नता नहीं रहती है । वह तो निरंतर उस संसार से छूटने के लिए ही प्रयत्नशील होती है ।

## भाव-श्रावक का अंतरंग-स्वरूप

इत्थीण-मणत्थ-भवणं, चलचित्तं नरयवत्तिणी भूयं ।

जाणंतो हियकामी, वसवती होइ न हु तीसे ॥

अर्थ : स्त्री अनर्थ का घर हैं, वह अस्थिर चित्तवाली है, नरक के राजमार्ग समान हैं, यह जाननेवाला हितकांक्षी श्रावक, स्त्री के अधीन नहीं बनता है ।

इंदिय चवल तुरंगे, दोग्गइ-मग्गाणुधाविरे निच्चं ।

भाविय भवस्सवो, रंमइ सन्नाण रस्सी हि ॥

अर्थ : ये इन्द्रियाँ चपल धोड़े जैसी हैं जो हमेंशा दुर्गति के मार्ग की ओर ले जानेवाली है । संसार के यथार्थ स्वरूप से भावित बनी आत्मा सम्यग्ज्ञान रूपी लगाम द्वारा उन इन्द्रियों को अपने वश में रखती है ।

सयलाणत्थ निमित्तं आयास किलेसकारणमसारं ।

नाउण घणं धीरो, न हुं लुब्भइ तंमि तणुयंपि ॥

अर्थ : धन समस्त अनर्थों में निमित्त रूप हैं । धन की प्राप्ति में श्रम और क्लेश हैं । धन की असारता को जानकर धीर श्रावक उसमें लेश भी लुब्ध नहीं बनता है ।

दुह रुवं दुक्ख फलं दुहाणुबंधिं विडंबणा रुवं ।

संसारमसारं जाणित्तण न रइं तहि कुणइ ॥

अर्थ : यह संसार दुःख रूप, दुःख फलक, दुःखानुबंधी तथा विडंबना रूप है । संसार की असारता को जानकर भाव श्रावक कहीं भी रति नहीं करता है ।

खणमेत्त सुहे विसए विसोवमाणे सयावि मन्तंतो ।

तेसु न करेइ गिद्धिं भवभीरु मुणियत्तथो ॥

अर्थ : 'विषय क्षण मात्र सुखदायी हैं और विष की उपमावाले हैं' इस प्रकार माननेवाला, तत्त्व के परमार्थ को जाननेवाला भवभीरु श्रावक इन विषयों में आसक्ति नहीं करता है ।

वज्जइ तिव्वारंभं कुणइ अकामो अनिव्वहंतोउ ।

थुणइ निरारंभ जणं, दयालुओ सव्वजीवेसु ॥

अर्थ : भाव श्रावक आरंभ का त्याग करता है, जीवन-निर्वाह शक्य न हो तो अनिच्छा से अल्प आरंभ करता है । सभी जीवों के प्रति दयालु श्रावक आरंभ रहित साधु भगवंतो की प्रशंसा करता है ।

गिहवासं पासं पिव मन्तंतो वसइ दुक्खिओ तंमि ।

चारित्त मोहणिज्जं निज्जिणिउं उज्जमं कुणइ ॥

अर्थ : गृहवास को पाश की तरह मानता हुआ श्रावक दुःखी हृदय से संसार में रहता है और चारित्र मोहनीय कर्म को खपाने के लिए उद्यम करता है ।

अत्थिक्क भावकलिओ, परभावणा वन्नवायमाइहिं ।

गुरु भात्ति जुओ धीमं धरेह सह दंसणं विमल ॥

अर्थ : आस्तिक्य भाव से युक्त, शासन की प्रभावना तथा प्रशंसा आदि द्वारा गुरु भक्ति से युक्त श्रावक निर्मल सम्यग् दर्शन को धारण करता है ।

गड्डरिग-पवाहेणं गयाणुगइयं जणं वियाणंतो ।

परिहरइ लोगसन्नं सुसमिक्खियकारओ धीरो ॥

अर्थ : लोक तो गाडर प्रवाह की तरह गतानुगतिक प्रवृत्ति करनेवाले होते हैं अतः खुब सोच-विचार कर प्रवृत्ति करनेवाला श्रावक लोक संज्ञा का त्याग करता है ।

नत्थि परलोगमग्गे पमाणमन्नं जिणागमं मोत्तुं ।

आगम पुरस्सरं चिय करेइ तो सव्वकिच्चाइं ॥

अर्थ : परलोक के मार्ग में जिनागम को छोड़कर अन्य कोई प्रमाण नहीं हैं, अतः श्रावक सभी कृत्य आगम का अनुसरण करके ही करता है ।

अनिगूहितो सत्तिं आया बाहाए जह बहुं कुणइ ।

आयरइ तहा सुमइ दाणाइ चउव्विहं धम्मं ॥

अर्थ : जिस प्रकार लोग अपनी आय को ध्यान में रखकर संसार की प्रवृत्ति करते हैं, उसी प्रकार सन्मति युक्त श्रावक दानादि चार प्रकार के धर्म की आराधना करता है ।

हियमणवज्जं किरियं चिंतामणि-रयण-दुल्लहं लहिउं ।

सम्मं समायरंतो न हु लज्जइ मुद्धहसिओ वि ॥

अर्थ : चिंतामणि रत्न के समान दुर्लभ ऐसी हितकारी, निरवद्य

क्रियाओं का अच्छी तरह से आचरण करनेवाला श्रावक अज्ञानी लोगों के उपहास से कभी लज्जा नहीं पाता है ।

देहद्विड् निबंधण धण-सयणा-हार-गेहमाइसु !

निवसइ अस्त दुट्ठो संसार गएसु भावेसु ॥

अर्थ : देह के अस्तित्व को टिकाने में सहायक, धन-स्वजन, आहार, गृह आदि सांसारिक वस्तुओं में राग-द्वेष नहीं करता हुआ भाव श्रावक संसार में रहता है ।

उवसम सार वियारो वाहिज्जइ, नेय रागदोसेहिं ।

मज्झत्यो हियकामी असग्गहं सव्वहा चयइ ॥

अर्थ : उपशम प्रधान विचार करनेवाला भाव श्रावक राग-द्वेष के प्रवाह में न बहकर मध्यस्थ रहता है । हित की कामना होने से वह मध्यस्थ रहता है, परंतु असद् आग्रह नहीं करता है ।

भावेतो अणवरयं खण भंगुरयं समत्थवत्थुणं ।

संबद्धोवि धणाइसु वज्जइ पडिबंध-संबंध ॥

अर्थ : संसार की समस्त वस्तुओं को क्षण भंगुर माननेवाला धनादि पदार्थों के बीच रहते हुए भी उनमें आसक्त नहीं होता है ।

संसार विस्तमणो भोगुवभोगा न तित्तिहेउत्ति ।

नाउं पराणुरोहा-पवत्तइ काम भोगेसु ॥

अर्थ : संसार से विरक्त मनवाला श्रावक भोगोपभोग को तृप्ति का हेतु नहीं मानता है, इस कारण वह भोगोपभोग में प्रवृत्ति अन्य के दबाव से करता है, परंतु इच्छा से नहीं ।

वेसव्व निरासंसो अज्जं कल्लं चयामि चिंतंतो ।

परकीयं पिव पालइ गेहावासं सिद्धिलभावो ॥

अर्थ : निर्धन व्यक्ति के प्रति रहे वेश्या के निराशंस भाव की तरह गृहावास में शिथिल आदरवाला श्रावक परकीय मानकर गृहावास का पालन करता है ।

## अनुक्रमणिका

| क्रमांक | विषय             | पृ. क्र. |
|---------|------------------|----------|
| 1.      | स्त्री वैराग्य   | 2        |
| 2.      | इन्द्रिय विजय    | 9        |
| 3.      | धन-वैराग्य       | 30       |
| 4.      | भव-वैराग्य       | 47       |
| 5.      | विषय वैराग्य     | 61       |
| 6.      | महा आरंभ त्याग   | 69       |
| 7.      | समता-त्याग       | 73       |
| 8.      | सद्गुरु-भक्ति    | 77       |
| 9.      | लोकसंज्ञा-जय     | 83       |
| 10.     | सिद्धांत-निष्ठा  | 87       |
| 11.     | सद्धर्म आचरण     | 93       |
| 12.     | धर्म-गौरव        | 127      |
| 13.     | समता             | 130      |
| 14.     | माध्यस्थ्य भावना | 140      |
| 15.     | अनित्य भावना     | 151      |
| 16.     | अनासक्ति         | 157      |
| 17.     | गृह वैराग्य      | 159      |



# सरल, सुबोध व संस्कार-वर्धक हिन्दी साहित्य अवश्य पढ़ें

लेखक : पू. गणिवर्य श्री रत्नसेन विजयजी म. सा.

|   |          |                                    |              |
|---|----------|------------------------------------|--------------|
| 1. वात्सल्य के महासागर                  | अप्राप्य | 44. अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव     | अप्राप्य     |
| 2. सामायिक सूत्रविवेचना                 | "        | 45. आओ ! श्रावक बने                | "            |
| 3. चैत्यवन्दन सूत्रविवेचना              | "        | 46. गौतमस्वामी-जंबुस्वामी          | "            |
| 4. आलोचना सूत्रविवेचना                  | "        | 47. जैनाचार विशेषांक               | "            |
| 5. श्रावक प्रतिक्रमण सूत्रविवेचना       | "        | 48. हंस श्राद्ध व्रत दीपिका        | "            |
| 6. कर्मन की गत न्यारी                   | "        | 49. कर्म को नहीं शर्म              | "            |
| 7. आनन्दधन चौबीसी विवेचना               | "        | 50. मनोहर कहानियाँ                 | "            |
| 8. मानवता तब महक उठेगी                  | "        | 51. मृत्यु-महोत्सव                 | "            |
| 9. मानवता के दीप जलाएँ                  | "        | 52. <b>Chaitya-Vandan Sootra</b>   | "            |
| 10. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है        | "        | 53. सफलता की सीढियाँ               | "            |
| 11. चेतन ! मोहनीद अब त्यागो             | "        | 54. श्रमणाचार विशेषांक             | "            |
| 12. युवानो ! जागो                       | "        | 55. विविध देववन्दन                 | "            |
| 13. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-1    | "        | 56. नवपद प्रवचन                    | "            |
| 14. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-2    | "        | 57. ऐतिहासिक कहानियाँ              | "            |
| 15. रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे             | "        | 58. तेजस्वी सितारें                | "            |
| 16. मृत्यु की मंगल यात्रा               | "        | 59. सन्नारी विशेषांक               | "            |
| 17. जीवन की मंगल यात्रा                 | "        | 60. मिच्छामि दुक्कडम्              | "            |
| 18. महाभारत और हमारी संस्कृति-1         | "        | 61. <b>Two Pratikraman sootra</b>  | <b>15.00</b> |
| 19. महाभारत और हमारी संस्कृति-2         | "        | 62. जीवन ने तुं जीवी जाण (गुजराती) | अप्राप्य     |
| 20. तब चमक उठेगी युवा पीढी              | "        | 63. आवो ! वार्ता कहुं (गुजराती)    | "            |
| 21. <b>The Light of Humanity</b>        | "        | 64. अमृत की बुंदे                  | "            |
| 22. अंखियाँ प्रभुदर्शन की प्यासी        | "        | 65. श्रीपाल मयणा                   | "            |
| 23. युवा चेतना विशेषांक                 | "        | 66. शंका और समाधान                 | 35.00        |
| 24. तब आंसू भी मोती बन जाते हैं         | "        | 67. प्रवचनधारा                     | अप्राप्य     |
| 25. शीतल नहीं छाया रे...(गुजराती)       | "        | 68. धरती तीरथ'री                   | अप्राप्य     |
| 26. युवा संदेश                          | "        | 69. क्षमापना                       | अप्राप्य     |
| 27. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-1 | "        | 70. भगवान महावीर                   | अप्राप्य     |
| 28. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-2 | "        | 71. आओ ! पौषध करें                 | 15.00        |
| 29. श्रावक जीवन-दर्शन                   | "        | 72. प्रवचन मोती                    | अप्राप्य     |
| 30. जीवन निर्माण विशेषांक               | "        | 73. प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह       | 15.00        |
| 31. <b>The Message for the Youth</b>    | "        | 74. श्रावक कर्तव्य-1               | अप्राप्य     |
| 32. यौवन-सुरक्षा विशेषांक               | "        | 75. श्रावक कर्तव्य-2               | अप्राप्य     |
| 33. आनन्द की शोध                        | "        | 76. कर्म नचाए नाच                  | 30.00        |
| 34. आग और पानी (समरादित्य चरित्र) भाग-1 | "        | 77. माता-पिता                      | 25.00        |
| 35. आग और पानी (समरादित्य चरित्र) भाग-2 | "        | 78. प्रवचन रत्न                    | अप्राप्य     |
| 36. गिरिराज यात्रा                      | "        | 79. आओ ! तत्वज्ञान सीखें           | 30.00        |
| 37. सवाल आपके जवाब हमारे                | "        | 80. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद       | 20.00        |
| 38. जैन विज्ञान                         | "        | 81. जिनशासन के ज्योतिर्धर          | 35.00        |
| 39. आहार विज्ञान                        | "        | 82. आहार : क्यों और कैसे ?         | 35.00        |
| 40. <b>How to live true life ?</b>      | "        | 83. महावीर प्रभु का सचित्र जीवन    | 50.00        |
| 41. भक्ति से मुक्ति (चतुर्थ आवृत्ति)    | "        | 84. प्रभु पूजन सुख संपदा           | 15.00        |
| 42. आओ ! प्रतिक्रमण करे                 | "        | 85. भाव श्रावक                     | 35.00        |
| 43. प्रिय कहानियाँ                      | "        |                                    |              |